अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड में

इसाईमत का इतिहास

१८०४ से १९४७ तक

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय में इतिहास विषय में

पी० एच० डी० की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध
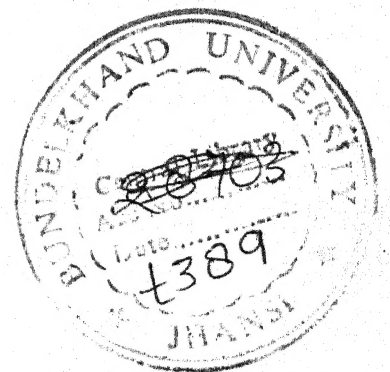
प्रस्तुतकर्त्ता :
अजयपालसिंह चौहान
ग्राम व पोस्ट—हराअड्डू
जिला—जालौन

शोध निदेशक :
डा० एस० पी० पाठक
(एम० ए०, पी० एच० डी०)
अध्यक्ष, इतिहास विभाग
बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी

1988

विषय - सूची

:o: आमुख :o:

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी प्रभुसत्ता का विकास 1803 की बेसीन की सन्धि से हुआ । 1947 तक सम्पूर्ण देश की ही भांति यह क्षेत्र भी विदेशी शासन के अधीन रहा । इस अवधि में अंग्रेजों ने भारत के इस हृदय-प्रदेश पर अधिकार स्थापित कर लेने के बाद आर्थिक शोषण की नीति अपनाई । कठोर राजस्व नीति के कारण किसानों तथा जमींदारों की स्थिति शोचनीय हो गई । उद्योग तथा व्यापार को हतोत्साहित कर दिये जाने के कारण स्थिति और भी भयावह हुई । साम्राज्य वादी शक्ति द्वारा शोषण के विरुद्ध प्रतिक्रिया 1857 के विद्रोह के रूप में प्रकट हुई । यद्यपि इस विद्रोह का दमन कर दिया गया, किन्तु अंग्रेजी शासकों के दिमाग में बुन्देलखण्ड के लोगों की साहस तथा शौर्य की यादें सदैव जीवित रहीं । फलत: यहां के लोगों को दण्ड देने के लिये इस पूरे क्षेत्र को सामाजिक,आर्थिक रूप से उपेक्षित कर दिया गया । बुन्देलखण्ड के आधुनिक पिछड़ेपन को इसी पृष्ठ भूमि में देखा जा सकता है ।

सामाजिक,आर्थिक पिछड़ेपन से प्रेरित होकर अमरीका की मिशनरियों ने तथा कनाडा एवं यूरोप के अन्य देशों के ईसाई - धर्म प्रचारकों ने धर्म-प्रचार के लिये इस क्षेत्र में पदार्पण किया ।

इन इसाई मिशनरियों को अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड के सैनिक तथा सिविल अधिकारियों ने पूर्ण सहायता दी। वास्तव में 1857 के विद्रोह के समय बुन्देलखण्ड में हिन्दू-मुस्लिम एकता का एक आदर्श प्रस्तुत किया था। इस विद्रोह में महारानी लक्ष्मीबाई, नवाब अलीबहादुर के अलावा गुलाम-गौस खाँ, झाँसी के जेल दरोगा बख्शीस अली, काले खाँ, बानपुर के राजा मर्दन सिंह आदि ने राष्ट्रीय एकता का जो मार्ग प्रशस्त किया उससे अंग्रेजों की आँखें खुल गई थीं। हिन्दू-मुस्लिम एकता की इस श्रृंखला को शसक्त होते हुये, अंग्रेज कभी देख नहीं सकते थे। 1857 के विद्रोह की घटना से अंग्रेजों का बुन्देलखण्ड की जनता पर से विश्वास समाप्त हो चुका था। अतः आवश्यकता इस बात की थी कि अधिक से अधिक इसाई मिशनरियों को इस क्षेत्र में प्रवेश दिलाया जाए, ताकि धर्मान्तरण द्वारा अधिक से अधिक संख्या में लोग इसाई धर्म अपना लें। इस प्रकार धार्मिक आधार पर अंग्रेज बुन्देलखण्ड में एक वफादार प्रजा का निर्माण करना चाहते थे इसलिये इन मिशनरियों को यहाँ पर्याप्त सुविधायें प्रदान की गईं।

मिशनरियों को इस क्षेत्र में प्रोत्साहन देने के पीछे शासन वर्ग का दूसरा उद्देश्य यह था कि ये मिशनरी मानवीय तरीकों जैसे, चिकित्सा, शिक्षा आदि कार्यों से लोगों का विश्वास प्राप्त कर लेंगी और इससे 1857 में बुन्देलखण्ड के लोगों में विदेशी शासन के प्रति जो आक्रोश और घृणा की भावना भर चुकी थी वह धीरे-धीरे कम हो जायेगी।

अमरीकी फ्रेन्ड्स मिशन ने नौगाँव में 1896 में काल के समय अनाथालय खोलकर मिशनरी कार्यों का सूत्रपात किया । प्रारम्भ में मिशन का नेतृत्व विदेशी धर्म प्रचारकों के हाथ में रहा, किन्तु बाद में इन मिशनरियों ने स्थानीय लोगों को नेतृत्व सौंप कर स्वयं को पृष्ठ भूमि में रखकर उनको मदद करना प्रारम्भ कर दिया । फलत: धीरे-धीरे बुन्देलखण्ड में ईसाई मिशनरियों का प्रभुत्व स्थापित हो गया । इस क्षेत्र में व्याप्त गरीबी तथा भुखमरी के अलावा हिन्दू वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत् शूद्र वर्ग अत्यन्त ही उपेक्षित था जो ईसाई मत की ओर प्रेरित हुआ । इसके साथ ही प्रलोभन की नीति भी धीरे-धीरे अपना प्रभाव दिखाने लगी । बाल-विधवाओं की दयनीय स्थिति तथा अवैध सन्तानों के कारण भी मिशनरियों ने असहाय बच्चों को अनाथालयों में रखना प्रारम्भ कर दिया । ये सभी तत्व इस क्षेत्र में ईसाई धर्म के विकास में सहायक रहे ।

उपरोक्त शोध प्रबन्ध के लिखने में हमारे निर्देशक डॉक्टर एस0 पी0 पाठक, अध्यक्ष इतिहास विभाग, बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी निरन्तर मेरी मदद करते रहे । उनके कठोर परिश्रम के बिना यह कार्य सम्भव नहीं हो सकता था । अत: मैं उनका हृदय से आभारी हूँ । राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली के डायरेक्टर तथा शोध-कक्ष के स्टाफ का मैं आभारी हूँ जिन्होंने मेरे अध्ययन के दौरान विभिन्न पत्र तथा पत्रावलियों को दिलवाने में मेरी सहायता की। झाँसी स्थित कैथोलिक मिशन तथा क्राइस्ट द किंग कालेज, झाँसी के

प्रिंसिपल फादर आगस्टीन, रेलवे कालोनी झाँसी में स्थित सेन्ट-एन्थनी चर्च के फादर तथा छोकनबाग मिशन अस्पताल के डॉक्टर-सिंह को भी मैं धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अनेकों महत्वपूर्ण दस्तावेज दिखाये ।

इलाहाबाद स्थित प्रोटेस्टेन्ट डायोसिस में कार्यरत् सहायक धर्माध्यक्ष फादर तिवारी का भी मैं ऋणी हूँ जिन्होंने मेरे अध्ययन से सम्बन्धित सामग्री प्रदान की । इसके साथ ही नौगाँव, कुलपहाड़, छतरपुर आदि मिशन केन्द्रों पर स्थित अनेकों धर्माधिकारियों का भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरी समय-समय पर सहायता की । मेरे अध्ययन के दौरान मेरे बड़े भाई श्री गजेन्द्र सिंह चौहान, एडवोकेट ने निरन्तर मुझे प्रेरित किया और सारा खर्च उन्होंने उठाया । अतः उनके प्रति आभार प्रदर्शन करना मेरा प्रथम कर्तव्य है । सबसे अधिक ऋणी मैं बुन्देलखण्ड - विश्वविद्यालय के कुल सचिव श्रीरामसूरत का हूँ जिनके द्वारा प्रदत्त सुविधा एवं सहायता के बिना मेरा यह प्रयास अपूर्ण ही रहता । मैं इस शोध प्रबन्ध के टाइपिस्ट श्रीसिद्धेश्वरी प्रसाद गौड़ को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अत्यन्त लगनपूर्वक मेरा टाइप का यह कार्य पूरा किया ।

भवदीय,

[signature]

(जयपाल सिंह चौहान)
एम0ए0, भूतपूर्व छात्रसंघ अध्यक्ष,
डी0वी0वी0एस0कालेज, उरई।
ग्राम व पोस्ट-करा बड़ू,
जिला - जालौन (उ0प्र0)

अध्याय प्रथम

भूमिका -

बुन्देलखण्ड की संक्षिप्त ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि :

बुन्देलखण्ड भारतवर्ष का हृदय प्रदेश रहा है । यह हिन्दुस्तान के मध्य में स्थित होने के कारण सदैव ही राजनैतिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बना रहा । इस क्षेत्र का प्रारम्भिक नाम चेदिदेश[1], चेदि - जनपद अथवा चेदि राष्ट्र था । इसके पश्चात् यह क्षेत्र जेजाक भुक्ति[2] नाम से प्रसिद्ध हुआ । ह्वेनसांग ने सातवीं शताब्दी में अपने यात्रा-विवरण में लिखा था कि "यह भूभाग जेजाक भुक्ति नाम से प्रसिद्ध है तथा यहाँ जिजहोति नाम का एक ब्राम्हण राजा राज करता है जिसकी राजधानी खजुराहो है[3]।" धीरे-धीरे यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड नाम से प्रसिद्ध हुआ । जेजाक भुक्ति से बुन्देलखण्ड[4] नाम कब परिवर्तित हुआ इसके बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त नहीं होती, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग तेरहवीं शताब्दी में इस क्षेत्र में बुन्देला ठाकुरों का प्रभुत्व स्थापित हुआ तभी से यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड नाम से विख्यात हुआ । एक अन्य मत के

1- मिश्रा के0सी0, चन्देल और उनका राजत्वकाल, वाराणसी सं0 2011 पृष्ठ 4-5.
2- कनिंघम ए आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग 21, वाराणसी, 1969 पृ058.
3- मिश्रा के0सी0, चन्देल और उनका राजत्वकाल, वाराणसी सं0 2011 पृष्ठ 4-5.
4- वही ।

अनुसार चूंकि विन्ध्याचल पर्वत की चोटियाँ इस क्षेत्र में दूर-दूर तक फैली हुई हैं अतः यह क्षेत्र विन्ध्येलखण्ड से परिवर्तित होकर बुन्देलखण्ड नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

बुन्देलखण्ड के लोग अपनी स्वतन्त्रता-प्रियता के लिये सदैव ही प्रसिद्ध रहे हैं । यह सत्य है कि इस क्षेत्र के लोगों ने किसी भी विदेशी सत्ता के सम्मुख सदैव के लिए समर्पण नहीं किया, लेकिन विदेशी शासकों की असीमित शक्ति के कारण परिस्थितिवश इस क्षेत्र के लोग कुछ समय तक विदेशियों के शासन के अधीन रहे । इसके बावजूद भी स्वतन्त्रता की भावना उनके दिमाग में हमेशा पल्लवित होती रही और जैसे ही अवसर मिला वैसे ही यहाँ के लोगों ने विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने में कोई कमी नहीं दिखलायी ।

इस क्षेत्र की स्वतन्त्रता-प्रियता का सबसे अच्छा उदाहरण महाराजा छत्रसाल बुन्देला ने प्रस्तुत किया जिन्होंने अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुगलों के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता का उद्घोष कर दिया था । अपने पूर्वज वीरसिंह देव, जुझार सिंह तथा अपने पिता चम्पत राय द्वारा प्रारम्भ किये गये स्वतन्त्रता आन्दोलन को छत्रसाल ने बहादुरी के साथ जारी रखा तथा उसे परिपक्व बना दिया।[1]

छत्रसाल तथा मुहम्मद खान बंगश के बीच युद्ध :

छत्रसाल का जन्म 1647 ई0 में झाँसी जिले में कटेरा के समीप मोर पहाड़ी में हुआ था । जिस समय उनका जन्म हुआ उस समय उनके पिता चम्पत राय मुगलों के विरुद्ध संघर्ष में व्यस्त थे । छत्रसाल नैपोलियन

1- पाठक एस0पी0,"झाँसी ड्यूरिंग ब्रिटिश रूल" 1987, रामानन्द विद्या-भवन, नई दिल्ली, पृ0 9.

की तरह अपने जन्म से ही युद्ध के वातावरण में पलते रहे । उनके गुरु प्राणनाथ उनकी प्रेरणा के उसी प्रकार से स्रोत थे जिस प्रकार गुरु रामदास शिवाजी की प्रेरणा के स्रोत थे । छत्रसाल शीघ्र ही बुन्देलखण्ड में हिन्दू धर्म तथा संस्कृति के संरक्षक बन गये ।[1] तत्कालीन मुगल शासक फर्रुख सीयर (1713-19) ने छत्रसाल की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर उसे दबाने का निश्चय किया । अतःउसने अपने सबसे बहादुर सेनानायक मुहम्मद खान बंगश को छत्रसाल को पराजित करने के लिए नियुक्त किया। बंगश को एरच तथा भाण्डेर परगने देते हुए एक विशाल मुगल सेना के साथ उसे बुन्देलखण्ड भेजा गया ताकि क्षेत्र में मुगलों की खोई हुई प्रभुता को पुनः स्थापित किया जा सके । मुगलों की विशाल सैनिक शक्ति के सामने छत्रसाल हतारा नहीं हुए । शीघ्र ही एक मुठभेड़ के बाद जून 1728 में छत्रसाल ने[2] जतपुर के किले में शरण ले ली जिसे बंगश ने घेर लिया ।

पेशवा बाजीराव द्वारा छत्रसाल की सहायता :

पेशवा बाजीराव अपनी सेना के साथ जबलपुर के समीप मण्डला नामक स्थान पर रुका हुआ था । पेशवा मालवा तथा उत्तरी भारत में अपने विजय अभियान के सम्बन्ध में आया हुआ था । छत्रसाल ने एक पत्र लिखकर मुगलों के विरुद्ध बाजीराव से मदद की माँग की । बाजीराव जो हिन्दू धर्म[3] का संरक्षक था,ने छत्रसाल की सामयिक सहायता करने का निश्चय किया अतःशीघ्र ही 12 मार्च 1729 को पेशवा अपनी सेना के साथ

1- तिवारी गोरेलाल,बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास भाग-1,संवत् 1990 काशी नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी, पृष्ठ 66-116.

2- सरदेसाई जी0एस0,ए न्यू हिस्ट्री आफ मराठाज,भाग-2,पृ0 105-107.

3- पन्निक्कर के0एम0,ए सर्वे आफ इण्डियन हिस्ट्री,बम्बई,1966 पृ0 193.

जैतपुर पहुँच गया । छत्रसाल और बाजीराव की सेनाओं ने मिलकर मुहम्मद खान बंगश पर आक्रमण किया जिसमें बुरी तरह पराजित होकर मुहम्मद खान बंगश बुन्देलखण्ड से वापस हुआ ।[1]

छत्रसाल द्वारा पेशवा बाजीराव का सम्मान तथा साम्राज्य का विभाजन:

बाजीराव की सहायता से छत्रसाल बड़े प्रभावित हुए । युद्ध की समाप्ति के बाद उन्होंने बाजीराव के सम्मान में एक समारोह आयोजित किया तथा उसे अपने दरबार की सबसे सुन्दर मस्तानी नाम की नर्तकी भेंट की । उसके साथ ही पेशवा को उन्होंने अपना तीसरा पुत्र मान लिया। छत्रसाल उस समय तक काफी वृद्ध हो चुके थे । अतः उन्होंने अपने दोनों पुत्रों हृदयशाह और जगतराज के बीच अपने साम्राज्य का बंटवारा कर दिया तथा तीसरा हिस्सा पेशवा बाजीराव को भेंट किया । पेशवा को जो हिस्सा मिला उसमें काल्पी, हट्टा, सागर, झांसी, सीरोंज, कौंच, गढ़कोटा तथा हृदय नगर आदि क्षेत्र शामिल थे । इसमें महोबा का परगना भी शामिल था । वास्तव में धसान नदी के दक्षिण वाले क्षेत्र में बाजीराव को हिस्सेदारी दी गयी जिसकी वार्षिक आय 32 लाख रुपया थी ।[2] छत्रसाल ने अपने पुत्रों को यह आदेश दिया कि वे पेशवा से मिलकर समय-समय पर उसकी सहायता करते रहें ।

छत्रसाल के बाद मराठा बुन्देला सम्बन्ध :

छत्रसाल द्वारा अपने साम्राज्य के बंटवारे के फलस्वरूप मराठों को बुन्देलखण्ड में जो क्षेत्र मिला था उसे केन्द्र बनाकर पेशवा ने अपनी शक्ति

1- सरदेसाई जी0एस0, ए न्यू हिस्ट्री आफ मराठाज, भाग-2, पृ0 105-107.
2- इम्पीरियल गजे0 आफ इण्डिया ‖सेन्ट्रल इण्डिया‖ पृष्ठ 367.

का विस्तार करना प्रारम्भ किया । इस प्रकार बुन्देलखण्ड में मराठों का आधिपत्य स्थापित हो गया । पेशवा बाजीराव ने इस क्षेत्र की बागडोर अपने सूबेदार गोविन्द पन्त खेर को दे दी जो सागर में रहते हुए इन क्षेत्रों का प्रबन्ध करने लगा । बाँदा और काल्पी के क्षेत्र पेशवा की अवैध सन्तान शमशेर बहादुर के हिस्से में पड़े । इसी प्रकार झाँसी का प्रबन्ध रघुनाथ हरी निवालकर को सौंप दिया गया ।[1]

दुर्भाग्यवश इस क्षेत्र में मराठा और बुन्देलाओं के सम्बन्ध क्रमशः खराब होते गये । बुन्देला मराठाओं को चौथ देने में कतराते थे और साथ ही साथ वे मराठों की प्रभुता के अधीन रहना नहीं चाहते थे, लेकिन इसके बावजूद भी गोविन्द पन्त खेर ने बुन्देलखण्ड को केन्द्र बना कर मराठा सत्ता का चारों ओर विस्तार किया ।

पन्ना के बुन्देला राजाओं की स्थिति भी निरन्तर कमजोर होती गयी । 14 दिसम्बर 1731 ई0 में छत्रसाल की मृत्यु से लेकर 1857 के विद्रोह तक पन्ना राज्य की आन्तरिक स्थिति विरोध तथा षड्यन्त्रों से भरी पड़ी थी । इस स्थिति का लाभ लेकर छतरपुर राज्य का गठन सोनेशाह पवार ने किया । यह पन्ना नरेश की सेना में सेना-नायक था । धीरे-धीरे 1826 में वह स्वतन्त्र हो गया । 1854 में उसकी मृत्यु हुई । इसके पश्चात् उसका पुत्र जगतराज गद्दी पर बैठा । ठीक यही स्थिति छत्रसाल के पुत्र जगतराज के रियासत की भी रही । इस प्रकार 1777 में जब अंग्रेजों ने बुन्देलखण्ड में प्रवेश किया उस समय तक {1731} छतरपुर {1784} बाँदा {1764} जैतपुर {1731} चरखारी {1764} और बिजावर {1765} आदि राज्यों का जन्म हो चुका था।[2]

1- एस0 एन0 सेन, अठारह सौ सत्तावन, पृष्ठ 267 तथा सरदेसाई - जी0एस0, ए न्यू हिस्ट्री आफ मराठाज, भाग-2, पृष्ठ 230-231.

2- इम्पीरियल गजे0 आफ इण्डिया {सेन्ट्रल इण्डिया} पृष्ठ 367.

इसी बीच 1761 में पानीपत का तृतीय युद्ध हुआ जिसमें मराठों को घोर पराजय हुई । इस पराजय से मराठा सत्ता की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा । बुन्देलखण्ड में भी इसका प्रभाव पड़ा और जो बुन्देले राजा अभीतक मराठों के अधीन समझे जाते थे,अब उन्होंने मराठों के विरूद्ध विद्रोह प्रारम्भ कर दिये । बुन्देलखण्ड की अस्तव्यस्तता व अव्यवस्था का लाभ लेकर अवध के नवाब वजीर शुजा उद्दौला के इस क्षेत्र पर पुन:मुगल सत्ता की स्थापना करने का निश्चय किया ।[1] लेकिन मुगलों के विरूद्ध एक बार पुन:बुन्देला और मराठों ने स्वयं को संगठित किया और नौने अर्जुनसिंह के नेतृत्व में इन संयुक्त सेनाओं ने 1763 के तिंदवारी के युद्ध में शुजा उद्दौला के सेनानायक हिम्मत बहादुर को पराजित किया ।[2]

हिम्मत बहादुर गुसाईं का बुन्देलखण्ड अभियान :

हिम्मत बहादुर गुसाईं बुन्देलखण्ड में अपनी सत्ता स्थापित करने का स्वप्न देख रहा था । गुसाईंयों के प्रारम्भिक इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त नहीं होती,लेकिन यह ज्ञात होता है कि दतिया में अकालों के समय एक महिला ने अपने पुत्रों को किसी साधू को बेच दिया था और सम्भवत:यही इन्दर गिरि तथा अनूप गिरि गुसाईं के नाम से विख्यात हुए ।[3] इन्हीं में इन्दर गिरि ने मोंठ में 1745 ई0 में अपनी प्रभुता स्थापित कर ली । यहीं पर इसने एक किला बनवाया तथा उसके चारों ओर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया । झाँसी के मराठा गवर्नर नारो शंकर ने 1750 में इन्दर गिरि को पराजित किया था । अत:उसे अपने साथियों के साथ मोंठ खाली करना पड़ा । तत्पश्चात्

1- श्रीवास्तव ए0एल0,शुजाउद्दौला,भाग-1,आगरा 1961,पृ0 122-123.
2- तिवारी जी0एल0,बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृ0 66-116 तथा इम्पीरियल गजे0 आफ इण्डिया [सेन्ट्रल इण्डिया] पृष्ठ 367.
3- सरकार जे0एन0,फाल आफ द मुगल इम्पायर ,भाग-3,पृ0 221.

वह बुन्देलखण्ड से अवध के नवाब शुजाउद्दौला की सेना में चला गया । 1752 में इन्दरगिरि की मृत्यु हुई उसके पश्चात् उसका शिष्य अनूपगिरि अवध की सेना का सेनानायक बन गया ।[1]

तिंदवारी के युद्ध के एक वर्ष पश्चात् 1764 में अवध की सेना को अंग्रेज सेनानायक हेक्टर मुनरो ने बक्सर के युद्ध में पराजित किया । इस युद्ध में अनूपगिरि ने अपनी सैनिक प्रतिभा का परिचय देते हुए नवाब शुजाउद्दौला के प्राणों को रक्षा की थी । उसकी बहादुरी से प्रभावित होकर उसे हिम्मत बहादुर की पदवी दे दी । उसके पश्चात् सिंकदी तथा आस-पास के परगने जागीर के रूप में दे दिये ।

इसी बीच बुन्देलखण्ड की आन्तरिक स्थिति विद्रोहों तथा अराजकता से ग्रस्त हुई । बुन्देला राजा आपस में ही संघर्ष करने लगे । मराठों की स्थिति भी अच्छी न थी । पानीपत की पराजय के बाद मराठे भी काफी कमजोर हो गये थे । इस स्थिति का लाभ लेने के लिए हिम्मत बहादुर ने पुन:बुन्देलखण्ड का अभियान किया । यद्यपि 1763 में तिंदवारी के युद्ध में उसकी पराजय हुई थी,लेकिन इसके बावजूद भी वह हतोत्साहित नहीं हुआ तथा बुन्देलखण्ड में वह अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए प्रयास करता रहा । बक्सर के युद्ध में उसकी प्रतिभा से प्रभावित होकर शुजाउद्दौला ने उसे विशाल सेना देकर बुन्देलखण्ड में अभियान करने के लिए भेजा ।[2] सबसे पहले दतिया के राजा रामचन्द्र को उसने पराजित कर उससे चौथ वसूल किया । इसके पश्चात् मोंठ तथा गुरसरायं पर आक्रमण किया । गुरसरायं के राजा बालाजू गोविन्द ने

1- पाठक एस0पी0,झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल 1987,रामानन्द विद्या-भवन,नई दिल्ली, पृष्ठ 13.

2- श्रीवास्तव ए0एल0, शुजाउद्दौला भाग 1 व 2 ,आगरा 1961, पृष्ठ 122-123.

इस विषम परिस्थिति में पूना दरबार में मदद प्राप्त करने के लिए एक पत्र लिखा । उन दिनों नाना फड़नवीस ने अपने सेनानायक दिनकर राव अन्ना के नेतृत्व में एक सेना बालाजी की मदद के लिए भेजा । इसके साथ ही ग्वालियर व इन्दौर के मराठा रघुनाथ हरि निवालकर ने भी उसकी सहायता की । इस प्रकार सम्मिलित मराठा सेनाओं ने हिम्मत बहादुर के विरूद्ध अभियान किया जिसमें परास्त होकर हिम्मत बहादुर को मोंठ और गुरसरायं खाली करना पड़ा । तत्पश्चात् वह अवध चला गया ।[1]

बुन्देलखण्ड में अपनी लगातार असफलताओं के बावजूद भी वह इस क्षेत्र में अपनी प्रभुता स्थापित करने के लिए प्रयास में प्रयत्नरत् रहा । अन्त में 1775 में वह मराठों की सेना में आ गया । मराठों ने उसे अपने उत्तरी अभियानों के लिये नियुक्त किया । इसी बीच उसका सम्पर्क अलीबहादुर के साथ हुआ । वह दोनों मिलकर बुन्देलखण्ड में अपने-अपने लिये क्षेत्रफल प्राप्त करना चाहते थे । अन्त में अलीबहादुर और हिम्मत बहादुर ने मिलकर इस क्षेत्र की विजय योजनाएं बनाना प्रारम्भ कर दीं ।

बुन्देलखण्ड में अँग्रेजी सत्ता का प्रारम्भ :

जिस समय अलीबहादुर और हिम्मत बहादुर गुसाईं, बुन्देलखण्ड विजय की योजनाएं बना रहे थे उस समय 1778 में अँग्रेजों ने पहली बार इस क्षेत्र में प्रवेश किया । इस क्षेत्र की केन्द्रीय स्थिति तथा सामरिक महत्व को देखते हुये अँग्रेज यहाँ अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे।

1- सरकार जे०एन०, भाग-3, फाल आफ द मुगल इम्पायर, पृष्ठ 221.

उन्हें यह ज्ञात था कि यहाँ सेना रखकर ही आस-पास की रियासतों पर अंकुश बनाए रखा जा सकता है । निश्चित् ही इस क्षेत्र में अंग्रेजों के आधिपत्य के पीछे यही उद्देश्य था । अत:जब बुन्देले और मराठे आपस में एक-दूसरे का विरोध कर रहे थे,उस समय वारेन हैस्टिंग ने कालपी होकर एक सेना पूना भेजने का निश्चय किया । कालपी बड़े ही सामरिक महत्व का था । यह बुन्देलखण्ड में प्रवेश के लिये मुख्य द्वार था । अत:1778 में कालपी पर अपना अधिकार कर लिया । यद्यपि मराठों ने अंग्रेजों को आगे बढ़ने से कुछ समय तक रोके रखा, किन्तु अन्त में कालिंजर,भोपाल और नागपुर के राजाओं से समझौता करके ब्रिटिश सेना को बुन्देलखण्ड होकर महाराष्ट्र भेज दिया गया । अंग्रेजी सेना का इस क्षेत्र से जाना बुन्देलखण्ड में मराठा आधिपत्य की प्रतिष्ठा को और धक्का लगाने में सफल रहा । यद्यपि जब अंग्रेजी सेनाएं नर्मदानदी पार कर चुकी थीं उस समय झाँसी की मराठा सेनाओं ने कालपी पर पुन:अधिकार कर लिया था,लेकिन बाद में चलकर यह क्षेत्र बुन्देलों की पकड़ में आ गया ।[1]

अलीबहादुर तथा हिम्मत बहादुर गुसाईं का बुन्देलखण्ड अभियान :

उपरोक्त परिस्थिति में 18वीं शताब्दी के अन्त तक बुन्देलखण्ड में मराठा प्रभुता के पतन का क्रम जब जारी था उस समय 1789 में अलीबहादुर और हिम्मत बहादुर को इस क्षेत्र पर मराठा प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिये पुन:नियुक्त किया गया । दोनों नेताओं ने यह निश्चय किया कि इस विजय अभियान के बाद अलीबहादुर को बाँदा

1- तिवारी जी0एल0,बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास,पृष्ठ 176 तथा इम्पीरियल गजे0 आफ इण्डिया ‍‍{सेन्ट्रल इण्डिया} पृष्ठ 367.

का नवाब बना दिया जाएगा तथा हिम्मत बहादुर को भी जीते हुये क्षेत्र में हिस्सा मिलेगा ।[1] इस समझौते के अन्तर्गत् लगभग चालीस हजार सेना के साथ दोनों सेनानायकों ने बाँदा, बरुआरी, बिजावर आदि को जीतते हुये पन्ना, छतरपुर को भी अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया । इस प्रकार इस क्षेत्र में मराठा सत्ता की पुन: स्थापना हुई । 28 अगस्त 1802 को जब अलीबहादुर ने कालिंजर पर घेरा डाला हुआ था उस समय उसकी मृत्यु हो गई ।[2] फलत: उसके पुत्र शमशेर बहादुर ने आकर मोर्चा सम्हाला और स्वयं को बाँदा का राजा घोषित किया ।

सिन्धिया, 1803 में पेशवा और अंग्रेजों के बीच हुई बेसिन की सन्धि से नाराज था और वह दोआब तथा आस-पास के ब्रिटिश क्षेत्रों पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था । इसके अतिरिक्त बुन्देलखंड में मराठों की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन: स्थापित करने के लिये नाना फड़नवीस ने शमशेर बहादुर को नियुक्त किया ।[3] इस प्रकार मराठों का संयुक्त अभियान बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी प्रभुसत्ता के विरुद्ध खोई हुई मराठा सत्ता को स्थापित करने का एक प्रयास था, लेकिन इसी बीच

1- तिवारी जी०एल०, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ 176 तथा इम्पीरियल गजे० आफ इण्डिया (सेन्ट्रल इण्डिया), पृष्ठ 367.

2- उक्त, पृष्ठ 176.

3- एचीसन सी०यू०, ट्रीटीज इन्गेजमेन्ट्स एण्ड सनद, पृष्ठ 87.

हिम्मत बहादुर मराठों का साथ छोड़कर अंग्रेजों की ओर जा मिला। अंग्रेजों के साथ हुई एक सन्धि के अनुसार उसने इस क्षेत्र में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के लिये भरसक प्रयास किया।[1] इसके बदले अंग्रेजी शासकों ने हिम्मत बहादुर गुसाईं को बुन्देलखण्ड में यमुना के दाहिने किनारे पर 20 लाख रुपया वार्षिक आय की एक जागीर देने का वचन दिया।

इस प्रकार गुसाईं नेता की स्वार्थपरता और गद्दारी से इस क्षेत्र की स्वाधीनता को एक खतरा पैदा हो गया। हिम्मत बहादुर को बुन्देलखण्ड की भौगोलिक स्थिति का अच्छा ज्ञान था, जो अंग्रेजों को अपनी सत्ता स्थापित करने में बड़ी सहायक सिद्ध हुई।

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी प्रभुसत्ता का विकास :

1803 में बेसीन की सन्धि से बुन्देलखण्ड का वह क्षेत्र, जो मराठों के अधीन था, उस पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया।[2] इस क्षेत्र पर अपना संगठन तथा प्रशासन प्रभावशाली बनाने के लिये 1803 में अंग्रेज अधिकारी कैप्टन बेली बुन्देलखण्ड पहुँचा।[3] बेली ने जिस प्रकार का शासन प्रारम्भ किया वह मौलिक रूप में सैनिक तथा राजस्व वसूल करने वाला था। इसके पश्चात् अंग्रेजी सत्ता का विस्तार प्रारम्भ हुआ, जिसे

1- एचीन्सन सी०यू०, ट्रीटीज इन्गेजमेन्ट्स एण्ड सनद, पृष्ठ 187.

2- उक्त। भाग-5, कलकत्ता 1909, पृष्ठ 295.

3- स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउण्ट आफ एन.डब्ल्यू. पी. (बुन्देलखण्ड) भाग-1, इलाहाबाद 1874, पृष्ठ 366.

परास्त कर उसके क्षेत्र पर अधिकार कर लिया गया ।[1] अंग्रेजों तथा शमशेर बहादुर के बीच हुये समझौते के अनुसार उसे 4 लाख की वार्षिक पेंशन तथा बाँदा में रहने की अनुमति भी दे दी गई । 1812 में इस समझौते की पुनःपुष्टि की गई ।

शमशेर बहादुर की मृत्यु 1823 में हुई इसके बाद उसका उत्तराधिकारी उसी का भाई जुल्फकार अली हुआ । जुल्फकार अली की मृत्यु के बाद अलीबहादुर गद्दी पर बैठा और उसने 1857 में अंग्रेजों के विरूद्ध बिगुल बजाया । बागी हो जाने के कारण उसकी 4 लाख की पेंशन जब्त कर ली गई तथा उसका निवास बाँदा से हटाकर इन्दौर कर दिया गया । बाद में सरकार ने 36 हजार रुपया प्रति वर्ष उसके जीवन-निर्वाह के लिये देना स्वीकार किया । इस प्रकार अगस्त 1873 में उसकी मृत्यु हो गई ।[2]

बाँदा पर अधिकार करने के साथ ही साथ अंग्रेजों ने यमुना नदी के आस-पास के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया जिसकी वार्षिक आय 14लाख रुपया थी । इन्हीं क्षेत्रों को लेकर आधुनिक बाँदा, हमीरपुर तथा जालौन जिलों का गठन किया गया । धीरे-धीरे अंग्रेजी सत्ता बुन्देलखण्ड के चारों ओर फैल गई । अनेकों राजाओं तथा सामन्तों ने अंग्रेजी सत्ता की सर्वोच्चता को स्वीकार कर लिया । 1817 में जैसे ही पेशवा ने अपने अधिकार को बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों के पक्ष में छोड़ दिया,

---

1- एचीन्सन सी0यू0, ट्रीटीज इन्गेजमेन्ट्स एण्ड सनद, पृष्ठ 188.

2- उक्त ! भाग-5, कलकत्ता 1909, पृष्ठ 227-230.

उसके परिणाम स्वरूप तमाम जागीरदारों तथा राजाओं,महाराजाओं ने अंग्रेजी सत्ता के समक्ष समर्पण कर दिया । धीरे-धीरे राजाओं को सरकार की ओर से सनद दी जाने लगी और इस प्रकार इस क्षेत्र में अंग्रेजी शासन स्थापित हो गया ।

अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित की गई बुन्देलखण्ड की रियासतें :

1803 से 1857 के बीच अंग्रेजी साम्राज्यवादी शक्ति ने बुन्देलखण्ड की अनेकों रियासतों को ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना लिया । टिहरी,दतिया और समथर की रियासतों के साथ अंग्रेजों के दिखावे के पत्र थे,जबकि अन्य राजाओं को सनद अथवा इकरारनामा देकर अंग्रेजों ने उन्हें अपने समझौते से बाँध लिया ।

जालौन की रियासत :

जिस समय अंग्रेजों ने बुन्देलखण्ड में प्रवेश किया उस समय जालौन में मराठों का आधिपत्य था और वहाँ का शासक नाना गोविन्द राव था । चूंकि बाँदा के नवाब शमशेर बहादुर ने अंग्रेजों के विरुद्ध अभियान प्रारम्भ किये थे और उसमें जालौन के सूबेदार नाना गोविन्द राव ने भी अंग्रेजों का विरोध किया था । इसीलिये 1806 में जालौन में अंग्रेजों का अधिपत्य हो गया,किन्तु इसी वर्ष उसने जब अंग्रेजों के समक्ष आत्म - समर्पण कर दिया तब यहाँ का शासन नाना गोविन्द राव को वापस मिला,किन्तु कालपी तथा यमुना के किनारे के गाँवों को अंग्रेजों ने अपने अधीन कर लिया । नाना गोविन्द राव ने अंग्रेजों की सेवा तथा मदद करने का वचन दिया । 1822 में उसकी मृत्यु हुई तथा उसका उत्तराधिकारी उसी का पुत्र बालाराव गोविन्द हुआ जिसकी मृत्यु

निःसन्तान 1832 में हो गई । बालाराव की विधवा पत्नी ने एक लड़के को गोद लिया जिसका नाम राव गोविन्द राव था । उसकी भी मृत्यु 1840 में हुई और तभी से जालौन पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया ।[1]

झाँसी की रियासत :

झाँसी की रियासत से अंग्रेजों की पहली सन्धि यहाँ के सूबेदार शिवराम भाऊ से हुई थी । 1815 में उसका उत्तराधिकारी रामचन्द्र राव हुआ जिससे अंग्रेजों ने 1817 में दूसरी सन्धि की । रामचन्द्र राव निःसन्तान था । 1835 में उसकी मृत्यु के बाद उसके चाचा रघुनाथ राव को गद्दी मिली । उसकी भी मृत्यु निःसन्तान हुई । अतः गद्दी पर उसका छोटा भाई गंगाधर राव बैठा । गंगाधर राव को अयोग्य बताकर कुछ समय तक यहाँ अंग्रेजों ने अपना आधिपत्य बनाये रखा, किन्तु 27 नवम्बर 1842 को अंग्रेजी अधिकारियों और गंगाधर राव के बीच में एक समझौता हुआ जिसके आधार पर झाँसी का शासन गंगाधर राव को पुनःवापस मिला । 1848 में उसका विवाह रानी लक्ष्मी बाई से हुआ जिसका 1852 में एक पुत्र भी पैदा हुआ, किन्तु दुर्भाग्यवश बाल्यावस्था में ही मृत्यु हो गई । अतःनिःसन्तान गंगाधर राव ने आनन्द राव नामक एक बच्चे को गोद लिया, लेकिन इस गोद-नामे को ब्रिटिश सरकार ने मान्यता नहीं दी और झाँसी की रियासत को अंग्रेजी शासन में मिला लिया ।

जैतपुर :

जैतपुर की रियासत छत्रसाल बुन्देला के हाथ में थी । 1852 में यहाँ के राजा केसरी सिंह के साथ ब्रिटिश सरकार ने एक सनद पर

1- एचीसन सी०यू०, ट्रीटीज इन्गेजमेन्ट्स एण्ड सनद, पृष्ठ 190.

हस्ताक्षर किया जिसके अनुसार जबतक कि राजा केसरी सिंह तथा उसके उत्तराधिकारी अंग्रेजों के प्रति वफादार बने रहे, तब तक पनवारी परगने के 52 गाँवों में उनकी जमींदारी बनी रहेगी ।[1] केसरी सिंह के बाद परीक्षित गद्दी पर बैठे जिन्हें बागी होने के आरोप में 1842 में उनकी रियासत पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया । उसके पश्चात् खेत सिंह को यहाँ की जागीर दे दी गई । 1849 में बिना किसी पुत्र के उनकी भी मृत्यु हो गई । अतः ब्रिटिश सरकार ने उनकी रियासत पर अधिकार कर लिया ।[2]

<u>बाड़ी :</u>

बाड़ी एक छोटी-सी जागीर थी जिसे 1807 में परशुराम को अंग्रेजों द्वारा दिया गया था । परशुराम डकैतों के एक गिरोह का सरदार था जिसने बुन्देलखण्ड में शान्ति व्यवस्था स्थापित करने में अंग्रेजों की मदद की थी । 1850 में उसकी मृत्यु हो जाने के बाद इस रियासत पर भी अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया ।[3]

उपरोक्त रियासतों व जागीरों के अलावा कुछ ऐसी भी जागीरें तथा रियासतें थीं जिसे अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाया गया । 1857 में रियासतों द्वारा अंग्रेजों का विरोध किये जाने के कारण ही उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया । इन रियासतों में तिरगुवाँ,

---

1- एचीन्सन सी0यू0, ट्रीटीज इन्गेजमेन्ट्स एण्ड सनद्स, पृष्ठ 249-255.

2- उक्त । पृष्ठ 190.

3- उक्त । पृष्ठ 255-259.

चिरगाँव,परवर,बिजयराघो गढ़,शाहगढ़,बानपुर तथा अन्य कुछ छोटी-छोटी रियासतें थीं ।[1] इस प्रकार मराठों से प्राप्त बुन्देलखण्ड का क्षेत्र तथा विभिन्न रियासतों को ब्रिटिश साम्राज्य के मिलाने से बाँदा, हमीरपुर,जालौन तथा झाँसी जिलों का क्षेत्रफल निर्धारित कर उनका गठन किया गया । बुन्देलखण्ड की कुछ रियासतों के साथ अँग्रेजों ने जो संधियाँ कर रखी थीं उन रियासतों में ओरछा,दतिया तथा समथर की रियासतें प्रमुख थीं ।

ओरछा :

ओरछा की रियासत ही ऐसी एकमात्र रियासत थी जो पेशवा के अधीन नहीं था । यद्यपि पेशवा ने इसका कुछ भाग लेकर झाँसी की रियासत में मिला लिया था । 23 दिसम्बर 1812 में अँग्रेजी सरकार ने ओरछा के राजा विक्रमाजीत महेन्द्र से मैत्रीपूर्ण एक सन्धि की ।[2] 1834 में विक्रमाजीत का भाई तेजसिंह गद्दी पर बैठा,लेकिन 1842 में उसकी मृत्यु हो गई । मृत्यु से पूर्व ही उसने अपने एक भतीजे सुजान-सिंह को गोद ले लिया था । सरकार ने उस गोद को मान्यता दे दी तथा वहाँ की लरई रानी को उस रियासत का रीजेन्ट नियुक्त कर दिया गया,क्योंकि सुजानसिंह एक अबोध वयस्क था । 1857 के विद्रोह के समय लरई रानी ने अँग्रेजों का साथ दिया था तथा अँग्रेजों की ओर से लरई रानी ने झाँसी पर आक्रमण किये थे ।

1- एचीन्सन सी0यू0, ट्रीटीज इन्गेजमेन्ट्स एण्ड सनद, पृ0 191-259 तथा 260.

2- उक्त ; पृष्ठ 191-192 तथा 261-264.

दतिया :

दतिया की रियासत ओरछा राज्य की एक शाखा थी । 1803 की बेसिन की सन्धि के फलस्वरूप अंग्रेजों की प्रभुता का श्रीगणेश इस क्षेत्र में हुआ था । 15 मार्च 1804 को दतिया के राजा परीक्षित ने अंग्रेजों के साथ एक मैत्रीपूर्ण सन्धि की ।[1] 1839 में परीक्षित की मृत्यु हुई और उसका उत्तराधिकारी विजय बहादुर नियुक्त हुआ, लेकिन उसके उत्तराधिकार की वैधता को बरौनी के मदन सिंह ने चुनौती दी । अंग्रेज सरकार ने मदन सिंह के दावे को अस्वीकार कर दिया तथा विजय बहादुर को मान्यता दे दी । 19 नवम्बर 1857 को विजय बहादुर की मृत्यु हो गई तथा उसका उत्तराधिकारी उसी का गोद लिया हुआ पुत्र भवानी सिंह को नियुक्त किया गया ।

समथर :

12 नवम्बर 1817 को समथर के राजा रणजीत सिंह से अंग्रेजों का एक समझौता हुआ ।[2] 1827 में उसका उत्तराधिकारी उसी का पुत्र हिन्दूपत नियुक्त हुआ ।

उपरोक्त रियासतों के अतिरिक्त अंग्रेजों ने कुछ जागीरदारों को सनदें प्रदान कीं । इनमें से अधिकांश छत्रसाल के वंशज थे । इन सनदों के देने के पीछे जो सिद्धान्त अपनाया गया उसके बारे में एचीन्सन ने लिखा है कि अलीबहादुर की सरकार के समय बुन्देलखण्ड के जो सामन्त और

1- एचीन्सन सी०यू०, ट्रीटीज इन्गेजमेन्ट्स एण्ड सनद, पृष्ठ 192-193 तथा 264-270.

2- उक्त ; पृष्ठ 193-194 तथा 270-273.

जागीरदार अपनी-अपनी जागीरों के मालिक थे,उन्हीं के अधिकार को मान्यता दी गई । यदि उन्होंने ब्रिटिश सरकार का कभी विरोध नहीं किया था । भविष्य में भी ब्रिटिश सरकार के प्रति उन्हें वफादार रहना होगा । ब्रिटिश सरकार का इन रियासतों पर केवल राजनीतिक नियन्त्रण होगा,जबकि इसका शेष प्रबन्ध वहाँ के राजा-महाराजा करेंगे ।[1]

इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक पूरे बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी साम्राज्य फैल गया था । यहाँ के सामन्तों व जागीरदारों से सन्धि और सनद के आधार पर समझौते करके उन्हें बाहरी आक्रमण का न तो डर था और न ही आन्तरिक विद्रोह का । आराम की जिन्दगी का यह फल निकला कि इन जमींदारों का युद्ध-कौशल,साहस, तथा परिश्रमी स्वभाव आदि गुण स्वतः समाप्त हो गये । फलतः इनका पतन होने लगा । इसके अतिरिक्त विलासिता में डूबे रहने के कारण ये अपनी जागीरों का उचित प्रबन्ध भी नहीं कर पाये । अतः इनके किसानों के साथ सम्बन्ध भी खराब हो गये । धीरे-धीरे ये जागीरें भी घटती गयीं । यह स्थिति केवल बुन्देला जमींदारों की ही नहीं थी,बल्कि मराठा जमींदार भी इस बुराई के शिकार हुए । इस प्रकार महाराजा छत्रसाल बुन्देला के समय से स्वाधीनता,देश-भक्ति और साहस की जो परम्परा शुरू हुई थी और जिसे गोविन्द पन्त खेर जैसे मराठा सूबेदारों ने आगे बढ़ाया था,वह अब नष्ट हुई । इन गुणों के स्थान पर धोखा,छलकपट आदि दुर्गुण इन जमींदारों के चरित्र में आगये।

1- एचीन्सन सी०यू०, ट्रीटीज इन्गेजमेन्ट्स एण्ड सनद, पृष्ठ 185-407.

यहाँ तक कि इनमें से अधिकांश ने इस क्षेत्र की स्वतन्त्रता के विरुद्ध 1857 के विद्रोह में अंग्रेजी सरकार का झुककर सहयोग भी दिया ।

निःसन्देह उक्त परिस्थिति में कुछ ऐसे बहादुर भी थे जिन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय योगदान दिया तथा विदेशी साम्राज्य से डटकर संघर्ष किया । उनका यह त्याग हमारे देश-भक्तों के लिए हमेशा रोशनी दिखाने का कार्य करेगा । इस प्रकार 1804 से 1857 तक बुन्देलखण्ड का इतिहास राजाओं-महाराजाओं के पतन तथा यहाँ की जनता की गरीबी तथा दयनीय स्थिति की एक दुःखद कहानी है ।

बुन्देलखण्ड में 1857 का विद्रोह :

1804 से 1857 के बीच पूरे बुन्देलखण्ड पर अंग्रेजी साम्राज्य पूर्ण रूप से छा चुका था । लार्ड डलहौजी का आठ वर्ष का कार्य-काल ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार में अत्यधिक महत्वपूर्ण साबित हुआ । उसकी अपहरण की नीति ने शेष कार्य पूरा किया । फलतः झाँसी की रियासत उसका शिकार हुई । बुन्देलखण्ड में इस घटना का विशेष प्रभाव पड़ा जिससे अंग्रेजों के विरुद्ध असन्तोष बढ़ने लगा । अंग्रेजी शासनकाल में ईसाई मिशनरियों के प्रचार एवं प्रसार से भारतवासियों ने अपने धर्म को बहुत बड़ा खतरा समझा । यहाँ तक कि असन्तोष इस सीमा तक बढ़ चुका था कि इतिहासकार 1856 के वर्ष को तूफान आने के पूर्व की स्थिति समझ रहे थे । ब्रिटिश सरकार की भेदभाव नीति के कारण भारतीय सैनिकों में अत्यधिक असन्तोष था । ये सैनिक यह समझने लगे थे कि उनके ही शस्त्रों के बल पर अंग्रेजी साम्राज्य टिका हुआ है । अतः वह यदि चाहे तो उसे समाप्त भी कर सकते हैं ।[1] भारतीय सैनिकों

1- सेन एस०एन०, अठारह सौ सत्तावन, पृष्ठ 40.

की सेना में उच्च पद नहीं मिल पाते थे । अधिक से अधिक सूबेदार, मेजर के पद तक वह पहुँच सकता था, किन्तु यहाँ तक पहुँचने के लिये भी उसे अनेकों परीक्षाओं से गुजरना पड़ता था । इसके साथ ही डलहौजी की अपहरण की नीति को भारतीय हिन्दू सैनिकों ने पसन्द नहीं किया ।[1] भारतीय सैनिकों ने यह सोचा कि अपहरण की नीति के कारण अधिकतर क्षेत्र ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल होंगे और सैनिकों को भी उन दूर-दूर क्षेत्रों तक जाना पड़ सकता है । इसके साथ ही कारतूस में सूअर और गाय की चर्बी की घटना ने तो हिन्दू और मुस्लिम, दोनों सैनिकों के धार्मिक भावना को उत्तेजित कर दिया । ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय सैनिकों की संख्या अंग्रेजी सैनिकों की संख्या में काफी बढ़ चुकी थी । संख्या की दृष्टि से डलहौजी के भारत छोड़ने के समय तक भारतीय सैनिकों की संख्या दो लाख, पैंतीस हजार थी, जबकि अंग्रेज सैनिक 45322 थे ।[2]

सरजान लारेन्स का यह मत है कि 1857 के विद्रोह की जड़ सैनिक असन्तोष थी । इसके विपरीत कुछ इतिहासकारों का विचार है कि यह विद्रोह मुस्लिम षड्यन्त्र का परिणाम था जिसमें उन्होंने हिन्दू असन्तोष का अधिक से अधिक लाभ लिया ।[3]

उपरोक्त असन्तोष के अतिरिक्त सरकार की आर्थिक स्थिति से आयात तथा निर्यात नीति के कारण भारतीय उद्योग धन्धे नष्ट हो

1- के0, एण्ड मैलेसन, लाइफ आफ इण्डिया आफीसर्स, भाग-1, पृ0 216.

2- राबर्ट्स पी0ई0, हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इण्डिया, पृष्ठ 365.

3- उक्त ।

रहे थे । बुन्देलखण्ड में इस आर्थिक शोषण की नीति के कारण अनेकों उद्योग नष्ट हो गये, इससे असन्तोष की गति तीव्र हुयी ।

उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त बुन्देलखण्ड में इस विद्रोह के कुछ अन्य भी कारण थे । उदाहरण के लिये झांसी में रानी लक्ष्मीबाई के परम्परागत मन्दिर के खर्च के लिये जो गांव दिये गये थे उसे अंग्रेजों ने अपने अधिकार में ले लिया ।[1] झांसी जिले में गोहत्या की छूट दिये जाने से वहां के हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को अत्यधिक ठेस लगी ।[2] इसके अतिरिक्त अनेकों बुन्देला तथा मराठा जागीरदार सरकार से इसलिये नाराज थे, क्योंकि उनमें से अधिकांश की जागीरें जब्त कर ली गई थीं ।[3] इसमें उदगांव, नौंठोर और जिगनी के कई जागीरदार थे जो अपनी जागीर जब्त हो जाने के कारण असन्तुष्ट थे ।[4] अंग्रेज सरकार के विरूद्ध जो असन्तोष फैल रहा था उसमें यह भी अफवाह फैली कि बाजार में जो आटा बिक रहा है उसमें हड्डी का चूरा मिलाया गया है, इसके साथ ही कारतूस वाली घटना ने तो आग में घी का काम किया ।[5] बांदा में भी सरकार की साम्राज्यवादी नीति से वहां के जागीरदार तथा वहां का नवाब अलीबहादुर रूष्ट था । असन्तोष की यह लहर बुन्देलखण्ड के लगभग सभी जिलों में व्याप्त थी ।

1- पाठक एस०पी०, झांसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 17.

2- जोशी ई०बी०, झांसी गजे०, लखनऊ 1965, पृष्ठ 55

3- वही ।

4- एटकिन्सन ई०टी०, बुन्देलखण्ड गजे०, पृष्ठ299.

5- एटकिन्सन ई०टी०, बुन्देलखण्ड गजे०, पृष्ठ 299.

झाँसी के राजा गंगाधर राव ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में अपनी मृत्यु के एक दिन पूर्व पाँच वर्ष के एक बच्चे को गोद लिया था जिसका नाम दामोदर राव था, लेकिन सरकार ने इस गोदनामें को मान्यता प्रदान नहीं की ।[1] गंगाधर राव ने अपनी पत्नी महारानी लक्ष्मीबाई को बच्चे के वयस्क होने तक रियासत की रीजेन्ट नियुक्त किया[2] लेकिन सरकार की हड़प नीति के कारण इसे भी मान्यता नहीं दी गई । गंगाधर राव ने ब्रिटिश सरकार को पत्र लिखकर अपने परिवार द्वारा अंग्रेजों की, की गई सेवा का उल्लेख किया, लेकिन इसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ । अतः झाँसी की रियासत को अंग्रेजी शासन का अंग बना लिया गया ।[3]

बुन्देलखण्ड के अन्य इलाके विशेषतः बाँदा, जालौन, हमीरपुर तथा ललितपुर में भी असन्तोष अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था । यहाँ के क्रान्तिकारियों को प्रेरणा रानी लक्ष्मीबाई से मिली और जब लक्ष्मीबाई ने घोषणा की - "मेरी झाँसी नहीं दूँगी[4]" इससे लोगों की नसों में विद्रोह रूपी रक्त का संचार हो गया और विद्रोह का सूत्रपात हो गया । इसी बीच झाँसी में स्थित बारहवीं पैदल सेना के एक जवान के रिस्तेदार ने दिल्ली से एक पत्र लाकर झाँसी के सैनिकों में वितरित किया - कि बंगाल प्रेसीडेन्सी के सभी सैनिकों ने विद्रोह कर दिया और झाँसी में सैनिकों ने विद्रोह में हिस्सा नहीं लिया है इसलिए सैनिक -

---

1- मिश्रा ए०एस०, नाना साहब पेशवा, लखनऊ 1961, पृ0 334-335.

2- वही ।

3- पाठक एस०पी०, झाँसी डुरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 16.

4- सेन एस०एन०, अठारह सौ सत्तावन, पृष्ठ 270.

जाति के विरुद्ध यह कार्य शर्मनाक पूर्ण है ।[1] यह सूचना अमन खान नामक सैनिक ने राबर्ट हैमिल्टन को दी थी ।[2]

5 जून को बारहवीं देशी पैदल सेना के पैंतीस जवानों ने झांसी में विद्रोह की घोषणा की तथा स्टार फोर्ट[3] पर अधिकार कर लिया। इस किले में रखा हुआ बारूद तथा खजाना विद्रोहियों ने अपने हाथ में ले लिया । ऐसी स्थिति में सरकार ने पड़ोसी रियासतों जैसे -ओरछा, दतिया और गुरसराय के राजाओं से मदद की मांग की[4] लेकिन रियासतों के राजाओं ने कोई जवाब नहीं भेजा । उसी दिन रानी झांसी के समर्थकों की प्रेरणा से यहां की सेना ने विद्रोह करते हुये कैप्टन डनलप, लैफ्टीनेन्ट कैम्पबैल और टर्नबुल तथा बारहवीं पैदल सेना के दो स्वामी भक्त हवलदारों को गोली से उड़ा दिया ।[5] शीघ्र ही असन्तुष्ट बुन्देला जागीरदार जिनमें कटेरा के ठाकुर प्रमुख थे, इस विद्रोह में शामिल हो गये । झांसी के क्रान्तिकारियों ने उसी रात्रि को एक बैठक की जिसमें बख्शीस अली जेल दरोगा की प्रेरणा से यह प्रस्ताव पास हुआ कि झांसी में रहने वाले सभी यूरोपीय अधिकारियों का कत्ल कर दिया जाए तथा झांसी का शासन या तो रानी लक्ष्मी-बाई को या सदाशिव राव नारायण परोलवाल को दे दिया जाए ।[6]

1- फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन नं0 283, ता0 30 दिसम्बर 1859.
2- पाठक एस0पी0, झांसी डुरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 17.
3- यह किला झांसी छावनी में स्थित स्टार की तरह है । आजकल झांसी कचहरी के पास इसे सैनिक डिपो के नाम से पुकारा जाता है।
4- एटकिन्सन ई0टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, पृष्ठ 299.
5- वही ।
6- वही ।

7 जून को दो यूरोपीय अधिकारी स्काट तथा परिस्लि को केप्टन स्कोने ने लक्ष्मीबाई के पास इस निवेदन के साथ भेजा कि जैसे ही यूरोपीय अधिकारी स्टार फोर्ट से बाहर निकलते हैं वैसे ही रानी उनको संरक्षण दे दें,लेकिन विद्रोहियों ने इन लोगों का भी कत्ल कर दिया । रानी ने विद्रोहियों को अपना धन देकर सहायता की । इस प्रकार 7 तथा 8 जून को स्टार फोर्ट पर आक्रमण किया गया जिसमें केप्टन जोर्डन को मार डाला गया । इसके पश्चात् वहाँ रह रहे सभी यूरोपियों को गिरफ्तार कर लिया गया तथा क्रान्ति-कारी उन्हें खींच कर जोखनबाग ले आये जहाँ उनमें से 66 लोगों का कत्ल कर दिया गया । इस भयानक दृश्य में बख्शीस अली तथा रानी के समर्थकों ने मुख्य भूमिका निभाई ।[1] 9 जून को रानी की सत्ता की घोषणा कर दी गई । प्रातः 11 जून को विद्रोही सैनिक झाँसी से दिल्ली की ओर प्रस्थान कर गये ।[2] इस प्रकार झाँसी में विद्रोह का शुभारम्भ हुआ ।

जून 1857 के प्रारम्भ में ललितपुर में विस्फोट की स्थिति काफी बिगड़ चुकी थी । झाँसी के विद्रोह की खबर पड़ोसी जिले ललितपुर में आग की चिंगारी की तरह फैली । परिणाम स्वरूप इस जिले के बुन्देला ठाकुरों ने चारों ओर बड़ी संख्या में इकट्ठा होकर लूटपाट प्रारम्भ किया । चन्देरी,तालबेहट और ललितपुर विद्रोह की आग से अधिक प्रभावित थे । बानपुर के राजा मर्दन सिंह ने ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिये इन विद्रोहियों को प्रोत्साहित

1- एटकिन्सन ई0टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, पृष्ठ 299.

2- वही ।

करना शुरू किया । ।। तथा 12 जून को मर्दन सिंह ने अपने बन्दूकची सैनिकों के साथ मालथन की ओर वाले रास्ते पर घेरा डाल दिया । उसने ग्वालियर की छठीं रेजामेन्ट को भी विद्रोह के लिये प्रेरित किया,इसके साथ ही झाँसी के विद्रोहियों से सम्पर्क स्थापित करते हुये विद्रोह कोआगे बढ़ाने में मर्दन सिंह ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । इन विद्रोहियों के डर से ललितपुर के इन्चार्ज कैप्टन गोर्डन ने ।। जून 1758 को सरकारी खजाने को सैनिक शिविर में रखने का निश्चय किया । इसके बाद ललितपुर के विद्रोही सागर तथा शाहगढ़ की ओर चले गये जहाँ शाहगढ़ के राजा ने उन्हें संरक्षण प्रदान किया ।[1] इस प्रकार पूरा ललितपुर विद्रोह का केन्द्र बना रहा ।

इलाहाबाद में विद्रोह के प्रारम्भ की खबर सुनकर हमीरपुर के मजिस्ट्रेट लायड[2] ने अपने वफादार चरखारी के राजा तथा बेरी रियासत और बावनी के नवाब से मदद की माँग की । इन रियासतों से 100 सैनिक तथा एक गन प्रति रियासत से मदद के रूप में प्राप्त करने में वह सफल रहा । 12 जून को 56 देशी पैदल सेना के कुछ सूबेदारों ने तथा कुछ अन्य लोगों ने एक सभा की अतः दूसरे दिन हमीरपुर में विद्रोह प्रारम्भ हो गया । बाद में चरखारी बावनी,लार्ड की मदद के लिये जो सैनिक भेजे थे उन्हें वापस बुला लिया इसी बीच उरई में बन्दी बनाये गये यूरोपीय जिसमें श्रीमती रायकस और ब्राउनी सम्मिलित थीं,हमीरपुर पहुँचीं तथा नाव से इलाहाबाद जाने का प्रयास किया,लेकिन थोड़ी ही दूर यात्रा

1- एटकिन्सन ई०टी०, बुन्देलखण्ड गजेटियर, पृष्ठ 354.

2- वही ! पृष्ठ 187.

करने के बाद उन पर गोली चलाई गई तथा उन्हें यमुना में फेंक दिया गया । आस-पास के लोगों ने वहां रह रहे यूरोपियनों को अच्छी तरह पीटा तथा उन्हें लूट लिया ।[1] रमारी,सरकनी बुजुर्ग तथा खुर्द के जमींदारों ने आस-पास लूटपाट करते हुये हिंसा का परिचय दिया । जनवरी 1858 में तात्याटोपे ने चरखारी पर आक्रमण किया । उसकी मदद जैतपुर के देशपत नामक क्रान्तिकारी ने की । मौदहा पर बांदा के नवाब ने अधिकार कर लिया था । इस प्रकार हमीरपुर भी पूरी तरह से विद्रोह की लपेट में आ गया था ।

6 जून 1857 को उरई में यह खबर फैली कि झांसी में स्थित पैदल सेना के जवानों ने विद्रोह कर दिया है तथा स्टार किले को अपने अधिकार में ले लिया है ।[2] विद्रोह के भय से जालौन के डिप्टी कमिश्नर ब्राउनी ने 4 लाख 50 हजार रुपये का अपना खजाना ग्वालियर भेज दिया । इसी समय कालपी में डिप्टी-कलेक्टर शिवप्रसाद कैप्टन ब्राउनी को एक पत्र देकर अपने पद से त्यागपत्र देने की इच्छा व्यक्त की । धीरे-धीरे विद्रोह की खबर पूरे जिले में फैल गई ।

इस प्रकार पूरे बुन्देलखण्ड में यहां की क्रान्तिकारी जनता तथा आन्दोलनकारियों ने ब्रिटिश सरकार का डटकर मुकाबला किया। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई बांदा के नवाब अलीबहादुर,कानपुर के मर्दनसिंह तथा अन्य विद्रोही राजाओं ने अंग्रेजी सरकार की हुकूमत

1- एटकिन्सन ई0टी0, बुन्देलखण्ड गजेटियर,पृष्ठ 187.

2- वही । पृष्ठ 230.

को गहरा धक्का दिया । जनता में इस प्रकार जोश भरा हुआ था कि लोग अपना सब कुछ त्याग करने को तैयार बैठे थे । अंग्रेजी सरकार का साथ देने वाली टिहरी की रियासत पर झाँसी की जनता ने आक्रमण किया । चरखारी, गुरसरायं तथा विदेशी सत्ता की मदद करने वाली रियासतों पर भी विद्रोहियों ने अपने प्रहार किये, किन्तु जनरल ह्यूरोज की व्यूह रचना तथा क्रान्तिकारियों के बीच परस्पर तालमेल का अभाव तथा साधन आदि की कमी के कारण बुन्देलखण्ड में यह विद्रोह सफल तो नहीं हुआ, किन्तु अंग्रेजी शासन की नींव अवश्य हिला दी । 1858 में शान्ति स्थापित हो जाने के बाद अंग्रेजी सैनिकों ने झाँसी, बाँदा, जालौन तथा आस-पास के क्षेत्रों को खूब लूटा जिससे आगामी वर्षों में गरीबी और मँहगाई का बोलबाला हुआ । इस प्रकार किसी तरह 1858 में अंग्रेजी शासन की स्थापना हो सकी । 1858 से 1947 तक सरकार की नीति का एकमात्र उद्देश्य इस क्षेत्र से अधिक से अधिक राजस्व वसूल करना था । इस क्षेत्र का आधुनिक पिछड़ापन इस कठोर राजस्व नीति के कारण सम्भव हो सका । 1858 से 1947 तक का इतिहास इस क्षेत्र की गरीबी, भुखमरी तथा आर्थिक कठिनाइयों का इतिहास है ।

बुन्देलखण्ड एजेन्सी का गठन :

बुन्देलखण्ड भारत का हृदय प्रदेश होने के नाते उसके केन्द्र में स्थित है । इसकी भौगोलिक सीमाओं के बारे में यह स्वीकार किया जाता है कि जिस क्षेत्र के उत्तर में यमुना, उत्तर पश्चिम में चम्बल, दक्षिण में जबलपुर तथा सागर, दक्षिण पूर्व में बघेलखण्ड तथा मिर्जापुर की पहाड़ियाँ स्थित हैं उसे हम बुन्देलखण्ड के नाम से जानते हैं । इस क्षेत्र में यमुना, चम्बल, बेतवा, धसान और केन जैसी नदियाँ प्रवाहित

होती है । बुन्देलखण्ड में सबसे पहले 1802 में बेसीन की सन्धि से अंग्रेजी प्रभुसत्ता का प्रारम्भ हुआ, जबकि कैप्टन जान बेली को यहाँ का पोलिटिकल एजेन्ट नियुक्त किया गया ।[1] 1811 में शान्ति व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद अंग्रेज गवर्नर जनरल एजेन्ट की नियुक्ति बुन्देलखण्ड में की गई जिसका मुख्यालय बाँदा में स्थित था । 1818 में यह मुख्यालय बाँदा से बदलकर कालपी कर दिया गया । 1824 में हमीरपुर तथा पुन: 1832 में बाँदा को अंग्रेजी एजेन्ट का मुख्यालय बना दिया गया ।[2] 1835 में इस क्षेत्र का शासन उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर को सौंपा गया जिसका मुख्य केन्द्र आगरा में था । 1841 में सागर तथा नर्बदा क्षेत्र में कमिश्नर के हाथ में बुन्देलखण्ड का प्रशासन हस्तान्तरित कर दिया गया, उसके सहायक के रूप में झाँसी में एक अधिकारी की नियुक्ति की गई तत्पश्चात् झाँसी से यह स्थान बदलकर नगाँव कर दिया गया ।[3] 1854 में मध्य भारत एजेन्सी का गठन हुआ और इस क्षेत्र का प्रशासन मध्य भारत के एजेन्ट के हाथ में दे दिया गया । वित्तीय बचत के कारण बुन्देलखण्ड तथा बघेलखण्ड दोनों एजेन्सियों को मिलाकर उनका प्रशासन एक में मिला दिया गया और यह आदेश एक दिसम्बर, 1931 से लागू हुआ ।[4] दोनों एजेन्सियों को मिलाने के बाद नगाँव को

1- बुन्देलखण्ड पोलिटिकल एजेन्सी रिकार्ड्स की भूमिका ।

2- वही ।

3- वही ।

4- वही ।

इसका मुख्यालय बना दिया गया । इसको देख-रेख अधिकारी को बुन्देलखण्ड के पौलिटिकल एजेन्ट का नाम दिया गया ।

बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड को मिलाने से 1931 में इस क्षेत्र में 33 रियासतें और जागीरें शामिल थीं । इनमें अजयगढ़, अलीपुरा, बंका पहाड़ी, बाओनी, बरौण्डा, बेरी, भैसौण्डा, बीहट, बिजावर, बिजना, चरखारी, छतरपुर, दतिया, धुरवई, गरौली, गौरीहार, जासो, जिगनी, कामता रजौला, कोठी, लुगासी, मैहर, नगौद, नेगाँव रिबाई, ओरछा, पहरा पालदेव, पन्ना, सम्थर, सरीला, सुहावल और टोड़ी फतेहपुर आदि सम्मिलित थे ।[1]

लेकिन हमें जिस बुन्देलखण्ड क्षेत्र का अध्ययन करना है उसका अभिप्राय ब्रिटिश बुन्देलखण्ड है जिसमें झाँसी, ललितपुर, बाँदा, हमीरपुर तथा जालौन जिले शामिल थे । समय-समय पर इन जिलों का प्रशासनिक क्षेत्र प्रायः बदलता रहा है । उदाहरण के लिये बाँदा और हमीरपुर, इलाहाबाद राजस्व क्षेत्र के अन्तर्गत् आते थे और इस प्रकार ये इलाहाबाद कमिश्नरी के जिले थे ।[2] जहाँतक जालौन, झाँसी, ललितपुर जिलों का प्रश्न था कि झाँसी कमिश्नरी के अन्तर्गत् थे जिनका मुख्यालय झाँसी में स्थित था ।[3] 1909 में ब्रिटिश बुन्देलखण्ड का कुल क्षेत्रफल 11 हजार 600 वर्ग मील था जो यमुना के उत्तर-पश्चिम से लेकर चम्बल तक फैला हुआ था ।[4]

1- बुन्देलखण्ड पोलिटिकल एजेन्सी रिकार्ड्स की भूमिका ।

2- बुन्देलखण्ड गजेटियर, पृष्ठ 53.

3- वही ।

4- इम्पीरियल गजे0आफ इण्डिया, कलकत्ता 1909, पृष्ठ 212.

भौगोलिक पृष्ठ-भूमि :

यमुना नदी बुन्देलखण्ड की पूर्वी सीमा निर्धारित करती है। वहाँ से लेकर इस क्षेत्र की जमीन समतल दिखाई पड़ती है। यह धीरे-धीरे दक्षिण की ओर बढ़ने पर विस्तृत होती जाती है जहाँ पर यमुना के कुछ मील दूरी पर पहाड़ियाँ दिखाई पड़ती हैं। जालौन, झाँसी और ललितपुर में यह समतल क्षेत्र नदियों के पानी के कटाव के कारण प्राय: स्थान-स्थान पर कटा हुआ दिखाई पड़ता है। यमुना, पहूज, बेतवा और धसान नदियों के संलग्न क्षेत्र में अधिकांशत: कृषि योग्य जमीन का अभाव है।

नि:सन्देह इस क्षेत्र में पहाड़ हैं जिन्हें हम विन्ध्याचल पर्वत का भाग मानते हैं। ये पहाड़ जगह-जगह ऊपर-नीचे पिरामिड के आकार के हैं, लेकिन इस क्षेत्र को पहाड़ी नहीं कहा जा सकता। फ्रैंकलिन ने[1] यहाँ की पहाड़ियों को तीन भागों में विभाजित किया है। पहला बाहरी पहाड़ी, जो उत्तर-पूर्व की ओर स्थित है, इसे विन्ध्याचल पहाड़ के रूप में पुकारा जाता है। इसकी ऊँचाई समुद्र-तट से 2000 फीट से अधिक नहीं है।[2] सिन्ध नदी के किनारे सिंहुड़ा नामक स्थान से यह पहाड़ी शुरू होती है और दक्षिण-पश्चिम की ओर होते हुये नार्वा की ओर चली जाती है। दूसरा पहाड़ों की दूसरी चोटी जिसे फ्रैंकलिन ने पन्ना चोटी के नाम से पुकारा है - पहले प्रकार की पहाड़ी से दक्षिण क्षेत्र से प्रारम्भ होती है। इन पहाड़ियों की ऊँचाई समुद्र-तट से लगभग 1000,50 फीट है।

1- मैमायर आफ बुन्देलखण्ड।

2- वही।

ये पहाड़ियाँ कठरा पास और लुहारगाँव के आस-पास के क्षेत्रों में स्थित है ।[1] तृतीय इस क्षेत्र की तीसरी किस्म की पहाड़ी जिसकी चौड़ाई फ्रैंकलिन ने 15 से 20 मील के बीच बताई है, उसकी समुद्र-तल से ऊँचाई 1700 फीट है । इस प्रकार पहाड़ी होते हुए भी इस क्षेत्र को हम पूर्णतय:पहाड़ी नहीं कह सकते ।

नदियाँ :

उपरोक्त पहाड़ियों से अनेकों नदियाँ निकलकर यमुना में मिलती हैं । इन प्रमुख नदियों में सिन्ध नदी का उद्गम मालवा में सिरोंज नामक स्थान से हुआ है । कुछ दूरी तक यह उत्तर की ओर बहते हुए दक्षिण-पश्चिम किनारे तक बुन्देलखण्ड को स्पर्श करते हुये वहाँ से उत्तर-पूर्व की ओर लगभग 150 मील उत्तर-पूर्व की ओर मुड़ते हुये यमुना में मिल जाती है । इस क्षेत्र की दूसरी प्रसिद्ध नदी बेतवा है जिसका उद्गम श्रोत भोपाल को माना गया है ।[2] ठीक इसी प्रकार केन भी बुन्देलखण्ड के दक्षिणी क्षेत्र से निकलते हुये दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ते हुये लगभग 230 मील की दूरी तय कर यमुना में मिल जाती है । उरमल तथा चन्द्रावल इसकी सहायक दो नदियाँ हैं । इसके अलावा सुदूर पूर्व में बगाइन तथा पैसनी नदियाँ भी दक्षिण-पश्चिम से बहती हुई उत्तर-पूर्व में होकर जमुना में मिल जाती हैं । टोंस इस क्षेत्र के दक्षिण से निकलकर उत्तर-पूर्व की ओर बहते हुये रीवाँ क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है । इस

1- एटकिन्सन ,बुन्देलखण्ड गजे0, पृष्ठ 55.

2- जैनकिन्सन ई0जी0, झाँसी सैटिलमेन्ट रिपोर्ट,इलाहाबाद,1871, पैरा 52 से 56 तथा पहरा प्रतिपाल सिंह बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ 34.

प्रकार उपरोक्त नदियाँ बुन्देलखण्ड की महत्वपूर्ण नदियाँ हैं । इनमें पहूज नदी का भी उल्लेख किया जा सकता है,जो ग्वालियर से निकलकर झाँसी जिले में लैलौंज नामक ग्राम के पास प्रवेश करती है।[1]

यदि हम उपरोक्त नदियों की आर्थिक उपयोगिता की दृष्टि से विवेचना करें तो हमें ऐसा प्रतीत होगा कि अँग्रेजी शासनकाल में उपरोक्त दृष्टि से इस क्षेत्र में समृद्ध बनाने में इन नदियों का कोई महत्वपूर्ण क्षेत्र नहीं रहा । पहला इनमें अधिकांशत:नदियाँ वर्षा ऋतु में बाढ़ग्रस्त हो जाती थीं,किन्तु गर्मी के समय अपेक्षाकृत पानी का अभाव हो जाता था । अत:सिंचाई की दृष्टि से उपयोगी न हो सका । दूसरा पठारी क्षेत्रों से बहने के कारण इनकी तलहटी में उपजाऊ मिट्टी की तह नहीं जम सकी । तीसरा इनमें से अधिकांश नदियाँ,नाले कृषियोग्य जमीन को कटाव के द्वारा बहाकर उर्वरा शक्ति को नष्ट करती रहीं । इनका बहाव तेज होने के कारण भूमि-कटाव निरन्तर बढ़ते रहे । अधिकांशत:इन नदियों की तलहटी पथरीली होने के कारण भी यातायात की दृष्टि से उनकी उपयोगिता नहीं रही । इस प्रकार उपरोक्त नदियाँ आर्थिक विकास की दृष्टि से इस क्षेत्र के लिये उपयोगी सिद्ध न हो सकीं ।

इस प्रकार भौगोलिक पृष्ठ-भूमि का सर्वेक्षण करने पर यह प्रतीत होता है कि बुन्देलखण्ड की नदियाँ,पहाड़ आदि यहाँ की आर्थिक स्थिति को अँग्रेजी शासनकाल में सुदृढ़ता प्रदान करने में सहायक सिद्ध न हो सके,क्योंकि उनका इस्तेमाल इस दृष्टि से विदेशी शासकों ने नहीं किया ।

1- पाठक एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 35.

——:0:——

अध्याय द्वितीय

बुन्देलखण्ड की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठ भूमि तथा अंग्रेजी शासन के विरुद्ध घृणा की भावना :

1802 की बेसीन की सन्धि से बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी प्रभुसत्ता का प्रारम्भ हुआ । इसके साथ ही कैप्टन बेली को इस क्षेत्र पर अधिकार करने के लिये नियुक्त किया गया । बेली ने बाँदा में आकर कार्य-भार ग्रहण किया । चूंकि अंग्रेजी शासन का प्रमुख उद्देश्य यहाँ का सामाजिक, आर्थिक शोषण करते हुए अधिक से अधिक राजस्व प्राप्त करना था इसलिये बेली ने इस क्षेत्र के किसानों एवं जमीदारों के लिये राजस्व की दरें निर्धारित करने की दिशा में तत्परता दिखाई । राजस्व के मामले में तथा इस क्षेत्र के बारे में अधिक परिचित न होने के कारण उसने मिर्जा जाफर को लखनऊ से बुलाकर राजस्व-प्रबन्ध के कार्य का श्रीगणेश किया । बाँदा के नवाब के समय की राजस्व दरों को ध्यान में रखते हुये स्थायी व्यवस्था होने तक जल्द-बाजी में भूमिकर की दरें निर्धारित की गयीं ।

बाँदा का लगभग सम्पूर्ण जिला अंग्रेजों को दिसम्बर 1803 की पूना की सन्धि के द्वारा प्राप्त हुआ था ।[1] इस क्षेत्र पर 1804 का

1- एचीसन सी0यू0, ट्रीटीज इन्गेजमेन्ट एण्ड सनद , जिल्द 5, कलकत्ता 1909, पृष्ठ 295.

रेगुलेशन नम्बर 4 लागू किया गया ।[1] जहाँतक कालिंजर का प्रश्न था,उसका प्रबन्ध 1812 तक कालिंजर के चौबे जागीरदारों के पास में था ।[2] बाद में चलकर अंग्रेजी सरकार तथा चौबे जागीरदारों के बीच क्षेत्र का आपस में आदान-प्रदान किया गया । अत:चौबे जागीरदार को भिटारी तथा बदौसा के कुछ गाँव प्राप्त हुए । इसके बदले अंग्रेजों ने कालिंजर के क्षेत्र पर अधिकार किया ।[3] परगना खानदेह जो जालौन के मराठा सूबेदार के अधीन था, वह भी 1818 में अंग्रेजों को प्राप्त हो गया । ठीक इसी तरह बाँदा के अन्य क्षेत्रों पर भी अंग्रेज अपना आधिपत्य स्थापित करने में सफल हो गये ।

1854 में राजा गंगाधर राव की मृत्यु के बाद झाँसी की रियासत को अंग्रेजी शासन में मिला लिया गया था । इसके बाद के कुछ वर्षों का समय रानी लक्ष्मीबाई और अंग्रेजों के बीच परस्पर विरोधी दावे को लेकर गुजरता रहा,किन्तु 1858 में शान्ति व्यवस्था स्थापित होने के बाद राजस्व कर-निर्धारण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई । राजा गंगाधर राव की मृत्यु के समय झाँसी की रियासत जिस पर अंग्रेजों ने अधिकार किया था उसमें 9 परगने थे, झाँसी,पिछोर,करेरा,मऊ,पंडवाहा और विजयगढ़,इसके अतिरिक्त मोंठ,भाण्डेर और गरौठा भी अंग्रेजी शासन के अंग थे ।[4] ललितपुर

1- एचीन्सन सी0यू0,ट्रीटीज इन्गेजमेन्ट एण्ड सनद,जिल्द 5, कलकत्ता 1909, पृष्ठ 295.

2- एटकिन्सन ई0टी0,बुन्देलखण्ड गजे0,इलाहाबाद 1878, पृष्ठ 366.

3- वही ।

4- पाठक एस0पी0,झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल,पृष्ठ 92.

1891 तक एक पृथक जिला था[1] अत: झाँसी व ललितपुर के राजस्व बन्दोबस्त अलग-अलग समय पर किये गये, लेकिन 1903 में झाँसी और ललितपुर का राजस्व-प्रबन्ध पिम ने साथ-साथ किया, क्योंकि उस समय ललितपुर झाँसी में मिलाकर उसका एक सब-डिवीजन बना दिया गया था ।

क्षेत्रों में प्राय: परिवर्तन होने के कारण राजस्व इतिहास के प्रारम्भिक स्वरूप के बारे में विशेष जानकारी प्राप्त करना कठिन प्रतीत होता है ।[2] 1857 के विद्रोह के समय राजस्व निर्धारण सम्बन्धी पत्रावलियों के नष्ट हो जाने के कारण भी हमें इस सम्बन्ध में काफी कठिनाई उठानी पड़ती है ।[3]

झाँसी जिले की राजस्व व्यवस्था :

जहाँतक झाँसी का प्रश्न है, इसके आधे क्षेत्र का बन्दोबस्त 1857 के विद्रोह के पूर्व ही कैप्टन जोर्डन ने कर दिया था । शेष आधे क्षेत्र का प्रबन्ध शान्ति व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद किया गया । कैप्टन जोर्डन ने मोंठ, भाण्डेर और गरौठा के परगनों का भी बन्दोबस्त कर दिया था । झाँसी जनपद की भूमि-राजस्व प्रबन्ध की विवेचना करने से पूर्व यह उचित प्रतीत होता है कि अंग्रेजी शासन से पूर्व बुन्देला और मराठा समय की इस क्षेत्र की राजस्व व्यवस्था का अध्ययन कर लिया जाए । ऐसा प्रतीत होता है कि

1- पाठक एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 92.

2- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0, झाँसी गजे0, इलाहाबाद 1909, पृ0136.

3- जैनकिन्सन ई0जी0, झाँसी सैटिलमेन्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद 1871, पृष्ठ 108.

बुन्देला और मराठा के कार्यकाल में किसी निश्चित् अवधि तक बन्दोबस्त नहीं किये जाते थे। लेकिन निश्चित् ही ये शासक अपने वफादारों तथा रिश्तेदारों को कई गाँव जागीर के रूप में दे देते थे। इन गाँवों को देने के पीछे सम्भवत: यह उद्देश्य होता था कि ये समय-समय पर विशेषत: युद्ध के समय अपने लड़ाकू सैनिक अपने शासकों को उपलब्ध कराते रहेंगे।[2] ऐसे गाँव जिन्हें ये शासक बिना कोई कर लिये हुये अपने जमींदारों को देते थे। उन्हें उबारी जमा के नाम से पुकारा जाता था।[3] शेष गाँव में राजस्व वसूल करने की प्रथा यह थी कि इस गाँव के मेहती अथवा मुखिया को समय-समय पर कुछ धनराशि दे दी जाए और उसी के माध्यम से वहाँ का कर वसूल किया जाए।[4] मराठों के समय इस क्षेत्र में राजस्व लेने की देखा-दाखी व्यवस्था चली आरही थी। जेनकिन्सन ने इस प्रथा के बारे में लिखा है कि इस पद्धति से वर्ष के प्रारम्भ में भूमि का राजस्व निर्धारित कर दिया जाता था जिसमें गाँव के मुखिया को इसकी वसूली का पट्टा दे दिया जाता था। इस पट्टे में भूमि की किस्मों के अनुसार विभिन्न फसलों पर राजस्व की दरें लिखी होती थीं। कभी-कभी सभी भूमि का इकट्ठा कर-निर्धारित करके लिख दिया जाता था। इस प्रथा को थक्का या थन्सा के नाम से पुकारा जाता

1- जेनकिन्सन ई0जी0, झाँसी सेटिलमेन्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद 1871, पृ0 81•

2- वही।

3- वही।

4- वही।

था[1] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश शासन से पूर्व इस क्षेत्र में निश्चित् अवधि तक के लिये बन्दोबस्त का अभाव था । ब्रिटिश सरकार ने किसानों को भूमि का अधिकार प्रदान किया, ताकि उनमें स्वामित्व की भावना जागृत हो सके ।

सबसे पहले 1839 में मोंठ, भाण्डेर और गरोठा परगनों में ﴾ये परगने 1854 तक जालौन में थे﴿ थोड़े समय के लिये बन्दोबस्त किया गया । यह बन्दोबस्त जालौन के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने किया था । बाद में कप्तान अर्सकिन ने उपरोक्त परगनों का संक्षिप्त बन्दोबस्त किया । अर्सकिन द्वारा किया गया बन्दोबस्त भूमि के ठीक प्रकार से नाप-तौल पर आधारित नहीं था । अतः राजस्व की दरें काफी ऊँची निर्धारित की गयीं । फलतः यहाँ के किसानों और जागीरदारों को अत्यधिक कठिनाई उठानी पड़ी ।[2] इसके पश्चात् जोन्स ने इन परगनों का बन्दोबस्त किया जो 1857 के पूर्व पूर्ण हो चुका था, लेकिन इससे सम्बन्धित सम्पूर्ण रिकार्ड 1857 के विद्रोह के समय नष्ट हो गये

झाँसी के अतिरिक्त ललितपुर जिले में भी राजस्व व्यवस्था कई चरणों में बनाई गई । ललितपुर में पहला स्थायी बन्दोबस्त 1869 में हुआ, इससे पूर्व 1844 और 1860 के बीच वहाँ राजस्व की संक्षिप्त व्यवस्था की गई थी ।[3]

1- जैनकिन्सन ई०जी०, झाँसी सेटिलमेन्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद 1871, पृष्ठ-81.

2- जैनकिन्सन ई०जी०, ﴾रिव्यू आफ द सेटिलमेन्ट﴿, पृष्ठ-1

3- ड्रेक ब्रोक मैन डी०एल०, झाँसी गजे०, इलाहाबाद 1909, पृ० 141.

ये बन्दोबस्त मुख्यत:सैनिक अधिकारियों द्वारा किये गये थे । ललितपुर,तालबेहट,बालाबेहट,महरौनी सबसे पहले राजस्व के लिये व्यवस्थित किये गये । कैप्टन विंक ने यहाँ जो बन्दोबस्त 1844 में किया वह 1848 तक चलता रहा । इस जिले का दूसरा संक्षिप्त राजस्व प्रबन्ध कैप्टन हैरिस ने किया[1] जो 1853 तक कार्य-रत् रहा । 1854 में कैप्टन जोर्डन ने ललितपुर के संक्षिप्त राजस्व को पूरा किया ।[2] नि:सन्देह बन्दोबस्त की स्थायी व्यवस्था ललितपुर में भी 1858 में शान्ति व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद ही सम्भव हो सकी ।

झाँसी तथा ललितपुर के स्थायी राजस्व प्रबन्ध :

हम यह देख चुके हैं कि झाँसी और ललितपुर के दोनों जिलों में राजस्व निर्धारण की प्रक्रिया 1857 के विद्रोह से प्रभावित रहा,किन्तु जैसे ही शान्ति स्थापित हुई,वैसे ही झाँसी के डिप्टी-कमिश्नर कैप्टन मैक्लीन ने अगस्त 1858 में यह कार्य प्रारम्भ किया।[3] इस अधिकारी ने पटवारियों से राजस्व अभिलेखों को जहाँ तक सम्भव हुआ,इकट्ठा किया और मऊ व पंडवाहा परगनों के भी बन्दोबस्त का कार्य प्रारम्भ किया । 1859 में कैप्टन क्लर्क ने मैक्लीन के स्थान

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0,झाँसी गजे0,इलाहाबाद 1909 तथा एटकिन्सन ई0टी0,बुन्देलखण्ड गजे0,इलाहाबाद 1878,पृ0 336.

2- उक्त ।

3- जैनकिन्सन ई0जी0,झाँसी सेटिलमेन्ट रिपोर्ट,इलाहाबाद 1871, पृष्ठ 83 से 85.

पर कार्य अपने हाथ में लिया तथा उसने गरौठा परगनों के 15 गांवों में बन्दोबस्त कार्य प्रारम्भ किया । उल्लेखनीय है,यह परगना पहले जोंकिन द्वारा राजस्व के लिये व्यवस्थित किया गया था ।

1861 में डैनियल ने क्लर्क से कार्य-भार ग्रहण करके दूसरे ही वर्ष पंडवाहा और मऊ परगनों में बन्दोबस्त कार्य शुरू किया । 1864 में डैनियल के स्थान पर मेजर डेविड्सन नियुक्त हुआ ।[1] जिसने मार्च 1864 तक झांसी के 119 गांवों का बन्दोबस्त कर दिया । 1864 में मेजर जेनकिन्सन ने झांसी जिले का कार्य अपने हाथ में लिया तथा इस बन्दोबस्त को पूरा किया । यह बन्दोबस्त 20 साल के लिये किया गया जो सरकारी नोटीफिकेशन के अनुसार 30 सितम्बर,1884 तक वैध था ।

झांसी का दूसरा और तीसरा बन्दोबस्त :

झांसी जिले का दूसरा बन्दोबस्त इम्पे और मेस्टन नामक राजस्व अधिकारियों ने किया । अक्टूबर 1881 में इस बन्दोबस्त की घोषणा की गई ।[2] इम्पे ने बन्दोबस्त अधिकारी के रूप में अक्टूबर 1889 में चार्ज अपने हाथ में लिया तथा मेस्टन की सहायता से 1892 के जाड़े-जाड़े के समय तक बन्दोबस्त का कार्य पूरा किया।[3]

1- पाठक एस0पी0,झांसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 96.

2- सरकारी आदेश संख्या 1479/1-505, 11 अक्टूबर 1888,देखिये झांसी का दूसरा बन्दोबस्त,इलाहाबाद,1892, पृष्ठ-1.

3- फारवर्ड नोट नम्बर 75/1262, देखिये झांसी द्वितीय बन्दोबस्त, इलाहाबाद 1892, पृष्ठ-1.

यद्यपि ललितपुर जिला 1891 में झाँसी में मिला लिया गया था, लेकिन इस बन्दोबस्त में ललितपुर को झाँसी में सम्मिलित नहीं किया गया था ।[1] ठीक इसी प्रकार गुरसराय और बकरवई की जागीरों को भी इस बन्दोबस्त की कार्य-पद्धति से बाहर रखा गया । 1892 से पूर्व झाँसी और ग्वालियर के बीच क्षेत्रों का आदान-प्रदान हुआ और इस समय तक झाँसी में तहसीलों की संख्या केवल 4 थी ।

तीसरा बन्दोबस्त पिम ने 1903 में किया जिसे हम अन्तिम बन्दोबस्त के नाम से पुकारते हैं । इस समय ललितपुर भी झाँसी जिले में सम्मिलित कर लिया गया था ।[2] इस प्रकार झाँसी और ललितपुर सब डिवीजन का बन्दोबस्त 1906 में पूरा किया गया ।

ललितपुर जिले में स्थायी बन्दोबस्त का कार्य 1858 के बाद प्रारम्भ हुआ, किन्तु कैप्टन टीलर के 1860 में यूरोप चले जाने से बन्दोबस्त का कार्य कैप्टन कार्बेट को दिया गया;[3] लेकिन 1862 में कार्बेट का भी जालौन के लिये स्थानान्तरण हो गया । उसी वर्ष कैप्टन टीलर यूरोप से वापस लौटकर पुन: ललितपुर आया और उसने पुन: यह कार्य प्रारम्भ किया । सबसे पहले उसने तालबेहट और ललितपुर के गाँवों का राजस्व निर्धारण किया। यद्यपि झाँसी का

1- फारवर्ड नोट नम्बर 75/1262, देखिये झाँसी द्वितीय बन्दोबस्त, इलाहाबाद 1892, पृष्ठ-1.

2- पाठक एस०पी०, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 97-98.

3- एटकिन्सन ई०टी०, बुन्देलखण्ड गजे०, इलाहाबाद 1878, पृ० 335-336.

सर्वे कैप्टन कार्वेट पहले कर चुका था, किन्तु न ही उसने और न ही कैप्टन टीलर ने इसकी कोई रिपोर्ट प्रकाशित की । कर्नल डेविडसन ने फरवरी 1866 में यह कार्य प्रारम्भ किया जो तीन वर्षों तक चलता रहा और 1869 में पूरा हुआ । यह बन्दोबस्त 16 वर्षों के लिये किया गया ।[1]

पूर्व निश्चित् अवधि के अनुसार ललितपुर के पहले बन्दोबस्त की अवधि 1889 में समाप्त होनी थी, लेकिन अकाल इत्यादि के कारण इसकी अवधि 10 साल तक बढ़ा दी गई । इस जिले का दूसरा बन्दोबस्त होरे ने 1899 में किया । इसकी अवधि 30 वर्ष तक रखी गई । अन्त में ललितपुर जिले को झाँसी में मिलाकर 1903 में पिम ने दोनों भागों को एक साथ बन्दोबस्त किया ।

बाँदा जिले का राजस्व प्रबन्ध :

1804 में कैप्टन बेली ने मिर्जा जाफर की सहायता से राजस्व की जो व्यवस्था की थी वह बाँदा जिले के दक्षिणी तथा पूर्वी भागों तक ही सीमित थी ।[2] 1805 में जे0डी0अरिस्किन को कलक्टर बना कर बुन्देलखण्ड को एक स्थायी जिला बना दिया गया और अरिस्किन ने इस पूरे क्षेत्र के लिये एक जैसी राजस्व व्यवस्था का निर्माण किया । 1806 में हिम्मत बहादुर की मृत्यु हो जाने के बाद उसे जो जागीर दी गई थी वह भी अंग्रेजों के हाथ आ गई । इस प्रकार पूरे क्षेत्र का प्रबन्ध अरिस्किन ने 1806 में किया । ठीक इसी प्रकार 1808 में

1- एटकिन्सन ई0टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, इलाहाबाद 1878, पृ0335-336.
2- कैडिल ए0, सेटिलमेन्ट रिपोर्ट आफ बाँदा, इलाहाबाद 1881, पृ096.

वान्कूब ने तीसरा तथा 1815 में स्काट वारिंग ने बाँदा जिले मे चौथा राजस्व प्रबन्ध किया ।[1] 1820 में केम्पबैल और रीडे ने पाँचवे बन्दोबस्त का निर्माण किया जो 1825 तक चलता रहा।[2] इस जिले के छठवें राजस्व प्रबन्ध का कार्य 1825 में प्रारम्भ हुआ । विलकिन्सन,पैन और बेगवी नामक अधिकारियों ने इस कार्य को प्रारम्भ किया । विलकिन्सन ने कर्वी तब डिवीजन के साथ-साथ बदौसा का भी प्रबन्ध किया । बबुर तहसील की राजस्व व्यवस्था का प्रबन्ध पैन ने किया,जबकि बेगवी ने पैलानी और अगौली तहसीलों के राजस्व निर्धारण का कार्य किया ।[3]

इस जिले का पहला वैज्ञानिक ढंग से किया हुआ सर्वेक्षण और राजस्व प्रबन्ध 1842 में हुआ जिसमें विभिन्न प्रकार की भूमि का सर्वेक्षण करते हुए राजस्व-कर का निर्धारण किया गया । इस कार्य का दायित्व राईट को दिया गया जिसने राजस्व की दरें निर्धारित कीं ।[4]

1857 के विद्रोह की समाप्ति के बाद जैसे ही 1858 में शान्ति स्थापित हुई वैसे ही राजस्व-कर की दरों में संशोधन करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई ।

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0,बाँदा गजे0,इलाहाबाद 1909,पृ0 127.

2- केडिल ए0, सेटिलमेन्ट रिपोर्ट आफ बाँदा,इलाहाबाद 1881, पृष्ठ-115.

3- उक्त । पृष्ठ-115.

4- प्रोसीडिंग,जून9, 1847, कन्सल्टेशन नम्बर-7.

1874 का बन्दोबस्त :

बाँदा जिले में बन्दोबस्त अधिकारी कैडिल ने 10 दिसम्बर, 1874 को सर्वेक्षण का कार्य प्रारम्भ किया ।[1] उसने इस कार्य में राजस्व अधिकारी पिनले को सहायता दी । कैडिल और पिनले ने मिलकर बाँदा जिले की पश्चिमी पाँच तहसीलों का राजस्व निर्धारण किया, जबकि कर्वी सब डिवीजन में इस कार्य को करने का दायित्व पैटरसन को दिया गया ।[2]

हमीरपुर की राजस्व व्यवस्था :

हमीरपुर जिले का राजस्व प्रबन्ध सबसे पहले 1805,6 में गवर्नर जनरल के एजेन्ट कैप्टन बेली ने किया । इस जिले के कलेक्टर अरिस्किन ने यहाँ के विद्रोही नेता पारसराम, गोपाल सिंह और दउआ का दमन करने में काफी कठिनाई का अनुभव किया था । अन्तत: सैनिकों की सहायता से इस क्षेत्र का प्रबन्ध किया गया ।[3] अरिस्किन ने इस जिले का दूसरा राजस्व प्रबन्ध 1807 में किया, लेकिन उस समय तक गोपाल सिंह तथा अन्य विद्रोही जिले के पश्चिमी क्षेत्रों में अपना प्रभाव जमाये हुए था । तीसरा राजस्व प्रबन्ध 1811,12 में वान्सू ने किया ।[4] इसके पश्चात् स्काट-वारिंग ने 1815 में इस जिले के लिये राजस्व व्यवस्था का निर्माण

1- कैडिल ए0, सैटिलमेन्ट रिपोर्ट आफ बाँदा, इलाहाबाद 1881, पृष्ठ-98.
2- हम्फ्रीज ई0डी0, सैटिलमेन्ट रिपोर्ट आफ बाँदा, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 16 और 18.
3- एटकिन्सन ई0टी0, बुन्देलखंड गजे0, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ 173.
4- उक्त ।

किया । स्काट तथा बारिंग ने हमीरपुर जिले का पांचवा राजस्व प्रबन्ध 1815,20 की बीच की अवधि में पूरा किया ।[1] 1825 में कालपी को राजस्व की दरों के पुनरव्यवस्था का कार्य सौंपा गया । 1842 में पैलन ने परगना सुमेरपुर,मौदहा,राठ,पनवाड़ी और बरका आदि क्षेत्रों का बन्दोबस्त किया,जबकि डब्लू म्यूर ने हमीरपुर,कालपी, जलालपुर,खरेला और कौंच का प्रबन्ध (जो उन दिनों हमीरपुर जिले में था) तथा फ्रीलिंग ने महोबा का बन्दोबस्त 1855,56में किया ।[2] पैलन तथा म्यूर द्वारा किये गये बन्दोबस्त की अवधि 1872 में समाप्त हुई ।[3]

जालौन जिले का राजस्व प्रबन्ध :

जालौन जिले में मुख्यत:तीन राजस्व प्रबन्ध हुए । पहला प्रबन्ध 1863,64 में हुआ जिसमें इस जिले के 675 गांवों का सर्वेक्षण करते हुए राजस्व की दरें निर्धारित की गयीं ।[4] इस समय कुल 709282 एकड़ भूमि की पैमाइस की गई तथा उनकी दरों का निर्धारण किया गया । दूसरा बन्दोबस्त 1873 में कौंच व कालपी का किया गया जिसमें कुल 203 गांव शामिल थे तथा कुल 214044 एकड़ भूमि का सर्वेक्षण हुआ । तीसरा बन्दोबस्त दबौह बन्दोबस्त के नाम से प्रसिद्ध है जो 1876-77

1- एटकिन्सन ई0टी0,बुन्देलखण्ड गजे0,इलाहाबाद 1878,पृष्ठ 173.

2- वही ।

3- वही ।

4- वही । पृष्ठ 212.

में समाप्त हुआ, इसमें कुल 18 गाँव शामिल थे तथा 16487 एकड़ भूमि की पैमाइश करते हुये इसकी दरों का निर्धारण किया गया ।[1] बन्दोबस्त की उपरोक्त व्यवस्था में जालौन जिले के जागीरदार विशेषतः जगम्मनपुर, रामपुरा और गोपालपुर के क्षेत्रफल शामिल नहीं थे, क्योंकि यहाँ जमींदारों को जागीरदारी चली आ रही थी ।[2]

विभिन्न परगनों के क्षेत्रफल तथा गाँवों के आदान-प्रदान के कारण प्रायः कुछ गाँव जागीरदारों की सीमा में शामिल हो गये तथा उनके कुछ क्षेत्रफल इसके बदले में दिये जाते रहे । अतः इन सभी क्षेत्रों का विस्तृत आर्थिक विवरण देना कठिन है;[3] लेकिन फिर भी राजस्व प्रबन्ध की दृष्टि से निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय हैं ।

1838 में जालौन रियासत में शामिल परगनों को लेफ्टीनेन्ट दूलन की देख-रेख में रखा गया ।[4] इन परगनों में जालौन, कनार, मुहम्मदाबाद, इटौरा, रामपुरा और महोबा तथा मोंठ शामिल थे । 1839 में अल्प अवधि के लिये इनका बन्दोबस्त किया गया । 1840 में दूसरा बन्दोबस्त भी केवल एक वर्ष के लिये ही किया गया।[5]

1841 से 1845 के बीच इस जिले का तीसरा राजस्व प्रबन्ध हुआ जिसकी अवधि 5 वर्ष की थी । 1841 में चिरगाँव के जमींदार के विद्रोही हो जाने के कारण उसे अँग्रेजी शासन में मिला लिया गया।

1- एटकिंसन ई०टी०, बुन्देलखण्ड गजे०, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ 212·
2- वही ! पृष्ठ 212·
3- कर्नल टर्नन, सेटिलमेन्ट रिपोर्ट 1869 और कर्नल टर्नन स्टेटिस्टिकल- मैमायर 1870·
4- एटकिन्सन ई०टी०, बुन्देलखण्ड गजे०, इलाहाबाद 1878, पृष्ठ 212·
5- वही !

1843 में गरौठा और दबोह को झाँसी में इस उद्देश्य से शामिल किया गया, ताकि अंग्रेजी सेना के खर्चे के लिये आय की व्यवस्था की जा सके। 1844 में परगना कछवागढ़ तथा भाण्डेर जो पहले ग्वालियर रियासत में थे, उन्हें कैप्टन रोश की देख-रेख में दे दिया गया।[1] अंग्रेज सरकार तथा ग्वालियर रियासत के बीच में एक सन्धि द्वारा इन परगनों को अंग्रेजी शासन को दे दिया गया, जिन्हें जालौन जिले में शामिल कर लिया गया।[2] 1847 तथा 1850 के बीच राजस्व प्रबन्ध की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुई उसमें ग्वालियर रियासत से हस्तान्तरित परगने शामिल नहीं किये गये थे।[3]

अप्रैल 1849 में कैप्टन रोश के उत्तराधिकारी के रूप में कैप्टन अरस्किन ने कार्य-भार ग्रहण किया। उसी वर्ष जैतपुर भी अरस्किन की देख-रेख में रख दिया गया। मार्च 1853 में परगना महोबा तथा जैतपुर को हमीरपुर जिले को दे दिया गया, इसके बदले कालपी तथा कौंच के क्षेत्र जालौन को प्राप्त हुए। कालपी और कौंच का बन्दोबस्त विलियम म्यूर ने 1840-41 में तथा 1870-71 में किया। 1860-61 में कौंच की राजस्व दरें पुन: निर्धारित हुयीं। 1854 में जालौन जिले के क्षेत्रफल में पुन: परिवर्तन हुआ, क्योंकि मोंठ तथा चिरगाँव और गरौठा के परगने

1- एटकिन्सन ई0टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, इलाहाबाद 1878, पृ0213-214.

2- देखिये सन्धि दिनांक 13 जनवरी, 1844.

3- एटकिन्सन ई0टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, इलाहाबाद 1878, पृ0213-214.

झाँसी को दे दिये गये थे । 1856 में भाण्डेर भी झाँसी को दे दिया गया । इससे पहले 1850 में कैप्टन अरिस्किन ने जालौन के गाँवों के आदान-प्रदान के कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन अवश्य किये थे । कैप्टन अरिस्किन ने इस जिले का जो राजस्व प्रबन्ध किया, वह 1863 तक चलता रहा ।[1]

1860 में जालौन जिले के पहुज नदी के पश्चिम में स्थित 255 गाँवों को ग्वालियर रियासत को हस्तान्तरित कर दिया गया ।[2] शेष 676 गाँवों का राजस्व प्रबन्ध 1863 में मेजर टर्नन ने पूर्ण किया जो 20 वर्ष तक की अवधि तक के लिये था ।[3] कालपी और पूंछ का राजस्व व्यवस्था का निर्धारण 1873 में ह्वाइट ने किया जो 30 वर्षों तक के लिये था अर्थात् इसे 1903 में समाप्त होना था ।[4]

राजस्व-व्यवस्था का मूल्यांकन :

अंग्रेजी शासन बुन्देलखण्ड में एक विदेशी शासन था । प्राय: सभी अधिकारी सैनिक अधिकारी थे । राजस्व जैसी दरों के निर्धारण के लिये बुन्देलखण्ड के जिलों में एक जैसी नीति नहीं अपनाई गई । इसके साथ ही सभी अधिकारियों द्वारा निर्धारित राजस्व की दरें अत्यन्त ही कठोर थीं । ऐसा प्रतीत होता है कि

1- एटकिन्सन ई0टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, इलाहाबाद 1878, पृ0213-214.

2- वही ! पृ0214-215.

3- वही !

4- वही !

ये अधिकारी इस क्षेत्र से अधिक से अधिक राजस्व प्राप्त कर अपने उच्च अधिकारियों को प्रसन्न करना चाहते थे । राजस्व निर्धारण के जो तरीके अपनाये गये उनमें एकरूपता का नितान्त अभाव दिखाई पड़ता है । उदाहरण के लिये - बांदा जिले में 1874 के बन्दोबस्त में बन्दोबस्त अधिकारी कैंडिल ने कई गाँवों को अनेकों भागों में विभाजित कर विभिन्न वर्ग बनाये थे ।[1] वहीं दूसरी ओर इस जिले के कर्वी सब डिवीजन के बन्दोबस्त अधिकारी पैटरसिन ने 1881 के बन्दोबस्त के समय दरों का निर्धारण विभिन्न किस्म की भूमि पर आधारित किया ।[2]

राजस्व की दरें अत्यन्त ही कठोर थीं । 1804 में कैप्टन बेली ने जैसे ही इस क्षेत्र में पदार्पण किया उसने सर्वप्रथम बांदा के लिये राजस्व की ऊँची से ऊँची दरों का निर्धारण किया । इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि एक ही वर्ष बाद 1805 में अरस्किन को इन दरों में कमी करनी पड़ी ।[3] इस दुखद घटना का अन्त यहीं नहीं हुआ । अरस्किन के बाद बांदा जिले के बन्दोबस्त का कार्य बाम्बूस को मिला था जिसने दरों में पुन:वृद्धि कर दी थी ।[4] परिणाम स्वरूप कृषकों की आर्थिक स्थिति दयनीय होती गयी ।

1- कैंडिल ए०, सैटिलमेन्ट रिपोर्ट आफ बांदा, इलाहाबाद 1881, पृ० 14.

2- ड्रेक ब्रोकमेन डी०एल०, बांदा गजे०, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 132.

3- वही

4- कैंडिल ए०, सैटिलमेन्ट रिपोर्ट आफ बांदा, इलाहाबाद 1881, पृ० 14.

लगातार पड़ रहे अकालों तथा अन्य आपदाओं के कारण किसान पहले से ही परेशान थे,किन्तु राजस्व की बढ़ी हुई दरों ने उनके कन्धों पर और अधिक बोझ डाल दिया । आश्चर्य की बात तो यह थी कि उपरोक्त विपत्तियों में राहत तथा सुविधा पहुँचाने के स्थान पर सरकार ने राजस्व को बढ़ी हुई दरों को तीव्रता से वसूल करने का आदेश दे दिया ।[1] इस स्थिति में असन्तोष की लहर और बढ़ी । बन्दोबस्त अधिकारी तथा बाँदा के कलेक्टर कैडिल ने स्वयं ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा राजस्व की दरों के उच्च निर्धारण की तीखी आलोचना करते हुए कहा "ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा प्रशासन राजस्व वसूली के तरीकों में उन अमानुषिक परम्पराओं का पालन कर रहा है जो किसी काल में अत्याचारी शासकों द्वारा किये जाते रहे ।"[2] राजस्व की उच्च दरें इसके साथ ही साथ उनकी तेजी से वसूली के कारण इस जिले के अधिकांश लोगों को सरकारी करों की पूर्ति के लिये अपनी भूमि मारवाड़ियों,बैनियों तथा अनेक ऋण-दाताओं के हाथों में बेचनी पड़ी । बाँदा तथा कर्वी सब डिवीजन दोनों क्षेत्रों में राजस्व प्रबन्ध अकाल तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण प्रभावित होते रहे । सम्भवतः किसी भी बन्दोबस्त ने अपनी अवधि पूरी नहीं की होगी । इस प्रकार की राजस्व नीति इस जिले के सामाजिक,आर्थिक पिछड़ेपन के लिये उत्तरदायी रही ।

1- कैडिल ए०,सेटिलमेन्ट रिपोर्ट आफ बाँदा,पृष्ठ 14.

2- वही.

झाँसी तथा ललितपुर जिलों की भी लगभग यही स्थिति रही। इन जिलों में बन्दोबस्त अधिकारियों का प्राय: स्थानान्तरण होता रहा। अत: राजस्व निर्धारण की एक समान नीति का पालन नहीं किया गया।[1] यह उल्लेखनीय है कि कैप्टन जोर्डन ने जहाँ झाँसी जिले में भूमि के उत्पादन के आधार पर कर का निर्धारण किया था, वहीं डेनियल और डेविडसन ने विभिन्न किस्म की भूमि का सर्वेक्षण कर उनकी किस्म के अनुसार लगान की दरें निर्धारित कीं। 1864 में अपने बन्दोबस्त के समय जेनकिन्सन झाँसी के बन्दोबस्त अधिकारी ने यह दावा किया था कि इस जिले की राजस्व दरें उचित हैं और ये दरें इतनी हल्की हैं[2] कि जिन्हें जमींदार आसानी से अदा कर सकता है। जेनकिन्सन ने उचित कर नीति का जो दावा पेश किया है इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि नई दरें पूरे जिले में एक समान नहीं थीं। कुछ परगनों में तो यह हल्की थीं, जबकि अन्य परगनों में ये दरें कठोर थीं। जेनकिन्सन के ही शब्दों में भाण्डेर परगना में राजस्व की दरें हल्की थीं, जबकि अन्य परगनों में ये काफी ऊँची थीं। इसके अतिरिक्त मऊ तथा पण्डवाहा परगनों के राजस्व की दरें भी भिन्न-भिन्न थीं। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि इन परगनों में कुछ गाँवों में राजस्व की दरें कम थीं तथा कुछ अन्य गाँवों में ये अत्यन्त ही ऊँची थीं।[3] डेनियल जिसने इन परगनों का बन्दोबस्त किया था उसने इस ओर उचित ध्यान नहीं दिया अथवा उसे इस सम्बन्ध में पर्याप्त सूचना

1- पाठक एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ-111.

2- जेनकिन्सन ई0जी0, झाँसी सेटिलमेन्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद 1871, पृष्ठ-105.

3- वही.

प्राप्त नहीं हुई । निःसन्देह राजस्व के बोझ से इन परगनों में स्थिति दयनीय हुई । बाद में कन्कर मऊ परगने के बन्दोबस्त की जब जाँच की गई तब जाँच अधिकारी पोर्टर ने इस बात को स्वीकार किया कि राजस्व की ऊँची दरें इन परगनों की गरीबी के लिये उत्तरदायी हैं ।[1]

बाँदा की भाँति झाँसी तथा ललितपुर में भी बन्दोबस्त अपना पूरा समय पूर्ण नहीं कर सके । इसका मुख्य कारण समय-समय पर अकालों तथा प्राकृतिक आपदाओं का प्रभाव रहा । जैसे ही नया बन्दोबस्त लागू हुआ, झाँसी में 1868 में भयंकर अकाल पड़ा ।[2] 1872 में इसी जिले की खेती योग्य भूमि का अधिकांश भू-भाग काँश, घास के प्रकोप में आ गया। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार 1872 में इस जिले की 40,000 एकड़ जमीन[3] में काँश उग गई थी । निःसन्देह इससे कृषकों की आर्थिक स्थिति दयनीय हुई और वे गरीबी के कारण बैनियों, मारवाड़ियों तथा अन्य ऋण-दाताओं को अपनी जमीनें बेचने लगे ।

झाँसी जिले का दूसरा बन्दोबस्त उस समय हुआ (1890-91) जबकि जिले की स्थिति अत्यन्त ही खराब थी । इसके बावजूद भी यहाँ के किसानों ने कठिन परिश्रम से लगभग 18·81% खेती का

1- इम्पे डब्ल्यू०एच०एल० तथा मेस्टन जे०एस०, झाँसी सैटिलमेन्ट, इलाहाबाद 1892, पृष्ठ- 55-56·

2- उक्त·

3- ड्रेक ब्रोकमैन डी०एल०, झाँसी गजे०, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ-140·

विस्तार किया । यही कारण था कि इस प्रगति को देखते हुए अंग्रेजी सरकार के पहले से ही चली आ रही राजस्व की दरों में 12 प्रतिशत की वृद्धि कर दी । यह वृद्धि भी आर्थिक पिछड़ेपन का कारण बन गई ।

ललितपुर जिले में हुए बन्दोबस्त भी असमान तथा कठोर दरों की पुष्टि इसी बात से होती है कि परवर्ती बन्दोबस्त में राजस्व की पूर्व निर्धारित दरों को कम करना पड़ा ।[1]

1903 में यहां के बन्दोबस्त अधिकारी पिम ने लिखा था- इस जिले में पहले बन्दोबस्त से राजस्व की जो दरें निर्धारित की गयी थीं वे दरें उन गांवों में जहां पर कि परिश्रमी किसान थे, वहां काफी ऊंची रखी गयीं, किन्तु ऐसे गांव जहां बुन्देला ठाकुरों का बोलबाला था उनके लिये राजस्व की दरें कम रखी गयीं ।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश सरकार ने बुन्देला ठाकुरों को खुश करने का प्रयास किया, ताकि वे सरकार का सहयोग कर सकें । निःसन्देह इस प्रणाली से परिश्रमी किसानों को नुकसान हुआ जिनसे राजस्व की उच्च दरें वसूल की जाती थीं । इन परिश्रमी किसानों का उत्साहवर्धन तथा प्रोत्साहन करने के स्थान पर सरकार

1- पिम ए0 डब्ल्यू0, फाइनल सेटिलमेन्ट आफ झांसी (ललितपुर - सहित), इलाहाबाद 1907, पृष्ठ-14.

2- उक्त.

ने राजस्व की दरें बढ़ाकर उन्हें हतोत्साहित करने का प्रयास किया ।

ललितपुर में दूसरा बन्दोबस्त जिसे होरे ने 30 वर्ष के लिये बनाया था, वह अपनी अवधि पूरा नहीं कर सका ।[1] लगातार पड़ रहे अकालों, कांश की वृद्धि तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं ने किसानों को आर्थिक रीढ़ तोड़ दी थी और वे इस स्थिति में नहीं थे कि राजस्व का भुगतान कर सकें । अत: बाध्य होकर सरकार को 1903 में ही इस बन्दोबस्त का पुन: निरीक्षण करना पड़ा जिसमें पुन: राजस्व की दरें कम करनी पड़ीं । राजस्व की इस छूट ने भी किसानों को कोई सहायता नहीं पहुँचाई, क्योंकि प्राकृतिक आपदाओं से लोग इतने परेशान थे जिससे उनकी स्थिति निरन्तर दयनीय होती चली जा रही थी । इस प्रकार झाँसी, ललितपुर, बाँदा आदि सभी जिलों में बन्दोबस्त न तो ठीक प्रकार से बन सके और न ही जनता को इससे सन्तोष हुआ ।

जालौन जिले का राजस्व प्रबन्ध भी लगातार गाँवों के परिवर्तन तथा उनके क्षेत्रफल के परिवर्तन के साथ-साथ प्रभावित होता रहा । ग्वालियर रियासत से मिलने वाली सीमा पर बसे गाँवों को हमेशा यह चिन्ता बनी रहती थी कि वे जालौन जिले में रहेंगे अथवा ग्वालियर जिले को दे दिये जायेंगे । ठीक यही अनिश्चय की स्थिति जालौन तथा झाँसी की सीमा पर बसे गाँवों की थी । किसी भी समय पूरे जिले का एक साथ बन्दोबस्त नहीं किया गया ।

1- पाठक एस०पी०, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ-114.

कछुवागढ़ परगना का जो बन्दोबस्त हुआ था उसकी दरें इतनी ऊँची थीं कि 1848,49 में इसमें संशोधन करना पड़ा ।[1] ठीक यही स्थिति अन्य परगनों की भी थी । इसके साथ ही मार्च, 1853 में परगना महोबा और जैतपुर जो जालौन जिले के अंग थे,उन्हें हमीरपुर को हस्तान्तरित कर दिया गया । इसके बदले जालौन को कालपी और पूंछ के परगने मिले । 1854 में मोंठ, चिरगांव और गरौठा तथा 1856 में भाण्डेर के परगने जालौन से झांसी जिले को दे दिये गये ।[2] 1850 में भी अरस्किन ने इसी प्रकार के परिवर्तन किये । नि:सन्देह इन परगनों में बसे हुये गाँवों को हमेशा अनिश्चय की स्थिति का सामना करना पड़ा जिससे वे हमेशा मनोवैज्ञानिक दबाव में बने रहे ।

जालौन के भी राजस्व प्रबन्ध अपना पूर्ण समय पूरा नहीं कर सके । इनकी दरें भी बुन्देलखण्ड के अन्य जिलों की तरह असमान तथा कठोर थीं । प्राकृतिक आपदाओं ने भी इनको ठीक प्रकार से चलने नहीं दिया । 1851 में अरस्किन ने जो बन्दोबस्त किया था उसका जनता पर बुरा प्रभाव पड़ा,लोग अपनी भूमि को बेचने लगे । 1855 में बालमैन ने यह अच्छी तरह स्पष्ट किया था कि "गाँव में भूमि की बिक्री तेजी से हो रही है । ऐसा प्रतीत होता है कि खेती से लोगों को लाभ नहीं हो रहा था । फलत:सरकार को कुछ गाँवों को अपने नियन्त्रण में लेना पड़ा। अधिकांश जमीदार

1- एटकिन्सन ई0टी0,बुन्देलखण्ड गजे0, पृष्ठ-219.

2- उक्त.

परेशान तथा ऋण से ग्रस्त थे । यदि उनके ऋणदाता उनकी सहायता न करें तो वे अपनी भूमि के लिये बीज भी नहीं खरीद सकते थे । केवल जानवरों के अलावा उनके पास अन्य कोई व्यक्तिगत् सम्पत्ति नहीं है"।[1] बालमैन ने 1855 में जालौन जिले की स्थिति का वर्णन करते हुये पुनः लिखा है- "इस जिले का 1/6 भाग खेती की परिधि से बाहर हो गया है । अकाल तथा प्राकृतिक आपदाओं से लोग खेती करना छोड़ रहे हैं । राजस्व की दरों से भी लोगों पर बुरा प्रभाव पड़ा है ।" कैप्टन स्कोने जो 1855 में जालौन का सुपरिन्टेन्डेन्ट था,[2] उसने भी इसी मत की पुष्टि की है तथा लिखा है "इस समय इन जिलों में जो बन्दोवस्त चल रहा है उनकी दरें इतनी ऊँची हैं जिसका कुपरिणाम जमीदारों पर स्पष्ट दिखाई दे रहा है" यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि कठोर राजस्व नीति बुन्देलखण्ड में 1857 के विद्रोह का प्रमुख कारण रही । निःसन्देह इस क्षेत्र के आर्थिक पिछड़ापन के लिये राजस्व की कठोर दरें उत्तरदायी थीं ।

हमीरपुर जिले की राजस्व स्थिति बुन्देलखण्ड के अन्य जिलों की भांति ही दुखद रही । राजस्व की असमान तथा कठोर दरें इस व्यवस्था की मुख्य विशेषता को स्पष्ट करती है । इसके अतिरिक्त हमीरपुर जिले में डकैतों तथा लूटपाट करने वाले गिरोह-नेता पारस राम, गोपाल सिंह तथा दीवा इतने सक्रिय थे कि ये डकैत ब्रिटिश गाँवों से किसानों से जबरन कर वसूल कर लेते थे । इस प्रकार अंग्रेजी

1- एटकिन्सन ई०टी०, बुन्देलखण्ड गजे०, पृष्ठ-219.

2- वही.

शासनकाल में असुरक्षा की भावना के कारण भी लोग बाध्य होकर इन शर्तों को कर दे देते थे ।[1] अरिस्किन ने जब इस जिले का बन्दोबस्त प्रारम्भ किया तब उस समय 1807 में यह पता चला कि इस जिले के बागी गोपालसिंह तथा उसके समर्थकों ने पश्चिमी परगनों में अपना पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर रखा है ।[2] 1803 में बाल्कुम ने इन पश्चिमी परगनों की राजस्व की दरों को बढ़ा दिया । एलन का मत है कि पनवाड़ी परगने में राजस्व वृद्धि का कारण यह था कि वहाँ के दो कानूनगो आपस में शत्रुता रखते थे और उनके षड्यन्त्र से यह वृद्धि हो गई[3] लेकिन इतना सारा दोष इन निम्न अधिकारियों को नहीं दिया जा सकता । राजस्व जैसी दरों के निर्धारण का महत्वपूर्ण कार्य के लिये अन्य उच्च अधिकारी भी अपने कर्तव्यों का उचित निर्वाह नहीं कर सके जिसके परिणाम स्वरूप हमीरपुर जिले के पश्चिमी परगनों में राजस्व की दरें ऊँची हो गयीं । पनवाड़ी परगने में स्थिति इतनी खराब हुई कि लोग राजस्व का भुगतान नहीं कर सके और 1815 में भुखमरी के शिकार हुये ।[4] 1815 में जब स्काट वारिंग ने पनवाड़ी का बन्दोबस्त प्रारम्भ किया तो उसने यह देखा कि पनवाड़ी की स्थिति अन्य परगनों से दयनीय है । स्काट वारिंग ने पूर्वी परगनों की राजस्व

1- एटकिन्सन ई0टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, पृष्ठ-169.

2- वही.

3- वही. पृष्ठ-170.

4- वही.

में 46% वृद्धि कर दी और पश्चिमी परगनों में 21% वृद्धि कर दी गई । यह उल्लेखनीय है कि पश्चिमी परगनों में पहले से ही राजस्व की दरें अत्यन्त ही ऊँची थीं । अधिकतम वृद्धि ने लोगों को भुखमरी की कगार पर ला दिया । राजस्व बोर्ड के कमिश्नर ने इस अनियमितता की ओर इशारा किया था,लेकिन बन्दोबस्त अधिकारी वारिंग ने इन ऊँची दरों का समर्थन किया । वारिंग के बाद बन्दोबस्त का कार्य वाल्पी को सौंपा गया जिसने राजस्व बोर्ड के कमिश्नर फोर्ड के इन सुझावों का कि राजस्व दरों में कमी कर दी जाय,का प्रतिरोध किया तथा कमी के स्थान पर इन दरों की बढ़ोत्तरी की ओर संकेत किया ।[1] राजस्व की बढ़ोत्तरी का यह परिणाम निकला कि किसान ऋणग्रस्त हो गये और उन्हें राजस्व की अदायगी के लिये अपनी जमीन बेचनी पड़ीं । यहाँतक कि 1825,26 में जब वाल्पी ने दूसरी बार बन्दोबस्त अधिकारी का कार्य-भार ग्रहण किया तो उसने पुन:अपनी पुरानी राजस्व की दरों का ही समर्थन किया । परिणाम स्वरूप किसानों को जब भुगतान करने में कठिनाई हुई उसमें तहसीलदार तथा राजस्व-विभाग के क्लर्कों के वेतन इसलिए बन्द कर दिये[2] क्योंकि वे राजस्व की बकाया धनराशि को वसूली नहीं करा सके थे । नि:सन्देह वाल्पी के बन्दोबस्त ने इस जिले की आर्थिक स्थिति को और खराब किया । संक्षेप में राजस्व की कठोर दरों के कारण लोगों को अपनी भूमि मारवाड़ियों तथा ऋणदाताओं के हाथ बेचनी पड़ी । 1815 से लेकर 1819 के बीच इस

1- एटकिंसन ई०टी०, बुन्देलखण्ड गजे०, पृष्ठ-170.

2- वही. पृष्ठ-175-176.

जिले के 815 जागीरों को इसलिए नीलामी करनी पड़ी, क्योंकि इनके भू-स्वामी राजस्व की दरों का भुगतान नहीं कर सके थे ।[1] 1842 में इस जिले की गरीबी का वर्णन पेटन की रिपोर्ट में देखने को मिलता है ।[2] जो उसी के शब्दों में राजस्व की ऊँची दरों का नतीजा था । उसने लिखा है "1818 से लेकर 1824 के बीच में लखनऊ के एक व्यापारी कुतुबुद्दीन हुसैन खान ने हमीरपुर जिले की 8,000 रुपये राजस्व के मूल्य के कई गाँवों को इसलिए खरीद लिया था, क्योंकि वहाँ के भू-स्वामी राजस्व की पिछली धनराशि का भुगतान नहीं कर सके थे[3] उसी समय जैनउद्दीन खान ने भी 7,000 रुपये की मालगुजारी की भूमि खरीद ली थी, लेकिन आगामी वर्षों में उसकी भी आर्थिक स्थिति इतनी खराब हो गई कि उसे भिखारी के रूप में जिला छोड़ देना पड़ा।" पेटन ने भूमि स्थानान्तरण के अनेक उदाहरण दिये हैं । वह पुन: लिखता है कि हमीरपुर के एक ऋणदाता दयाराम ने ऋण लेन-देन का व्यापार करके लगभग 12000 रुपये की मालगुजारी की जमीन खरीद ली थी जो उन किसानों की थी जो आर्थिक तंगी के कारण राजस्व का भुगतान नहीं कर सके थे और वाध्य होकर अपनी जमीन ऋणदाताओं को बेच रहे थे, लेकिन दयाराम को भी सारी जमीन बाद में इसलिए बेच देनी पड़ी, क्योंकि वह स्वयं भी राजस्व का भुगतान नहीं कर सका था । इसी समय इलाहाबाद के मिर्जा मुहम्मद खान ने हमीरपुर के दो गाँवों की

1- एटकिन्सन ई0टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, पृष्ठ 175.
2- वही. पृष्ठ 175.
3- वही. पृष्ठ 175.

जमींदारी खरीद ली थी जिसकी वार्षिक मालगुजारी 4,000 रुपये थी ।[1] भूमि को खरीद करने वालों में हमीरपुर के एक सरकारी वकील नुनायक्त राय भी थे,लेकिन बाद में चलकर राजस्व की अदायगी न कर सकने के कारण उन्हें भी अपनी भूमि दूसरों को बेचनी पड़ी । यही स्थिति दीवान मदनसिंह की भी हुई जिन्होंने गरीब किसानों की भूमि खरीदी थी,किन्तु बाद में मदनसिंह की आर्थिक स्थिति स्वयं खराब हुई और उन्हें अपनी सारी जमीन बेच[2] देनी पड़ी । मजे की बात तो यह थी कि एक यूरोपीय जमींदार गुल्स ने भी हमीरपुर जिले में कृषि के कुछ फार्म खरीदे थे,लेकिन उसकी भी आर्थिक स्थिति चिन्ताजनक हो गई थी । भूमि हस्तान्तरण की यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रही । अत:इससे इस क्षेत्र में गरीबी,भुखमरी तथा बेरोजगारी का बोलबाला हुआ और सामाजिक,आर्थिक पिछड़ापन बढ़ता गया ।

बुन्देलखण्ड का आर्थिक शोषण :

1804 में बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासन की स्थापना बेसिन की सन्धि द्वारा हुई । 1947 तक विदेशी शासन पूरे देश की ही भांति इस क्षेत्र में भी छाया रहा । यहां की केन्द्रीय स्थिति,सामरिक महत्व तथा शौर्यपूर्ण इतिहास के कारण ही विदेशी शासक इस क्षेत्र में अपना पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करना चाहते थे और इस दिशा में उन्हें सफलता

1- एटकिन्सन ई०टी०,बुन्देलखण्ड गजे०, पृष्ठ-175-176·

2- वही·

भी प्राप्त हो गई । अंग्रेजी शासनकाल में पूरे देश का आर्थिक शोषण हुआ और बुन्देलखण्ड भी इसका अपवाद नहीं था । धीरे-धीरे ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा इंग्लैण्ड में हो रहे उत्पादन तथा व्यापारिक वस्तुओं को इस क्षेत्र में प्रवेश दिलाया गया अत:शीघ्र ही विदेशी कपड़े,लोहे तथा अन्य जरूरत की लगभग सभी चीजें,मानचेस्टर,लीवरपूल,लंकाशायर,बरमिंघम आदि आदि औद्योगिक नगरों से लाकर पूरे देश की ही भाँति बुन्देलखण्ड में भी इसकी बिक्री प्रारम्भ की गई । विदेशी वस्तुओं की बिक्री को प्रसिद्ध बनाने के लिए इस बात की आवश्यकता महसूस की गई कि यहाँ के उद्योग तथा धन्धों का विनाश किया जाय और यदि इस क्षेत्र का व्यापार चौपट हो जायेगा तो ऐसी स्थिति में लोगों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इंग्लैण्ड के उद्योग पर आधारित होना पड़ेगा । सरकार की इस नीति के परिणाम स्वरूप लिटन जैसे गवर्नर जनरल के समय इंग्लैण्ड से भारत आने वाली वस्तुओं पर से कर या तो बिल्कुल नाममात्र कर दिया गया अथवा बिल्कुल ही समाप्त कर दिया गया । साथ ही विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि इस क्षेत्र में हो रहे औद्योगिक उत्पादनों तथा कुटीर उद्योग धन्धों को नष्ट कर दिया जाय । इसी नीति के अन्तर्गत् बुन्देलखण्ड के उद्योग तथा धन्धों का विनाश कर दिया गया ।

बुन्देलखण्ड में नील उद्योग का विनाश :

अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड की अच्छी किस्म की मार-भूमि में अल नामक पौधे की खेती की जाती थी ।[1] इस पौधे की

1- एटकिन्सन ई०टी०,बुन्देलखण्ड गजे०, पृष्ठ-252.

जड़ को खोदकर तथा उसे भट्ठियों में जलाकर विभिन्न प्रकार के रंगों का निर्माण किया जाता था जिसका उपयोग वस्त्रों के रंगने के कार्य में होता था ।[1] यह रंगाई उद्योग इस क्षेत्र में मुख्यतः मऊरानीपुर तथा उसके आसपास के क्षेत्रों तक फैला हुआ था । इस क्षेत्र में एक प्रकार के वस्त्र की बुनाई होती थी जिसे खरूआ वस्त्र उद्योग के नाम से पुकारा जाता है ।[2] खरूआ उद्योग का प्रधान केन्द्र मऊरानीपुर में स्थित था । इस कपड़े की रंगाई में जो विभिन्न प्रकार के रंग प्रयोग होते थे वे अल पौधे की जड़ को पका कर तैयार किये जाते थे । उन दिनों यह बड़ा ही प्रसिद्ध उद्योग था जिससे इसका खेती करने वाले किसान लाभान्वित होते रहते थे ।

अल नामक पौधे की खेती अच्छी किस्म की मार भूमि में की जाती थी और लगभग एक एकड़ भूमि में इस पौधे की 10 मन जड़ का उत्पादन हो जाता था ।[3] 1873 में यह अनुमान लगाया गया था कि यह जड़ 8 रु० प्रति मन के हिसाब से बेची जाती थी ।[4]

यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि यह पौधा जो कि यहाँ के कृषकों के लिए आमदनी का एक प्रमुख स्रोत था उसकी खेती का पतन अंग्रेजी शासनकाल में हुआ । ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेजी शासक

1- पाठक एस०पी०, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ-57.
2- वही.
3- एटकिन्सन ई०टी०, बुन्देलखण्ड गजे०, पृ०-252.
4- वही.

इस क्षेत्र के रंग उद्योग को नष्ट करना चाहते थे । इसके पीछे उनका इरादा यह था कि इंग्लैण्ड में जिस रंग का उत्पादन हो रहा है उसे भारत में बेचा जाय । यही कारण था कि अल पौधे की खेती को अंग्रेजी शासकों का संरक्षण नहीं मिला । झाँसी जिले के दूसरे बन्दोबस्त के समय 1892 में इमर ने लिखा था कि इस पौधे की खेती इस क्षेत्र के किसानों के लिए एक लाभप्रद उद्योग था,लेकिन 1892 तक इसकी खेती काफी कम हो गई । परिणाम स्वरूप झाँसी,हमीरपुर,जालौन तथा बाँदा के किसानों को आर्थिक रूप से भारी नुकसान हुआ ।[1] मऊरानीपुर का प्रसिद्ध खरूआ वस्त्र उद्योग जो अल पौधे के रंग से रंगा जाता था,उसको भी गहरा धक्का लगा । अल पौधे की खेती को नष्ट होने के निम्नलिखित कारण प्रतीत होते हैं - पहला,इस पौधे की खेती में लाभ का अनुपात कम था । दूसरा,इस पौधे की खेती की देख-रेख करने की बहुत ही आवश्यकता थी,क्योंकि इसमें कीड़े भी लग जाते थे । तीसरा,इस पौधे की जड़ें काफी गहराई में जाती थीं तथा इनकी खुदाई के लिये काफी पैसा खर्च करना पड़ता था ।[2] इसके साथ ही सरकार की ओर से अल पौधे की खेती को हतोत्साहित किया गया अतः नील उद्योग पूर्णतः नष्ट हो गया ।

1- इम्पे डब्ल्यू एच0 एल0, तथा मेस्टन जे0 एस0,झाँसी सैटिलमेन्ट-रिपोर्ट,इलाहाबाद 1892, पृष्ठ-3.

2- एटकिन्सन ई0 टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, पृष्ठ 252-253.

कुटीर उद्योग धन्धों का पतन :

जहाँ बुन्देलखण्ड के किसान आर्थिक रूप से नष्ट हो रहे थे, वहीं दूसरी ओर व्यापारी तथा उत्पादन की भी खुशहाल नहीं था, इसका कारण स्पष्ट था । अंग्रेज अधिकारियों को बुन्देलखण्ड के क्षेत्रीय विकास में कोई रुचि नहीं थी और वे तो इस क्षेत्र को औद्योगिक रूप से पिछड़ा बनाये रखना चाहते थे, ताकि 1857 के विद्रोह में भाग लेने की उचित सजा यहाँ के निवासियों को दी जा सके । 1872 में एटकिन्सन ने लिखा था कि झाँसी जिले में कुल 6,222 व्यक्ति व्यापारिक कार्यों में जुड़े हुये हैं इसके अलावा कुछ ऐसे लोग हैं जो आयात-निर्यात तथा ऋण लेन-देन का काम भी किया करते हैं ।[1] ललितपुर जिले की भी यही स्थिति थी जो 1891 तक एक पृथक जिला था ।[2] यहाँ कुछ ऐसे जैन व्यापारी थे जो गल्ला, तम्बाकू तथा ऋण के लेन-देन का व्यापार करते थे ।[3] प्राप्त आँकड़ों से प्रतीत होता है कि इस जिले से अन्य क्षेत्रों को मोटा अनाज, दालें, तिलहन, सूती कपड़ा तथा घी का व्यापार यहाँ के लोगों को अधिक प्रेरणा प्रदान नहीं कर सका । 1880-81 में झाँसी जिले में 4,49,862 मन के मूल्य का सामान दूसरे जिलों को निर्यात किया गया, लेकिन दूसरी ओर विदेशी गल्ले के आयात

1- एटकिन्सन ई0 टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, पृष्ठ 269.

2- वही. पृष्ठ 347-348.

3- वही.

नमक, चीनी, सूती कपड़े की वस्तुयें तथा 7,50,308 मन तक के मूल्य के सामान इस क्षेत्र में मंगाने पड़े । इस प्रकार व्यापार का सन्तुलन बिगड़ता ही चला गया और इस क्षेत्र के लोगों के आयात तथा निर्यात की दृष्टि से कोई लाभ नहीं हुआ ।

मऊरानीपुर का खरुआ वस्त्र उद्योग का पतन :

बुन्देलखण्ड में ब्रिटिश शासन की स्थापना के लगभग 100 वर्ष पूर्व मऊरानीपुर इस सम्भाग के व्यापारिक तथा औद्योगिक केन्द्र के रूप में विकसित हुआ । जेनकिन्सन ने इसके बारे में जानकारी दी है- मऊरानीपुर पहले एक छोटा-सा गाँव था, जहाँ लोगों का मुख्य पेशा खेती था । झाँसी के राजा रघुनाथ राव के समय छतरपुर से कुछ व्यापारी भागकर मऊरानीपुर आ गये जिन्हें रघुनाथ राव ने संरक्षण प्रदान किया । अतः इन व्यापारियों ने इस क्षेत्र में अपने औद्योगिक प्रतिष्ठान खोलने प्रारम्भ कर दिये ।[1] तभी से यह क्षेत्र व्यापारिक केन्द्र के रूप में विकसित होने लगा ।

मऊ का एक औद्योगिक केन्द्र के रूप में विकसित होने के पीछे क्या कहानी रही है, इसकी विवेचना किये बिना भी हम यह कह सकते हैं कि अंग्रेजी शासन से पूर्व ही यह क्षेत्र अपने खरुआ उद्योग के लिये महत्वपूर्ण हो चुका था । खरुआ वस्त्र एक प्रकार के रंग से रंगा जाता था जिसे अल नामक पौधे की जड़ से पकाया जाता था ।[2] यही कारण था कि अल पौधे की खेती बुन्देलखण्ड के जिलों में काफी

1- पाठक एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 60.

2- वही ।

प्रसिद्ध हो चुकी थी । एटकिन्सन ने इस खरूआ उद्योग के अन्तर्गत् बनाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के कपड़ों की विस्तृत सूची दी है जिसे वहाँ आस-पास के बुनकरों द्वारा बुना जाता था । इनकी रंगाई कर देने पर इसे खरूआ कपड़े के नाम से पुकारा जाता था । यह उद्योग इतना विकसित हो चुका था कि 1863 में डेनियल के अनुसार इस कपड़े का निर्यात लगभग 6 लाख,80 हजार रुपया वार्षिक की दर से हुआ । मऊरानीपुर के व्यापारी भारत के दूर-दूर क्षेत्रों में अपना सामान बेचते थे । अमरावती,मिर्जापुर,नागपुर, इन्दौर,फर्रुखाबाद,हाथरस,कालपी,कानपुर और दिल्ली जैसे नगर इनके व्यापारिक सम्बन्धों के प्रमुख केन्द्र थे ।[1]

यह आश्चर्य का विषय है कि खरूआ वस्त्र उद्योग जितना लाभप्रद था वह अचानक नष्ट हो गया । सरकार की ओर से इस उद्योग को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला,यहाँतक कि विदेशी रंग आ जाने के कारण मऊरानीपुर के उद्योग को संरक्षण नहीं मिला तथा निषेधात्मक तरीके अपनाकर सरकारी नीति ने इन उद्योगों के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । इंग्लैण्ड से भारत आने वाले कपड़ों पर कर न होने के कारण वे कपड़े बुन्देलखण्ड के बाजारों में सस्ते दर पर बिकने लगे । ऐसी स्थिति में सरकारी कर से दबा हुआ मऊ का वस्त्र उद्योग पतन की कगार पर पहुँच गया । साथ ही सरकार की ओर से इस उद्योग में निर्मित वस्त्रों के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया गया जो इसके पतन का कारण हुआ ।[2]

1- एटकिन्सन ई0 टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, पृष्ठ 289·
2- पाठक एस0 पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 61·

कच्चा वस्त्र उद्योग के अलावा मऊरानीपुर बुन्देलखण्ड के क्षेत्रों को विभिन्न व्यापारिक सामानों को पहुंचाने तथा उन्हें इकट्ठा करने का प्रमुख केन्द्र भी था । यहीं से दक्षिण बुन्देलखण्ड तथा मध्य भारत के नगरों को तथा हाथरस, फतेहगढ़, कानपुर, अलीगढ़ और मिर्जापुर आदि व्यापारिक नगरों को मऊरानीपुर से सामान भेजे तथा खरीदे जाते थे । इन दिनों बन्जारे व्यापारिक सामानों को पहुंचाने व लाने का कार्य करते थे ।[1] धीरे-धीरे झाँसी में रेलवे स्टेशन हो जाने के कारण तथा इसकी केन्द्रीय स्थिति के कारण मऊरानीपुर का व्यापारिक महत्व घटने लगा और झाँसी इस क्षेत्र के आयात तथा निर्यात के लिये प्रसिद्ध हो गया ।

अन्य उद्योग :

कच्चा उद्योग के अलावा बुन्देलखण्ड में कुछ अन्य कुटीर उद्योग भी थे जिनका पतन अंग्रेजी शासन काल में हुआ । 1825 में कैप्टन जेम्स फ्रैंकलिन ने झाँसी में बनने वाली अच्छी किस्म की कालीन का उल्लेख किया था ।[2] 1844 में कर्नल स्लीमैन ने भी इस क्षेत्र में बनने वाली ऊनी कालीन की प्रशंसा की थी,[3] लेकिन आगे आने वाले दिनों में सरकार की निषेधात्मक व्यापार की नीति और संरक्षण के अभाव में इस क्षेत्र का यह उद्योग नष्ट हो गया । इसके

1- पाठक एस० पी०, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ-62.

2- मेमायर्स आफ बुन्देलखण्ड, मई 12, 1825. पृष्ठ-277.

3- ड्रेक ब्रोक मैन डी० एल०, झाँसी गजे०, इलाहाबाद 1909 पृ० 75, तथा जोशी ई०वी०, झाँसी गजे०, लखनऊ 1965, पृष्ठ-144.

अतिरिक्त झाँसी जिले के तालबेहट परगने में आसपास के गाँवों में कम्बल बुनाई का कार्य होता था ।[1] मड़ौरा में पीतल तथा लोहे की अनेक कलात्मक वस्तुएं बनाई जाती थीं ।[2] ललितपुर में भी अमेरिकन मिशनरियों ने सुअर की चर्बी से मक्खन बनाने का कार्य प्रारम्भ किया था ।[3] पैरव में वहाँ के गाँवों के आसपास के मुसलमान बड़ी ही कलात्मक ढंग की चुनरी बनाते थे ।[4] इसके अतिरिक्त ललितपुर में चन्देरी में बनने वाली अच्छी प्रकार की साड़ी जैसा कुटीर उद्योग प्रारम्भ करने के लिये कुछ जुलाहे आकर बस गये थे, लेकिन 1865 में हैजा फैल जाने के कारण उनमें से अधिकांश जुलाहे मर गये ।[5] इसके बाद कभी भी ऐसा प्रयास नहीं किया गया ।

बाँदा जिले में भी इसी प्रकार के कुटीर उद्योग थे जिनका विकास करने पर इस क्षेत्र के लोगों को राहत प्रदान की जा सकती थी । वहाँ मोटे सूती कपड़े की बुनाई का कार्य होता था जिसे गजी कहा जाता था । इस कपड़े की रंगाई करके उसे फर्श इत्यादि पर बिछाने के कार्य में लाया जाता था ।[6] बाँदा के विभिन्न

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी० एल०, झाँसी गजे०, 1909 पृष्ठ-75.

2- वही.

3- वही.

4- इम्पे डब्ल्यू०एच०एल० एण्ड मेस्टन जे०एस०, झाँसी सैटिलमेन्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद 1892, पृष्ठ-23.

5- एटकिन्सन ई० टी०, बुन्देलखण्ड गजे०, पृष्ठ-348.

6- ड्रेक ब्रोक मैन डी० एल०, बाँदा गजे०, इलाहाबाद 1909, पृ०-77.

स्थानों में खाना पकाने के लिये पीतल तथा तांबे के बर्तन बनाने के कार्य भी होते थे तथा जगह-जगह सोने व चांदी के अच्छे किस्म के आभूषण बनाये जाते थे ।[1] इस जिले के कुछ कस्बों में कम्बल तथा सूती वस्त्र बुनाई के कार्य भी होते थे तथा कहीं-कहीं टाट भी बुना जाता था ।[2] 1909 में ड्रेक ब्रोक मैन ने लिखा है - बांदा से जुड़े हुये कुछ गांवों में जैसे- राकसी,कल्यानपुर और गोडा आदि स्थानों पर विभिन्न प्रकार के पत्थरों को काटकर उन पर पालिश करके अलंकृत किया जाता था ।[3] कर्वी में शिल्प को कढ़ाई का हस्तशिल्प विकसित दशा में था ।[4] इस जिले का सबसे प्रसिद्ध उद्योग पत्थरों की कटाई तथा पालिश करना था ।[5] केन नदी की तलहटी में जो छोटे किस्म के पत्थर पानी की रगड़ से मुलायम व चिकने हो जाते थे उन्हें लेकर यहां के कारीगर पालिश करके उन्हें अच्छी किस्म के चमकीले पत्थरों के रूप में कलात्मक सौन्दर्य प्रदान करते थे ।[6] इन पत्थरों को लकड़ी के टुकड़ों पर एक ऊंची ऊंचाई से मढ़कर अच्छी

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी० एल०, बांदा गजे०, इलाहाबाद 1909, पृ० 77.

2- वही.

3- वही. पृ० 76-77.

4- वही.

5- वही.

6- वही.

हस्त निर्मित चीजें बनाई जाती थीं । इस कलात्मक कार्य ने यहाँ के कारीगरों को दिल्ली प्रदर्शनी में पारितोषिक भी प्राप्त किया था ।[1] लेकिन दुर्भाग्यवश अँग्रेजी शासनकाल में इन उद्योगों को कोई संरक्षण नहीं दिया गया । बल्कि सरकार ने निषेधात्मक तरीके अपना कर इन्हें हतोत्साहित किया । आश्चर्य की बात तो यह थी कि सरकार ने बुन्देलखण्ड के व्यापार को नष्ट करने की एक योजना-सी बना ली थी । कहीं स्थित सूती मिल[2] जिसमें बुन्देलखण्ड के आसपास के सूत को कताई होती थी, 1903 में बन्द हो गई । अतः यहाँ कार्यरत् 140 कर्मचारी निकाल दिये गये, इससे बेरोजगारी को बढ़ावा मिला ।[3]

हमीरपुर जिले में भी खल्आ वस्त्र के निर्माण के कई केन्द्र थे[4] जो अँग्रेजी शासनकाल में नष्ट हो गये । यही स्थिति कुछ अन्य कुटीर उद्योग धन्धों की भी रही जिसमें जुलाहों द्वारा वस्त्र निर्मित, लोहे, पीतल आदि के बर्तन के निर्माण का कार्य, आभूषण निर्माण इत्यादि थे ।[5] 1847 में पेटन ने लिखा था कि हमीरपुर जिले में कपड़ों की रंगाई का कार्य कुछ स्थानों पर होता है जिसमें खल्आ कपड़े शामिल होते हैं । कहीं-कहीं पर आभूषण निर्माण कार्य होता

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी०एल०, बाँदा गजे०, इलाहाबाद 1909, पृ० 77.

2- कैडिल ए०, सैटिलमेन्ट रिपोर्ट, बाँदा 1881, पृष्ट 102.

3- वही.

4- एटकिन्सन ई०टी०, बुन्देलखण्ड गजे०, पृष्ठ 183.

5- वही.

था । ये सम्पूर्ण उद्योग अंग्रेजी सरकार की निषेधात्मक नीति से नष्ट हो गये ।

जालौन में भी आल पौधे की खेती काफी बड़े पैमाने पर की जाती थी । कौंच,कालपी,सैयद नगर,और कोटरा में आल पौधे की जड़ से जो रंग तैयार किया जाता था उससे वस्त्रों की रंगाई की जाती थी ।[1] इस कल्वा कपड़े के कई प्रकार होते थे जिनको बड़े ही कलात्मक ढंग से रंगा जाता था । इस प्रकार इस क्षेत्र में स्थित सभी उद्योग धन्धे अंग्रेजी शासन की नीति के कारण नष्ट हो गये जिससे आर्थिक,सामाजिक,पिछड़ापन आया और बेरोजगारी बढ़ी ।

बुन्देलखण्ड में कपास की खेती का पतन :

अंग्रेजी शासनकाल से पूर्व ही बुन्देलखण्ड की अच्छी प्रकार की काली मिट्टी में उच्च किस्म की कपास पैदा होती थी । 1903 में झाँसी के बन्दोबस्त अधिकारी पिम[2] ने लिखा था "इस जिले में 10·1% खेती योग्य जमीन में कपास उत्पादन होता है । मोंठ में यह प्रतिशत 10·1 है,जबकि गरौठा में 13·1% है"[3] झाँसी तथा मऊरानीपुर में कपास की खेती अधिक पैमाने पर नहीं होती थी । इसका कारण यह था कि यहाँ कि भूमि इसके लिये विशेष उपयुक्त नहीं थी । ललितपुर जिले की भी यही स्थिति थी[4] जहाँ

1- एटकिन्सन ई०टी०,बुन्देलखण्ड गजे०, पृष्ठ-201·
2- पाठक एस०पी०, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 55·
3- वही·
4- एटकिन्सन ई०टी०,बुन्देलखण्ड गजे०, पृष्ठ-316·

पर निम्न कोटि की भूमि के कारण इस फसल का उत्पादन अधिक नहीं हो सका । 1874 में पटकिन्सन ने लिखा था[1] "ललितपुर में कपास का जितना उत्पादन होता है वह अत्यन्त कम है इससे केवल स्थानीय आवश्यकताओं की ही पूर्ति होती है, बल्कि आस-पास के जिलों से भी ललितपुर में कपास मंगानी पड़ती है ।[2]

जालौन जिले की मार भूमि कपास उत्पादन के लिये अत्यधिक अनुकूल थी । एक एकड़ मार जमीन में 15 मन कच्चा कपास होता था । उन दिनों 18 रु० प्रति मन के हिसाब से उसकी बिक्री होती थी[3] इससे किसानों की आमदनी का बड़ा स्रोत था । लेकिन यह एक आश्चर्य का विषय है कि यह उत्पादन लगातार कम होता गया तथा इसका लगभग पतन हो गया । कपास उत्पादन के कुछ आँकड़े इस बात की पुष्टि करते हैं । उदाहरण के लिये केवल झाँसी जिले में ही 1865 में यह फसल 35107 एकड़ भूमि में बोई गई, किन्तु 1903 तक आते-आते यह 34363 एकड़ रह गई[4] धीरे-धीरे कपास का उत्पादन और कम होता गया । ऐसा प्रतीत होता है कि मऊरानीपुर, कालपी, कोंच, कोटरा, सैय्यद नगर, ऐरच आदि स्थानों पर वस्त्रों की रंगाई तथा प्रिंटिंग निर्माण का कार्य होता था । उसमें बुन्देलखण्ड के ही कपास का प्रयोग होता था । किन्तु जैसे ही उपरोक्त केन्द्रों के उद्योग समाप्त हुये वैसे ही इस क्षेत्र के

1- पटकिन्सन ई०टी०, बुन्देलखण्ड गजे०, पृष्ठ-316.
2- वही.
3- वही. पृष्ठ-201.
4- ड्रेक ब्रोक मैन डी०एल०, झाँसी गजे०, इलाहाबाद 1909, पृ043-44.

कपास की माँग कम हुई । इसके अलावा 1903 में कर्वी की सूती मिल भी बन्द हो गई । इससे भी कपास उत्पादकों को धक्का लगा । अतः सरकार द्वारा संरक्षण का अभाव तथा विदेशी कपड़ों के आगमन से बुन्देलखण्ड का कपास उद्योग बन्द हुआ । इससे इस क्षेत्र का सामाजिक, आर्थिक पिछड़ापन निरन्तर बढ़ता गया ।

कपास के अलावा बुन्देलखण्ड के जिलों में तिलहन का भी अच्छा उत्पादन होता था । इसमें मुख्यतः तिली का उत्पादन उच्च स्तर पर किया जाता था । 1864 में झाँसी जिले में लगभग 9266 एकड़ में[1] तिली का उत्पादन हुआ । ललितपुर सब डिवीजन में तिलहन झाँसी से अधिक प्रसिद्ध था । 1869 के बन्दोवस्त के समय यह पता चला कि वहाँ की 10·7%[2] खेती योग्य जमीन में तिली बोई गई थी । जालौन में भी तिली का उत्पादन काफी बड़े पैमाने पर किया जाता था । 1869 की एक रिपोर्ट से पता चलता है कि इस जिले में 2172 एकड़ जमीन[3] में तिली बोई गई इसके अतिरिक्त अलसी की फसल 2476 एकड़ भूमि[4] में बोई गई । ठीक इसी तरह हमीरपुर तथा बाँदा की स्थिति थी । ऐसा प्रतीत होता है कि तिलहन के उत्पादन में भी किसानों की अभिरुचि कम होती गई । उत्पादन में अधिक लागत तथा कम पारिश्रमिक की प्राप्ति इसका मुख्य कारण था । इस प्रकार कपास तिलहन आदि खेती का पतन अंग्रेजी शासनकाल में हुआ जिससे इस क्षेत्र में गरीबी, भुखमरी और मंहगाई बढ़ती चली गई ।

1- एटकिन्सन ई०टी०, बुन्देलखण्ड गजे०, पृष्ठ-250-251·
2- वही·   पृष्ठ-316·
3- वही·   पृष्ठ-198·
4- वही·

अकाल तथा प्राकृतिक आपदाएं :

बुन्देलखण्ड में समय-समय पर प्राकृतिक आपदाओं जैसे अकाल, बाढ़ तथा कांस, घास के उदय के कारण न केवल भूमि की ही उर्वरा शक्ति नष्ट हुई बल्कि इससे लोगों को आर्थिक परेशानी तथा गरीबी का सामना करना पड़ा ।[1] उन दिनों कृषि ही जीविका का मुख्य साधन था । अत: अकाल पड़ जाने के कारण जो क्षति होती थी उसे पूरा करना सम्भव नहीं था । फलत: किसानों को कर्ज लेना पड़ा और उन्हें अपनी भूमि ऋणदाताओं को बेच देनी पड़ी ।[2] यद्यपि अंग्रेजी सरकार ने समय-समय पर कुछ सहायता दे देने का प्रयास किया, किन्तु अंग्रेजों द्वारा अपनाए गये ये तरीके न तो सामयिक थे और न ही पर्याप्त ।[3] इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड की रियासतों के कुछ राजाओं ने भी 1857 के विद्रोह में व्याप्त अराजकता का लाभ लेने के लिये अपने समीप के क्षेत्रों में कृषकों से बलपूर्वक कर वसूल किये ।[4] सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि शान्ति व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद ब्रिटिश सरकार ने उन्हीं क्षेत्रों में कर वसूल किये इसका सबसे बड़ा उदाहरण झांसी में देखने को मिलता है । 1857 के विद्रोह में जहां झांसी के लोग अंग्रेजों से लड़ रहे थे, वहीं अंग्रेजों का साथ देने वाली ओरछा की रियासत ने न केवल झांसी पर आक्रमण किया बल्कि यहां के आस-पास के गांवों में बलपूर्वक राजस्व वसूल किये ।[5] उन्हीं

1- पाठक एस0पी0, झांसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ-67.
2- वही.
3- वही.
4- इम्पे डब्ल्यू0एच0एल0 तथा मेस्टन जे0एस0, झांसी सैटिलमेन्ट रिपोर्ट- इलाहाबाद 1892, पृष्ठ-56.
5- पाठक एस0पी0, झांसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 67-68.

क्षेत्रों में बाद में चलकर अंग्रेजी सरकार ने जबरदस्ती कर वसूल किया। दतिया ने भी इसी प्रकार झाँसी की जनता के साथ दुर्व्यवहार किया। पिनकने ने लिखा है कि "ओरछा और दतिया के राजाओं ने झाँसी की सीमाओं में घुसकर वहाँ की जनता से लाखों रुपये कर के रूप में वसूल कर लिये।[1]" अंग्रेज सरकार ने इस मामले में चुप्पी साध ली, क्योंकि उसे डर था कि यदि इन राजाओं से कुछ कहा जायेगा तो वे अंग्रेजी शासन का विरोध करने लगेंगे।[2] 1857 में हुई लूट से झाँसी नगर के धनी लोगों को लूटा गया। यही स्थिति बाँदा की भी रही जहाँ 1858 में शान्ति स्थापित हो जाने के बाद अंग्रेजी सेनाओं ने लूटपाट की।[3] 20 अप्रैल से 28 अप्रैल तक यह लूट खुलेआम चलती रही, अनेकों निर्दोष लोगों को भी इस अत्याचार का शिकार बनना पड़ा। बाँदा में शायद ही ऐसा घर रहा होगा जो अंग्रेजी सैनिकों के अत्याचार का शिकार न हुआ हो। यदि कोई भी अच्छी इमारत दिखाई पड़ी, या तो उसे गिरा दिया गया या फिर उसे बुरी तरह लूटा गया, क्योंकि अंग्रेजों को यह भय था कि यह क्रान्ति-कारियों का निवास रहा होगा।[4] जिन लोगों ने सरकार का तनिक भी विरोध किया उनकी जागीरें जब्त कर ली गईं। बाँदा के नवाब अलीबहादुर की शाही इमारत को नष्ट कर दिया गया। उसकी सम्पत्ति को भी जब्त कर लिया गया।[5] निःसन्देह इन सब

1- रिपोर्ट नम्बर 122, कैम्प झाँसी, 23 अप्रैल 1858.
2- वही.
3- पाठक एस०पी०, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ-17,
4- श्रीवास्तव एम०पी०, इण्डियन म्यूटनी, पृष्ठ-122.
5- फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन नं० 326-328, 25 सितम्बर 1858.

घटनाओं ने इस क्षेत्र की जनता को आर्थिक उत्पीड़न की कगार पर खड़ा कर दिया ।

बुन्देलखण्ड के अकाल :

इस क्षेत्र में अकाल यहाँ के देहात से जुड़े हुये थे, चूंकि कृषि वर्षा पर आधारित थी । इसलिए वर्षा कम होने के कारण जो सूखा पड़ता था इससे लोगों की स्थिति असहनीय हो जाती थी ।[1] 1783, 1833, 1837, 1847, 1848 आदि वर्षों में बुन्देलखण्ड के जिलों में जो अकाल पड़े उनके भयंकर परिणाम लोगों को भुगतने पड़े ।[2] 1783 ई0 का अकाल तो इतना भयानक था कि आज भी लोग इसे महान चालीसा के नाम से पुकारते हैं ।[3] 1857 के विद्रोह के बाद इस क्षेत्र का पहला अकाल 1868,69 में पड़ा जो अपनी तरह का सबसे भयावह था ।[4] इसे लोग महान चालीसा के नाम से पुकारते हैं, क्योंकि यह सम्वत् 1925 में पड़ा था ।[5] उन दिनों एक यह कहावत बन चुकी थी कि बुन्देलखण्ड में प्रति पाँच वर्ष बाद अकाल पड़ते हैं ।

सम्वत् 1925 के पड़े अकाल के बारे में हेन्वी ने लिखा है कि "इस क्षेत्र में औसत वर्षा 30 से 40 इंच के बीच में होती है । 1867में

1- एटकिन्सन ई0टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, पृष्ठ-253.
2- वही.
3- सिंह प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास भाग-1, हितचिन्तक प्रेस, वाराणसी, सम्वत् 1985.
4- श्रीवास्तव, एच0एस0, फैमिन्स एण्ड फैमिन पॉलिसी आफ द गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया, पृष्ठ-94.
5- सिंह प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास भाग-1, हितचिन्तक प्रेस, वाराणसी, सम्वत् 1985.

45 इंच, 1869 में 46 इंच वृष्टि हुई, किन्तु 1868 के जून से नवंबर तक केवल 14 इंच पानी बरसा और वह भी समान रूप से नहीं था । जून में 1·8 इंच, जुलाई में 8·2 इंच, सितम्बर में 2 इंच वर्षा हुई, किन्तु अक्टूबर और नवम्बर के महीनों में एक इंच भी पानी नहीं बरसा । दिसम्बर में थोड़ी-सी फुहार जरूर पड़ी, लेकिन वह बिल्कुल ही अपर्याप्त थी ।"[1] आश्चर्य की बात तो यह थी कि इसके बाद बाढ़ आयी । हेन्वी ने पुन: लिखा है कि "मार्च में इतनी वृष्टि हुई कि खलिहान में रखा हुआ गल्ला बह गया, सड़कें टूट गयीं, पुल खराब हो गये तथा यातायात प्राय: ठप्प हो गया । जुलाई के अन्तिम सप्ताह में केवल झाँसी में 15 इंच पानी लगभग 16 घन्टे के अन्तर्गत् बरसा । परिणाम स्वरूप 1868 को खरीफ नष्ट हुई तथा रबी की फसल आधी से कम हुई"।[2] अकाल, बाढ़ तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के अलावा बीमारी का भयंकर प्रकोप भी शुरू हुआ । 1869 में प्रारम्भिक छ: महीनों में चेचक का प्रकोप आया । झाँसी के डिप्टी कमिश्नर ने बड़े ही मार्मिक ढंग से इसका वर्णन किया है- "लोग कमजोर तथा भूखे-प्यासे गर्मी में पानी पीते ही जमीन पर गिर पड़ते थे और मर जाते थे"।[3] 1869 में वर्षा ऋतु में हैजे का प्रकोप हुआ जिसमें केवल झाँसी जिले में ही लगभग 20 हजार 331 लोग मर गये ।[4] ललितपुर जिले की स्थिति और खराब

1- एटकिन्सन ई0टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, पृष्ठ-254·
2- वही·
3- वही· पृष्ठ-253-254·
4- वही·

थी । हैन्वी ने लिखा है कि ललितपुर में तालबेहट,बांसी और बानपुर परगनों की स्थिति सबसे खराब थी । 1869 के जून में परगनों में हैजा फैला जिससे अधिकांश लोग मर गये ।[1] बांसी तथा ललितपुर में मानव जीवन की क्षति तो हुई थी,साथ ही साथ पशुओं को भी काफी नुकसान हुआ ।[2] 1874 में एटकिन्सन ने लिखा था- "उत्तर पश्चिमी प्रान्त में बहुत ही कम ऐसे जिले रहे होंगे जो अकाल से इस प्रकार प्रभावित रहे हों,जिस प्रकार झांसी तथा ललितपुर के जिले ।" भुखमरी की स्थिति के कारण यहां के गांवों में लोग मर गये अथवा इसे खाली करके चले गये ।[3]

जालौन जिले में भी 1868,69 का अकाल विनाश-लीला करने में सफल रहा । उरई तथा जालौन परगने सबसे ज्यादा प्रभावित हुए । ब्रिटिश सरकार को 28% राजस्व कर की वसूली रोकनी पड़ी ।[4] यही स्थिति हमीरपुर की भी थी । बांदा भी इसी प्रकार प्रभावित हुआ । एटकिन्सन ने लिखा है कि"इस अकाल के भी कारण अधिकांश लोगों को आम,महुआ,झरबेरी आदि जंगली खाद्य पदार्थों को खाकर जीवन-व्यतीत करना पड़ा ।[5]

1- एटकिन्सन ई0 टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, पृष्ठ-254.

2- वही. पृष्ठ-256.

3- वही.

4- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0,बांदा गजे0, 1909, पृष्ठ-64.

5-

इसी प्रकार 1895 और 1896 में अकाल पड़े जिससे बुन्देलखण्ड के जिलों की आर्थिक स्थिति निरन्तर खराब होती चली गई । चूंकि इस क्षेत्र में खरीफ की फसल रबी की अपेक्षा बहुत अधिक ली जाती थी इसलिये वर्षा के अभाव में यह फसल नष्ट हुई जिससे कृषकों को बहुत हानि हुई ।[1] साथ ही साथ पशुओं के लिये चारे की भी कमी हुई ।[2] पानी के अभाव में रबी की बुवाई भी कम हुई, इससे खाद्यान्न की पैदावार कम हुई । स्थिति उस समय अधिक गम्भीर हो गई जब सितम्बर, 1897 में गेहूं की कीमत 9 सेर 4 छटांक प्रति रुपया हुई ।[3] नि:सन्देह तत्कालीन परिस्थिति में इससे क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को काफी धक्का लगा ।

अकाल के अलावा अन्य प्राकृतिक आपदाएं जैसे-टिड्डी, पाला, गेरू आदि भी समय-समय पर कृषि व्यवस्था को प्रभावित करती रहीं । 1894, 95 में ललितपुर में ओला पड़ जाने के कारण फसल को काफी नुकसान हुआ ।[4]

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी0 एल0, झांसी गजे0, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ-63-64.

2- वही.

3- वही.

4- वही. पृष्ठ-67 तथा ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0, बांदा गजे0, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ-70.

सरकार द्वारा काल पीड़ितों की सहायता के उपाय :

ब्रिटिश शासनकाल में अकाल से पीड़ित लोगों को सहायता देने के लिये कुछ नाममात्र के राहत कार्य किये गये ।[1] झाँसी में 1868 में एक सहायता समिति बनाई गई जिसमें कुछ स्थानीय लोगों के अलावा सैनिक तथा राजस्व विभाग के अधिकारी थे ।[2] अक्टूबर 1868 में ग्वालियर की रियासत ने 400 रु0 झाँसी जिले की सहायता के लिये दिये ।[3] झाँसी, मऊरानीपुर, कस्बा सागर, तथा बबीना में कुछ गरीबों की मदद करने के लिये केन्द्र खोले गये ।[4] सस्ते दर पर अकाल पीड़ितों के श्रम को प्राप्त कर सड़कों तथा पुलों का निर्माण कराया गया । इसी समय सिंचाई के लिये मऊ परगना में बाँध बनाये गये । इन कार्यों में लगभग 9,42,465 लोगों को नियुक्त किया गया जिस पर कुल लागत 71,881 रुपया खर्च हुआ ।[5] राजस्व की वसूली भी स्थगित कर दी गई तथा कुँए, ट्यूबवेल इत्यादि बनाने के लिये तकावी तथा ऋण दिये गये ।[6] ललितपुर में भी तालबेहट, बाँसी, बानपुर, महरौनी तथा जाखलौन

1- पाठक एस0 पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ-72.

2- वही.

3- एटकिन्सन ई0 टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, पृष्ठ-255.

4- वही.

5- पाठक एस0 पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ-73.

6- वही.

में सहायता केन्द्र खोले गये ।[1] ठीक इसी प्रकार की व्यवस्था अन्य जिलों में भी की गई । उदाहरण के लिये 1868-69 के अकालों से निपटने के लिये सरकार ने सहायता कार्य केलिये 10 लाख रुपये की स्वीकृति दी ।[2] इसके पीछे उद्देश्य अकाल द्वारा हुयी क्षति को कुछ कम करना था । इस जिले में लगभग 11 हजार लोगों को सहायता देने के लिये अस्थायी कम लेने के उद्देश्य से नियुक्त किया गया ।[3] कवीं तहसील में भी यही स्थिति थी । बांदा जिले के मानिकपुर,कमासिन तथा लरैयाँ क्षेत्रों में सबसे अधिक लोगों की सहायता हेतु कार्य प्रदान किया गया ।[4] 1895,96 में सार्वजनिक निर्माण विभाग में अकाल-पीड़ितों को काम के बदले वेतन देने का प्रबन्ध किया, किन्तु यह सहायता 758 रु0 खर्च हो जाने के बाद बन्द कर दी गई ।[5] 1897 के भी अकाल में लोगों को कुछ सहायता प्रदान की गई ।[6]

1- एटकिन्सन ई0 टी0,बुन्देलखण्ड गजे0,पृष्ठ-319.

2- भाटिया बी0 एम0,फैमिन्स इन इण्डिया, पृष्ठ-118 तथा एटकिन्सन ई0 टी0,बुन्देलखण्ड गजे0,पृष्ठ 71-72.

3- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0, बांदा गजे0, पृष्ठ-65.

4- वही.

5- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0,बांदा गजे0,पृष्ठ-65 तथा इम्पीरियल गजे0आफ इण्डिया,कलकत्ता 1908,पृष्ठ-36.

6- वही.

प्रश्न यह उठता है कि क्या सरकार द्वारा प्रदान किये गये ये तरीके बुन्देलखण्ड के सामाजिक व आर्थिक रूप में पिछड़े हुए इलाकों का स्थायी हल निकालने के लिये सक्षम थे ? यह देखते हुये जब इस क्षेत्र में अकाल तथा अन्य प्राकृतिक आपदाएं निरन्तर पड़ रही थीं तो क्या इन सहायता कार्यों से इलाज कुछ सम्भव था ? सरकार द्वारा दी गई सहायता की विवेचना यह स्पष्ट करती है कि केवल अस्थायी तौर पर ये राहत कार्य प्रदान किये गये । इस क्षेत्र को भविष्य में अकालों से बचाने के लिये कुछ निश्चित् स्थायी कार्यक्रमों की आवश्यकता थी । वह नहीं अपनायी जा सकी । सिंचाई की सुविधा से इस समस्या का कुछ हल हो सकता था, लेकिन सरकार का इस ओर ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ । यदि बुन्देलखण्ड में सिंचाई का उचित बन्दोबस्त रहा होता तो यह निश्चित् था कि निरन्तर पड़ने वाले अकालों से हो रही क्षति को कुछ कम किया जा सकता था ।

उपरोक्त अकालों के दूरगामी परिणाम निकले । इससे कृषकों के मस्तिष्क में अनिश्चितता पैदा हुई । अधिकांश लोगों ने अपने क्षेत्रों को खाली कर मालवा तथा अन्य क्षेत्रों में शरण ली। 1872 में केवल बाँदा जिले में यह देखा गया कि वहाँ की जनसंख्या का 3.6% कम हो गया है । बाँदा की कर्वी सब डिवीजन में अकालों की वजह से लोगों ने अपने क्षेत्र खाली कर दिये थे ।[1] यही स्थिति झाँसी की भी रही । 1872 में झाँसी की जनसंख्या

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0, बाँदा गजे0, पृष्ठ-69.

में 12.42% की हानि हुई ।[1] इसका कारण था कि अधिकांश लोग यह क्षेत्र छोड़कर चले गये थे । सरकारी सहायता से कोई विशेष मदद नहीं मिली और यह देखा गया कि न तो लोग जानवर ही रख सके और न ही कुँए की मरम्मत कराई जा सकी । फलत: अधिकांश क्षेत्रों में कोई खेती करने वाला नहीं था । ललितपुर जिला सबसे अधिक प्रभावित रहा । एटकिन्सन ने लिखा है "इस जिले में खेती योग्य अधिकांश भूमि खाली पड़ी है, किन्तु व्यक्ति तथा जानवरों की कमी के कारण खेती नहीं हो पा रही है ।[2] इन अकालों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव यह हुआ कि लोग खेती को जुआ समझ बैठे, इससे उसकी ओर झुकाव कम हुआ ।[3]

काँस, घास का उद्गम :

इलाहाबाद प्रखण्ड के कमिश्नर राबट ने 1892 में अपनी एक टिप्पणी में लिखा था कि "कोई भी व्यक्ति बुन्देलखण्ड के बारे में तब तक नहीं बोल सकता, जब तक कि वहाँ की काँस, घास से उत्पन्न असन्तोष को न समझ ले।"[4] वास्तव में बुन्देलखण्ड के आर्थिक पिछड़ापन के लिये काँस, घास का उदय एक महत्व-

---

1- पाठक एस0 पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ-74.

2- एटकिन्सन ई0 टी0, बुन्देलखण्ड गजे0, पृष्ठ-320.

3- पाठक एस0 पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ-74.

4- इम्पे डब्ल्यू0एच0एल0 तथा मेस्टन जे0एस0, झाँसी सेटिलमेन्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद 1892, पृष्ठ-2, (फारवर्ड नोट).

पूर्ण कारण था । इससे भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती थी तथा कृषकों में अराजकता व्याप्त होती थी । यह एक प्रकार की ऐसी एक लम्बी घास थी जो जुताई के अभाव में खेतों में काफी तेजी से उग जाती थी । इसकी जड़ें 6 या 7 फीट गहराई तक चली जाती थीं और इस प्रकार हल चलाने में बाधा उत्पन्न करती थी ।[1] 10 तथा 15 वर्षों के बाद इसकी जड़ों से दूसरी घास निकल आती थी और तभी वह भूमि जोतने योग्य हो सकती थी ।[2] झाँसी के डिप्टी कमिश्नर जेनकिन्सन ने 1871 में इस घास के उग जाने के कारण कृषकों को हुई व्यापक हानि का विस्तृत वर्णन किया है ।[3] झाँसी जिले में मऊरानीपुर परगने में स्थित भसनेह गाँव के आस-पास की सारी जमीन इस घास से बुरी तरह प्रभावित हुई । अत:परेशान हुए कृषकों में इतनी अराजकता की स्थिति पैदा हुई कि वे वाध्य होकर गाँव खाली कर गये और इस गाँव की भूमि का सारा प्रबन्ध अँग्रेज सरकार को अपने हाथों में लेना पड़ा ।[4]

सम्भवत:अत्यधिक वर्षा इस घास के उत्पन्न होने का कारण होती थी । 1863 की व्यापक वृष्टि के बाद यह घास काफी मात्रा में उत्पन्न हुई । 1872 में केवल झाँसी जिले में ही इसमें

1- इम्पीरियल गजे0 आफ इण्डिया भाग-1, पृष्ठ-91.

2- वही.

3- जेनकिन्सन ई0जी0, झाँसी सेटिलमेन्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद 1871, पृष्ठ-92.

4- वही.

40 हजार एकड़ भूमि को तीव्रता से घेर लिया था ।[1] 1892 में जब झाँसी जिले का दूसरा बन्दोबस्त किया जा रहा था उस समय बन्दोबस्त अधिकारी को दो महत्वपूर्ण समस्याओं का सामना करना पड़ा ।[2] पहला जमीदारों का ऋणग्रस्त होना, दूसरा कांश घास का प्रकोप । निःसन्देह जमीदारों की आर्थिक स्थिति कांश घास के प्रकोप के कारण ही सम्भव हुई । इस घास से खेती में इतनी क्षति हुई जिसके कारण सरकार को झाँसी जिले में 6 लाख रु0 की राजस्व की हानि हुई ।[3]

आगे आने वाले वर्षों में भी कांश ने इस क्षेत्र की कृषि-व्यवस्था को क्षतिग्रस्त किया । 1896,97 में झाँसी जिले के अनेक क्षेत्रों में यह घास पुनःप्रगट हुई ।[4] 1886,87 में जालौन में सरकार को राजस्व की वसूली इसलिये रोक देनी पड़ी थी कि कांश से प्रभावित क्षेत्रों के कारण कृषि में कोई उत्पादन नहीं हो सका था ।[5] बाँदा जिले में भी 1867,68,69,71 आदि वर्षों में इस घास ने कृषि व्यवस्था को हानि पहुँचाई ।[6]

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0, झाँसी गजे0, इलाहाबाद 1909, पृ0140.

2- इम्पे0 डब्ल्यू0एच0एल0 तथा मेस्टन जे0एस0, झाँसी सैटिलमेन्ट-रिपोर्ट, इलाहाबाद 1892, पृष्ठ-56.

3- वही.

4- पाठक एस0 पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ-75.

5- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0, जालौन गजे0, 1909, पृष्ठ-96.

6- केडिल ए0, सैटिलमेन्ट रिपोर्ट आफ बाँदा, इलाहाबाद 1881, पृष्ठ-6.

हमीरपुर की भी यही स्थिति थी ।[1] बांदा में तो 1881 में जब कैडिल ने बन्दोबस्त प्रारम्भ किया उस समय उसे कांस से भरे हुये खेतों के कारण यहाँ की राजस्व दरों को संशोधित करना पड़ा ।[2] 1887,88 में अधिक वर्षा होने के कारण इस जिले में पुन: घास तेजी से उग आयी । बांदा,पैलानी,बबेरू और कमासीन परगने इससे बुरी तरह प्रभावित हुए ।[3] वहाँ के कलेक्टर ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि"इस घास से हुई क्षति के कारण 1297 फसली में राजस्व की वसूली रोकनी पड़ी ।[4]

राजस्व को होने वाली हानि को ध्यान में रखते हुए ब्रिटिश अधिकारियों को उन प्रयासों की ओर ध्यान देना पड़ा जिनसे कांस का उन्मूलन किया जा सके । पहली बार डब्ल्यू0ई0 नीले ने इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिये जिसके अन्तर्गत इस घास को जलाना,गहरी खुदाई अथवा अच्छी तरह जुताई करना या खेत को वैसे ही खाली छोड़ देना आदि तरीके शामिल थे ।[5] ये सभी तरीके बुन्देलखण्ड के जिलों में,विशेषत: हमीरपुर में लागू किये गये,लेकिन इनका कोई परिणाम नहीं निकला ।[6] जब इसे

1- एटकिन्सन ई0टी0, बुन्देलखण्ड गजे0,पृष्ठ-153.

2- कैडिल ए0,सेटिलमेन्ट रिपोर्ट आफ बांदा,इलाहाबाद 1881, पृष्ठ-6.

3- हम्फ्रीज ई0डी0,एम0फाइनल रिपोर्ट आन द सेटिलमेन्ट रिपोर्ट बांदा,इलाहाबाद 1909, पृष्ठ-19.

4- वही.

5- हमीरपुर सेटिलमेन्ट रिपोर्ट,इलाहाबाद 1880, पृष्ठ-118.

6- वही.

जलाया गया तो यह दिखाई दिया कि दूसरे ही वर्ष और तेजी से यह घास पैदा हुई । जलाने का यह प्रयोग झांसी जिले की गरौठा तहसील में प्रयोग में लाया गया था ।[1] सहारनपुर के वनस्पति विभाग के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने इस सम्बन्ध में एक और सुझाव दिया ।[2] उनका यह मत था कि जिन खेतों में बराबर उर्वरक का उपयोग किया जा रहा हो वहाँ इस घास के पैदा होने की कम सम्भावना रहती है,[3] लेकिन यह प्रयास भी उन दिनों सफल नहीं हो सकता था, क्योंकि जब पुराने तरीकों से खेती की जा रही हो और लोगों की आर्थिक स्थिति दयनीय हो तो ऐसे समय में उर्वरक और अन्य विकसित तरीकों का प्रयोग करना सम्भव नहीं था ।

काँस के अतिरिक्त इस क्षेत्र में भूमि-कटाव भी बराबर होते रहे हैं जिससे भूमि की उर्वरा-शक्ति नष्ट होती रही है। यही कारण था कि इस क्षेत्र में विशेषतः ब्रिटिश शासनकाल में अच्छी खेती नहीं की जा सकी । झांसी के बन्दोबस्त अधिकारी ने लिखा था कि "1864 से पहले इस क्षेत्र में अच्छी खेती होती थी, किन्तु लगातार भूमि-कटाव के कारण कुछ गांवों की उर्वरा-

---

1- इम्पे0 डब्ल्यू0 एच0 एल0, तथा मेस्टन जे0 एल0, झांसी-सैटिलमेन्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद 1892, पैरा-8•

2- वही•

3- वही•

शक्ति नष्ट होती गई फलत: 1892 तक आते-आते ये गाँव खेती की दृष्टि से बेकार साबित हो गये ।[1] झाँसी जिले की गरौठा तहसील जहाँ अच्छे किस्म की खेती योग्य जमीन थी वह कटाव के कारण काफी कम हो गई ।[2] झाँसी तहसील में ही धसान नदी के किनारे तथा बेतवा के पश्चिमी किनारे पर बसे हुये गाँवों की भी यही स्थिति हुई ।[3] ललितपुर में यद्यपि बेतवा ने अधिक कटाव पैदा नहीं किया, किन्तु सहजाद, संजाव तथा जामिनी नदियों ने पर्याप्त भूमि कटाव किये हैं ।[4]

सरकार की ओर से इन कटावों को रोकने के लिये अल्प प्रयास किये गये । 1880 में झाँसी तहसील के रक्सा गाँव में एक बाँध के निर्माण की योजना बनाई गई,[5] किन्तु इसमें अधिक धनराशि खर्च होने की सम्भावना थी अत: सरकार ने यह प्रयास छोड़ दिया ।

1- इम्पे डब्ल्यू0एच0एल0, तथा मेस्टन जे0एस0, झाँसी सेटिलमेन्ट-रिपोर्ट, इलाहाबाद 1892, पृष्ठ-10.

2- वही.

3- पिम ए0 डब्ल्यू0, फाइनल सेटिलमेन्ट रिपोर्ट आफ द झाँसी, इलाहाबाद 1907, पृष्ठ-3.

4- वही.

5- इम्पे डब्ल्यू0एच0एल0, तथा मेस्टन जे0एस0, झाँसी सेटिलमेन्ट-रिपोर्ट, इलाहाबाद 1907, पृष्ठ-11.

इस प्रकार अकाल तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं व कांस के उद्गम,से कटाव इस क्षेत्र की कृषि व्यवस्था प्रभावित होती रही ।

सिंचाई की सुविधाओं का अभाव :

अंग्रेजी शासनकाल में पूरे बुन्देलखण्ड में सिंचाई की सुविधाओं का समुचित विकास नहीं किया जा सका । इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि सरकार ने 1862 में बुन्देलखण्ड सिंचाई विभाग का उन्मूलन कर दिया ।[1] इससे पहले चन्देलों तथा बुन्देलाओं के काल में बुन्देलखण्ड में सिंचाई के समुचित साधन उपलब्ध थे । 1825 में कैप्टन फ्रैंकलिन ने अपने संस्मरण में लिखा था "बुन्देला राजाओं ने इस क्षेत्र में सिंचाई के साधन के विकास के लिये काफी धन खर्च किया था ।"[2] मराठा काल में भी सिंचाई के समुचित साधन इस क्षेत्र में विद्यमान थे,लेकिन अंग्रेजी शासनकाल में इस ओर ध्यान नहीं दिया गया । 1864 में जेनकिन्सन ने अपने द्वारा किये जा रहे झाँसी के बन्दोबस्त के समय लिखा था कि कृषकों को सिंचाई की सुविधाओं के विकास के लिये सरकारी सहायता तथा ऋण प्रदान किये जाने चाहिए । उसने पहले से ही चले आ रहे तालाबों तथा नहरों की मरम्मत कराने के लिये भी सरकार का ध्यान आकृष्ट

1- जेनकिन्सन ई0 जी0, झाँसी सैटिलमेन्ट,इलाहाबाद 1871, पृष्ठ 71-72.

2- मैमायर्स आन बुन्देला, 21 मई 1825, पृष्ठ 274.

किया,ताकि कृषकों को राहत पहुँच सके । कर्नल डिक्सन ने भी राजपूताने में इसी तरह के प्रयास किये थे ।[1] जेनकिन्सन ने झाँसी जिले के तालाबों,झीलों आदि की सूची बनाते हुये यह आशा व्यक्त की थी इनका पुनर्निर्माण किया जाना चाहिए, लेकिन आश्चर्य का विषय है कि सरकार ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया ।

लगातार पड़ रहे अकालों से सरकार की निगाहें खुलीं। 1868-69 में सरकार को जेनकिन्सन की रिपोर्ट की उपयोगिता दिखाई पड़ी ।[2] अत:पुराने तालाबों तथा नहरों के पुन:निर्माण की ओर ध्यान दिया गया । यह उल्लेखनीय है कि वर्षा ऋतु में इस क्षेत्र में जो पानी बर्बाद हो रहा था उसी को इकट्ठा करके सिंचाई के लिये उपयोग किया जाता तो इससे सरकार को लगभग 4 लाख रूपये केवल पानी की बिक्री के रूप में ही प्राप्त होते । कर्नल स्मिथ ने इसी प्रकार का आंकलन किया था ।[3]

इन तमाम सुझावों के बावजूद भी बुन्देलखण्ड में सिंचाई का समुचित विकास नहीं किया जा सका । बेतवा नहर के निर्माण का सुझाव जो 1855 में दिया गया था उसकी योजना 1881 से पहले स्वीकृत नहीं हो सकी ।[4] इसी तरह बाँदा में भी

1- जेनकिन्सन ई0 जी0, झाँसी सेटिलमेन्ट रिपोर्ट,इलाहाबाद 1871, पृष्ठ 71-72.

2- पाठक एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ-80.

3- एटकिन्सन ई0टी0, बुन्देलखण्ड गजे0,पृष्ठ-243.

4- ड्रेक ब्रोकमैन डी0एल0, झाँसी गजे0,इलाहाबाद 1909,पृ 54.

केन नदी से एक नहर निकालने की योजना पर 1870 में विचार किया गया ।[1] इस योजना की रूपरेखा एक्जीक्यूटिव इंजीनियर रिचर्डसन ने इस उद्देश्य से की थी कि इस क्षेत्र में लगातार पड़ रहे अकालों से गाँवों को राहत पहुँचाई जा सके ।[2] चूँकि सरकार की नीति अधिक लागत वाली योजनाओं को क्रियान्वित न करने की थी अतः इस योजना को काट-छाँट के बाद काफी बाद में लागू किया गया और 1896-97 से पहले इसका कार्य प्रारम्भ नहीं हुआ ।[3] इस प्रकार सिंचाई सुविधाओं के अभाव के कारण बुन्देलखण्ड की कृषि व्यवस्था को गहरा आघात पहुँचा ।

सामाजिक, आर्थिक पिछड़ापन तथा अंग्रेजों के विरुद्ध घृणा की भावना:

1804 से लेकर 1947 तक ब्रिटिश शासनकाल में बुन्देलखण्ड सामाजिक तथा आर्थिक रूप से पिछड़ापन स्थिति का शिकार रहा। यहाँ के लघु उद्योग, धन्धों के विनाश से बेरोजगारी तथा गरीबी निरन्तर बढ़ती गई । कर्वी की सूती मिल तथा कालपी की सूती-मिल, परच की चुनरी, झाँसी का कालीन उद्योग, मऊरानीपुर का प्रसिद्ध कपड़ा वस्त्र उद्योग, हमीरपुर, जालौन आदि क्षेत्रों में भी फैला हुआ कपड़ा तथा नील उद्योग के विनाश से इस क्षेत्र का आर्थिक पिछड़ापन बना रहा । ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ की स्वतंत्रता-

---

1- ड्रेक ब्रोकमैन डी०एल०, बाँदा गजे०, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ-59.

2- वही.

3- वही.

प्रिय जनता से अंग्रेज शासक चिढ़े हुये थे। 1857 के विद्रोह में झाँसी की रानी, मर्दनसिंह, बाँदा के नवाब अलीबहादुर आदि नेताओं के नेतृत्व में बुन्देलखण्ड की जनता ने अंग्रेजों को गहरा आघात पहुँचाया था। यद्यपि 1857 के विद्रोह का दमन हो गया और 1858 में अंग्रेजों को इस क्षेत्र में शासन स्थापित करने में सफलता मिली, लेकिन अंग्रेज इस क्षेत्र की जनता से बदला लेने पर तुले हुये थे। वे जानते थे कि यहाँ की विद्रोही जनता को सजा देने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि बुन्देलखण्ड को आर्थिक रूप से पिछड़ा बनाये रखा जाये। यह नीति 1858 से जारी रही। राजस्व नीति की कठोरता ने अंग्रेजों को अपनी योजना के क्रियान्वयन में भरपूर मदद प्रदान की।

अंग्रेजी नीति का यह परिणाम निकला कि लोगों के दिमाग में दमन तथा अत्याचार की छाया निरन्तर बनी रही। परिणाम स्वरूप यहाँ के लोगों ने अंग्रेजी शासन से घृणा करना शुरू कर दिया। लोग अंग्रेजी शासन को अपने कष्ट का कारण समझते थे अतः लोग अंग्रेजों को कुत्ता कहकर पुकारने लगे। झाँसी में इलाहाबाद बैंक चौराहे के समीप स्थित झाँसी के तत्कालीन सुपरिन्टेन्डेन्ट मेजर एस0डब्ल्यू0 पिन्कने के स्मारक को आज भी लोग कुत्ते की टौरिया के नाम से पुकारते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि अन्य भी स्मारक जो कि अंग्रेज अधिकारी की यादगार से बनाया गया, उसे भी घृणा की दृष्टि से देखा जाता रहा। इस प्रकार बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासन के परिणाम स्वरूप यहाँ घृणा का वातावरण पैदा हुआ। बुन्देलखण्ड से बाहर के लोगों को लाकर बसाना शुरू किया गया। झाँसी छावनी में स्थित अनेकों

ठेकेदार बाहर से लाकर बसाये गये जो सेनाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति किया करते थे। यहाँ के लोग अंग्रेजी योजनाओं में भी सहयोग नहीं करते थे। यह उल्लेखनीय है कि लड़कियों की शिक्षा के लिये सरकार की ओर से जब स्कूल खोला गया तो थोड़े ही दिन बाद लड़कियों की संख्या कम होने से सरकार को स्कूल बन्द करना पड़ा।[1] यह इस बात का प्रमाण है कि लोक सरकार के किसी भी मामले में सहयोग देने के लिये तैयार नहीं थे। ऐसी परिस्थिति में अंग्रेजों के लिये यह आवश्यक हुआ कि इस क्षेत्र में एक वफादार प्रजा का निर्माण किया जाय और इस उद्देश्य से ईसाई धर्म प्रचारकों को आने के लिये प्रेरित किया गया, ताकि वे ईसाइयों के नाम पर वफादार हों। इसी पृष्ठ भूमि में बुन्देलखण्ड के पिछड़े क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों ने अपना कार्य शुरू किया जिन्हें सरकार की ओर से संरक्षण और सुविधाएं मिलीं। निःसन्देह इस धार्मिक वातावरण के लिये मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश शासन को स्थायित्व देना था।

1- पाठक एस० पी०, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ-153.

——:0:——

अध्याय तृतीय

बुन्देलखण्ड में ईसाइयत का प्रारम्भ -

बुन्देलखण्ड में व्याप्त गरीबी,बेरोजगारी तथा पिछड़ेपन का लाभ लेने के लिये ईसाई मिशनरियों ने इस क्षेत्र में अनेक संस्थाओं की स्थापना कर लोगों की सहायता करने के उद्देश्य से ईसाई धर्म का प्रचार करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया । ब्रिटिश सरकार भी यह भली भांति समझ चुकी थी कि ऐसे वातावरण में जबकि बुन्देलखण्ड की जनता पर किसी भी प्रकार विश्वास नहीं किया जा सकता था उस समय सरकार ने ईसाई मिशनरियों को इस क्षेत्र में कार्य करने का उत्तरदायित्व सौंपा,ताकि धर्म के नाम पर एक ऐसे वर्ग का निर्माण किया जा सके जो कि ब्रिटिश सरकार की नीतियों के समर्थक हों तथा अंग्रेजी शासक के प्रति वफादार हों । इस बात को बांदा के कलेक्टर मेन[1] ने भली भांति महसूस किया था । उसने यह देख लिया था कि 1857 के विद्रोह के समय इस क्षेत्र में ऐसे

1- ड्रेक ब्रोकमैन डी०एल०,बांदा गजे०,इलाहाबाद 1909, पृष्ठ-91.

लोगों का नितान्त अभाव था जिनकी वफादारी सरकार के प्रति होती ।

§1§ बांदा में बुन्देलखण्ड मिशन की स्थापना :

इस क्षेत्र में वफादार ब्रिटिश प्रजा के निर्माण के उद्देश्य से प्रेरित होकर कलेक्टर मेन ने 1870 में बांदा में बुन्देलखण्ड मिशन की स्थापना की[1] जिसमें मेन के अलावा इलाहाबाद के पादरी फेमन ने महत्वपूर्ण योगदान दिया ।[2] बुन्देलखण्ड मिशन प्रारम्भ में कानपुर मिशन का ही एक भाग था । 1872 में बांदा जिले में जे0आर0हिल ने इस मिशन का कार्य-भार देखना प्रारम्भ किया ।[3] बांदा के कलेक्टर मेन ने एक स्कूल की इमारत भी इस मिशन को सौंप दी जिसे चर्च के रूप में प्रयोग किया जाने लगा । यह मिशन प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय के लोगों का था । चूंकि प्रोटेस्टेंट इंग्लैण्ड का राज्य धर्म था इसलिये प्रारम्भ में प्रोटेस्टेंट मिशन को सरकारी अधिकारियों का प्रोत्साहन प्राप्त हुआ । धीरे-धीरे इस मिशन की शाखायें महोबा, अतर्रा,कर्वी आदि स्थानों पर खोल दी गयीं ।[4] इसमें एक उल्लेखनीय बात यह भी थी कि इसी मिशन ने बांदा में एक जनाना मिशन की भी स्थापना की गई थी जिसने लड़कियों के लिये दो स्कूल तथा स्त्रियों की चिकित्सा के लिये एक अस्पताल भी खोल दिया गया ।[5]

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0, बांदा गजे0,इलाहाबाद 1909,पृष्ठ-91·

2- वही·

3- वही·

4- वही·

5- वही·

(2) कर्वी में मिशन का प्रारम्भ :

कर्वी सब डिवीजन जो कि बाँदा जिले का सबसे पिछड़ा हुआ इलाका था, वहाँ भी एक चर्च का निर्माण किया गया और इस उद्देश्य से काफी जमीन खरीद ली गई । 1876 तक बुन्देलखण्ड मिशन का कार्य भार जे0आर0हिल भली भाँति चलाता रहा ।[1] इसी वर्ष उसकी सहायता के लिये कुछ अन्य पादरियों की नियुक्ति की गई ।[2] प्रोटेस्टेंट मिशन के अलावा अमेरिकन मैथडिस्ट मिशन ने भी बाँदा तथा कर्वी में कुछ केन्द्र स्थापित किये जिनमें बुन्देलखण्ड के ही लोगों को धर्म प्रचार के कार्य के लिये नियुक्त किया गया ।[3]

(3) जालौन जिले में मिशन की स्थापना :

जालौन जिले में ईसाइयत का प्रचार तथा प्रभाव इतना अधिक नहीं था जितना कि बाँदा तथा झाँसी जिलों में रहा, लेकिन जालौन जिले में भी यह संख्या निरन्तर बढ़ती रही । ड्रेक ब्रोक मैन ने 1909 में[4] यह विवरण दिया कि जालौन में ईसाई धर्म के अनुयाइयों की संख्या 94 है जिसमें 35 यूरोपीय तथा 59 जिले के लोगों में से ईसाई बनाये हुये लोग हैं । इस संख्या में 46 सदस्य प्रोटेस्टेंट, 21 लोग मैथडिस्ट, 11 प्रेस बिटेनियन, 3 सदस्य रोमन कैथोलिक तथा शेष अन्य के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती ।[5] 1909 तक इस जिले में किसी भी मिशन का स्थायी केन्द्र स्थापित नहीं हो सका था, लेकिन अमेरिका

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0, बाँदा गजे0, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ-91.
2- वही.
3- वही.
4- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0, जालौन गजे0, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 59-60.
5- वही.

के मैथडिस्ट मिशन के अनुयायी जालौन जिले के कौंच,उरई और माधौगढ़ स्थानों पर अपने धर्म के प्रचार का कार्य कर रहे थे ।[1] महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जालौन जिले में भी अन्य जिलों की भांति ईसाई समर्थकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई । प्राप्त आंकड़ों के अनुसार 1881 में यहाँ ईसाइयों की संख्या नगण्य थी । 1891 ई० की जनगणना के अनुसार 20 लोग इस धर्म के मानने वाले थे ।[2] आगे आने वाले वर्षों में इनकी वृद्धि होती चली गई । उरई में सत्र न्यायाधीश वाली इमारत में ही एक छोटा-सा चर्च है जहाँ पर झाँसी से पादरी आकर प्रार्थनाओं का आयोजन करते थे ।[3] ललितपुर तथा हमीरपुर जिलों की भी लगभग यही स्थिति रही । ब्रिटिश शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में बुन्देलखण्ड के जिलों में ईसाई मिशनरियों का कोई विशेष केन्द्र नहीं था,लेकिन धीरे-धीरे जैसे ही अंग्रेजी शासन विस्तृत होता चला गया और शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित होने लगी,वैसे-वैसे इस क्षेत्र में भी ईसाई मिशनरियों का प्रभुत्व बढ़ने लगा । इसके दूरगामी परिणाम भी निकले । उदाहरण के लिये ईसाई मिशनरियों के प्रचार एवं प्रसार से तथा कन्या-वध,सती प्रथा के बन्द करने से और विधवा पुनर्विवाह जैसे सामाजिक सुधारों के क्रियान्वित होने से

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी०एल०,जालौन गजे०,इलाहाबाद 1909,पृ० 59-60.

2- वही.

3- वही.

बुन्देलखण्ड की जनता की धार्मिक भावनाओं में ठेस पहुंचने लगी ।[1] इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि 1815 से 1823 के बीच बुन्देलखण्ड में सती होने के 66 सरकारी मामले दर्ज किये गये ।[2] 1847 में इस प्रथा पर रोक लगाने के लिये घोषणाएं जारी की गयीं ।[3]

निःसन्देह उपरोक्त गतिविधियों और सामाजिक सुधारों से इस क्षेत्र के लोगों की भावनाओं को ठेस लगी जो 1857 के विद्रोह का प्रमुख कारण बनी । ईसाई मिशनरियों से लोग इतनी घृणा करने लगे थे कि विद्रोह के समय हमीरपुर में एक ईसाई प्रचारक जरेन्यिा को उसके परिवार के सदस्यों के साथ कत्ल कर दिया गया ।[4] बाँदा में भी ईसाई मिशनरियों के प्रति लोगों में कम आक्रोश नहीं था । 1857 के विद्रोह के प्रारम्भ होने के बाद एक दिन पश्चात् ही बाँदा में मिशन स्कूल को लूट लिया गया ।[5] इस विद्यालय के प्रिंसिपल पाल खान को क्रान्तिकारियों ने पकड़ लिया तथा उसे इस्लाम धर्म स्वीकार करने के बाद ही छोड़ा गया ।[6] ठीक इसी प्रकार बाँदा स्थित चर्च की इमारत को न केवल नुकसान पहुंचाया गया बल्कि उसकी छत को भी तोड़ दिया गया ।[7]

1- सिन्हा एस0एन0, द रिवोल्ट आफ 1857 इन बुन्देलखण्ड, जिल्द-प्रथम, 1982, पृष्ठ-62.
2- वही.
3- एचीन्सन सी0यू0, ट्रीटीज इन्गेजमेन्ट्स एण्ड सनद, भाग-3, पृ0 229.
4- सिन्हा एस0एन0, द रिवोल्ट आफ 1857 इन बुन्देलखण्ड, जिल्द-प्रथम, 1982, पृष्ठ-62.
5- वही.
6- फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन, 31 जुलाई 1857, कन्सल्टेशन नम्बर 182.
7- सिन्हा एस0एन0, द रिवोल्ट आफ 1857 इन बुन्देलखण्ड जिल्द-प्रथम, 1982, पृष्ठ-62.

§4§ बुन्देलखण्ड के लोगों में मिशनरियों की गतिविधियों के प्रति उत्पन्न प्रतिक्रिया :

ईसाई धर्म के प्रचार से बुन्देलखण्ड की जनता में इस भावना को बल मिला कि ब्रिटिश सरकार लोगों को जबरदस्ती ईसाई बनाना चाहती है । 1781 में हाउस आफ कामन्स की कमेटी ने सर्वसम्मति प्रस्ताव पारित किया था कि यदि भारतीयों के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप किया जायेगा तो इससे ब्रिटिश सत्ता का पूर्ण विनाश हो जायेगा![1] लेकिन 1813 में कम्पनी के चार्टर को पुनःजारी करते हुए ऐसा मत व्यक्त किया गया जो ईसाई धर्म के प्रचारकों के पक्ष में था । इसके अनुसार कम्पनी के बोर्ड को यह सर्वोच्च अधिकार दे दिया गया कि भारत में ईसाई मिशनरियों को भेजने के लिये वह लाइसेन्स §प्रमाणपत्र§ प्रदान करें । इसके साथ ही यह भी व्यवस्था कर दी गई कि कलकत्ता में पादरी की नियुक्ति कर दी जाय । इस प्रकार उसी समय से हिंदुस्तान में ईसाई धर्म प्रचारकों का तेजी से आना प्रारम्भ हुआ जिससे प्रचार कार्य में तेजी आई ।[2]

ईसाई मिशनरी अपने धर्म-प्रचार को सार्वजनिक स्थानों पर अपने भाषण देकर प्रारम्भ किया करते थे जहाँ वे अपने धर्म की शिक्षाओं को प्रचारित तो करते ही थे साथ ही साथ वे अन्य धर्मों के सिद्धान्तों की आलोचना और हँसी उड़ाया करते थे ।[3] चूंकि ये ईसाई मिशनरी ब्रिटिश

1- कैम्ब्रीज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-6, पृष्ठ-124.
2- सिन्हा एस0एन0, द रिवोल्ट आफ 1857 इन बुन्देलखण्ड, पृ0-40.
3- वही.

सरकार द्वारा सहायता प्राप्त होते थे तथा उन्हें पुलिस का संरक्षण प्राप्त होता था अत:भारतीय उन्हें सरकार का पिट्ठू समझा करते थे । सर सैयद अहमद खान ने लिखा है कि लोगों में यह आम धारणा बन गई थी कि ईसाई धर्म प्रचारक सरकार द्वारा नियुक्त तथा पोषित होते थे ।[1] अपने स्कूल तथा पाठशालाओं में भी केवल शिक्षण का ही कार्य नहीं करते थे,बल्कि वहाँ भी प्रचार कार्य किया करते थे । ईसाई मिशनरियों द्वारा अपने स्कूलों में जो शिक्षा दी जाती थी उसमें ईसाई धर्म से सम्बन्धित विषय भी पढ़ाया जाता था । इस सम्बन्ध में कलकत्ता के एक पादरी द्वारा जारी किया गया प्रपत्र भी उल्लेखनीय है जिसमें यह कहा गया था कि सभी लोगों को ईसाई मत स्वीकार कर लेना चाहिये ।[2]

अंग्रेजी सैनिक छावनियों में भी ईसाई मत का प्रचार किया जाता था जिससे अंग्रेजी सेना में कार्यरत् हिन्दू तथा मुस्लिम सैनिकों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँची । अत:ये देशी सैनिक सरकार के इरादों पर सन्देह करने लगे थे । बैरकपुर के कमाण्डिंग आफीसर कर्नल व्हीलर तो अपने सैनिकों में ईसाई धर्म से सम्बन्धित पत्रिकाएं तथा प्रचार-सामग्री वितरित किया करता था ।[3] उसने अत्यन्त साहस का परिचय देते हुये अपनी सेना के जनरल को एक पत्र में लिख दिया था यदि मुझसे यह पूछा जाय कि मैंने सैनिकों को ईसाई मत में दीक्षित करने का प्रयास किया है,तो मैं अत्यन्त विनम्रतापूर्वक जवाब

1- सिन्हा एस०एन०,द रिवोल्ट आफ 1857 इन बुन्देलखण्ड,पृष्ठ-40.

2- वही.

3- वही.

दूँगा कि यह तो मेरा उद्देश्य ही है ।[1] इस प्रतिक्रिया को व्यक्त करते हुये लन्दन टाइम्स ने लिखा था कि "इस व्यक्ति के शरारतपूर्ण साहस ने ब्रिटिश साम्राज्य के लिये कितना नुकसान किया है उसका अनुमान हम 1857 के विद्रोह से लगा सकते हैं[2]" कर्नल व्हीलर जैसे अनेकों अंग्रेज सैनिक अधिकारियों ने देशी सैनिकों के सन्देह को बढ़ाने में काफी मदद की थी । निःसन्देह अंग्रेजी सैनिक छावनियों में वहाँ के बड़े अधिकारी ईसाईयत का प्रचार करने के लिये जो प्रयास कर रहे थे उससे सेना में असन्तोष भड़का । बुन्देलखण्ड में स्थित सैनिक छावनियों में भी इसी प्रकार की व्यवस्था जारी रही जिससे यहाँ विद्रोह के भड़कने में सफलता मिली ।

1858 में शान्ति व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद ईसाई धर्म के प्रचार तथा प्रसार में काफी तेजी आई । यद्यपि महारानी विक्टोरिया ने 1858 में अपने घोषणा-पत्र में यह कहा था कि भारतीयों के धार्मिक विश्वासों तथा रीति-रिवाजों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा और न ही किसी के ऊपर ईसाई मत थोपा जायेगा, किन्तु यह घोषणा-पत्र मात्र एक दिखावा था और इसमें कही हुई बातों को कभी भी लागू नहीं किया गया । परिणाम स्वरूप ईसाई मिशनरियों ने भारत में लोगों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने के कार्य को काफी तेजी से चलाया और बुन्देलखण्ड के जिलों में भी यह प्रचार तथा प्रसार तेजी से होने लगा ।

1- सिन्हा एस0एन0, द रिवोल्ट आफ 1857 इन बुन्देलखण्ड, पृष्ठ-40.

2- वही.

इलाहाबाद डायोसिस :

इलाहाबाद कैथोलिक डायोसिस का कार्य तिब्बत तथा नेपाल के इसाई मिशनरियों के कार्य से ही सम्बद्ध था ।[1] 1703 में इटली के कम्यूवी मिशनरियों ने तिब्बत में धर्म प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया था । 1704 में इनमें से 6 पादरी तिब्बत की राजधानी लासा पहुँचे[2] जून 1707 में । इन्हीं में से कुछ मिशनरियों ने पटना में मिशन की स्थापना की ।[3] इलाहाबाद डायोसिस प्रारम्भ में पटना के मिशनरियों के ही अधीन थी । पटना से ही इन मिशनरियों ने चारों ओर धर्म प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया ।[4] एक सितम्बर 1886 को कैथोलिक, डायोसिस इलाहाबाद का गठन पटना के ही कैथोलिक मिशनरियों ने किया ।[5] इसी वर्ष इलाहाबाद को मिशनरी कार्य के लिये नई राजधानी के रूप में परिवर्तित किया गया । इस डायोसिस के पहले पादरी डाक्टर फ्रांसिस पेपशी थे ।[6]

इलाहाबाद डायोसिस की स्थापना हो जाने के बाद इसका कार्य क्षेत्र तथा संगठन धीरे-धीरे मजबूत होता गया । इसाई मिशनरियों से यह आशा की जाती थी कि वे अधिक से अधिक संख्या में भारतीयों

1- हिस्टारिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस, द डायोसियन कमेटी, इलाहाबाद 1940, अध्याय प्रथम•
2- वही•
3- वही• अध्याय द्वितीय•
4- वही•
5- वही• पृष्ठ-15
6- वही•

को ईसाई मत की शिक्षा देंगे ।[1] प्रत्येक रविवार के दिन विशाल प्रार्थना सभा आयोजित की जाती थी तथा मिशनरियों द्वारा चलाये जा रहे स्कूलों में ईसाई धर्म से सम्बन्धित विषयों के पठन-पाठन पर जोर दिया जाता था । चूंकि सेना में कार्यरत् अंग्रेज अधिकारी धर्म प्रचार का कार्य नहीं कर सकते थे । अत:उनके लिये यह व्यवस्था कर दी गई थी कि वे किसी हिन्दुस्तानी ईसाई को रखकर ईसाई धर्म के प्रचार का कार्य करें । मिशनरियों को विभिन्न रोगों की साधारण जानकारी भी दी जाती थी तथा उनको सम्बन्धित दवाइयों को गरीबों तथा असहाय लोगों को वितरित कराई जाती थी, ताकि इस कमजोर वर्ग को आसानी से इस मत की ओर आकृष्ट किया जा सके ।[2]

झाँसी सम्भाग चूंकि इलाहाबाद डायोसिस के अन्तर्गत् था अत: यहाँ के क्रिया-कलाप भी इलाहाबाद के मिशनरियों द्वारा नियन्त्रित किये जाते थे । 1886-87 तथा 1889-90 के बीच प्राप्त निम्नांकित आँकड़ों से हम इलाहाबाद कैथोलिक डायोसिस में कार्यरत् पादरी तथा अन्य पादरियों के बारे में आसानी से जानकारी कर सकते हैं । *

	स्थायी धर्माधिकारी	कम्युचियन ब्रदर्स	भिक्षुणियाँ	कैथोलिक	ईसाई धर्म में दीक्षित	चर्च	स्कूल	कालेज	अनाथालय	
1885-86	22	2	106	9295	50	24	21	1	3	-
1886-87	20	1	106	9295	72	29	23	1	6	237
1889-90	22	4	69	8353	144	29	21	2	8	334

*हिस्टारिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस, पब्लिस्ड बाई डायोसिस कमेटी इलाहाबाद 1940, पृष्ठ-19.

1-वही.
2- वही.

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि इलाहाबाद की डायोसिस में स्थायी धर्माधिकारी की संख्या 1885 ई० में 22, 1886 में 20, तथा 1889 में पुन:22 हो गई । ऐसा प्रतीत होता है कि दो धर्माधिकारी या तो बाहर चले गये थे अथवा 1886 के आसपास किन्हीं कारणों से उनका पद रिक्त हो गया था । 1889 तक आते-आते पुन: यह संख्या 22 हो गई । दूसरी महत्वपूर्ण बात कम्यूनियन ब्रदर्स की संख्या के रूप में देखी जा सकती है जो प्रारम्भ में 2 थी, किन्तु 1889 में 4 हो गई । यह प्रमाणित करता है कि कम्यूनियन मिशनरियों की संख्या इलाहाबाद डायोसिस में निरन्तर बढ़ रही थी । तीसरी महत्वपूर्ण बात मिशनरी भिक्षुणियों के रूप में थी जिनकी संख्या 1885 से 1886-87 तक 106 रही, किन्तु अचानक 1889 में 79 हो गई । ऐसा प्रतीत होता है कि इन भिक्षुणियों को किसी और डायोसिस में भेज दिया गया था । चर्चों की स्थिति की समीक्षा करने से यह ज्ञात होता है कि 1885 में इस डायोसिस में कुल 24 चर्च थे, किन्तु 1886 में यह संख्या 89 हो गई । निःसन्देह इस डायोसिस में ईसाई मिशनरियों के बढ़ते हुये प्रभाव की ओर संकेत देता है । 1885 से 1889 के बीच मिशनरियों द्वारा चलाये जा रहे स्कूलों की स्थिति लगभग यथावत रही । 1885 में इनकी संख्या 21 थी, किन्तु 1886 में 23 हो गई । 1889 तक आते-आते यह पुन:21 हो गई । सम्भवत:2 स्कूलों को किन्हीं कारणों से बन्द कर दिया गया था । अनाथालय जो 1885 में 3 थे, वे 1889 तक बढ़कर 8 हो गये । ऐसा लगता है कि अनाथ बच्चों की देख-रेख के लिये मिशनरियों ने विशेष ध्यान दिया, ताकि उन्हें ईसाई धर्म में

परिवर्तित किया जा सके । इसीलिये यह संख्या बढ़ गई होगी । नि:सन्देह यह चार्ट इलाहाबाद डायोसिस में केवल ईसाईयों के क्रमश: बढ़ते हुये प्रभाव तथा संगठन को सूचित करता है ।

1891 से 1940 के बीच 50 वर्षों में इलाहाबाद की डायोसिस ने अनेकों महत्वपूर्ण कार्य किये । इनमें से सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह था कि कम्यूचियन मिशनरियों ने इस डायोसिस मिशनरियों के अन्तर्गत् अनेकों चर्च, स्कूल तथा धार्मिक संस्थाओं का निर्माण किया । झाँसी तथा बुन्देलखण्ड के क्षेत्र भी चूंकि इलाहाबाद डायोसिस के अंग थे इसलिये इन मिशनरियों ने यहाँ भी कई चर्च तथा प्रार्थना-गृहों के निर्माण कराये । 1892 में झाँसी के प्रसिद्ध सैक्रेड हार्ट[1] चर्च का निर्माण हुआ जो कम्यूचियन मिशनरियों की देन थी । सेन्ट एन्थनी[2] चर्च झाँसी का निर्माण भी 1927 में इन्हीं मिशनरियों द्वारा कराया गया । 1930 में मानिकपुर में भी सैक्रेड हार्ट[3] चर्च का निर्माण हुआ । इस प्रकार धीरे-धीरे बुन्देलखण्ड में भी अनेकों चर्च तथा ईसाई धर्म स्थानों की स्थापना होती गई।

झाँसी प्रीफैक्चर का गठन और विकास :

1940 में इलाहाबाद डायोसिस के एक आदेश से जहाँ अनेकों ईसाई मिशनरियों के केन्द्रों का निर्माण कराया गया, वहीं झाँसी प्रीफैक्चर का गठन भी इसी आदेश से हुआ । सर्वप्रथम पटना में आये कम्यूचियन पादरियों ने धर्म प्रचार की दृष्टि से झाँसी की यात्रा की थी । अंग्रेजी छावनियों में यह कार्य आसानी से हो सकता था, क्योंकि

1- हिस्टारिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस पब्लिश्ड बाई डायोसिस कमेटी इलाहाबाद 1940, पृष्ठ 21-22.
2- वही.
3- वही.

अंग्रेज अधिकारी ईसाई धर्म के ही समर्थक थे । चूंकि झांसी छावनी का क्षेत्र भी काफी विकसित था अतः कैथोलिक मिशनरियों ने इसे अपने कार्य का क्षेत्र बनाना चाहा । यहाँ का सबसे पुराना चर्च 1928 का सेक्रेड हार्ट चर्च था जो झांसी छावनी में स्थित था ।[1] इसके अतिरिक्त झांसी रेलवे का बड़ा स्टेशन रहा है, चूंकि अधिकांश ईसाई रेलवे और सेना में कार्यरत् थे । अतः इस दृष्टि से भी झांसी क्षेत्र मिशनरी कार्य के लिये अधिक उपयुक्त था । सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि बुन्देलखण्ड के जिले सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़े हुये थे।[2] लोग गरीबी और भुखमरी के शिकार थे, जिस स्थिति का लाभ लेकर यहाँ के लोगों को आसानी से ईसाई धर्म में परिवर्तित किया जा सकता था ।

उपरोक्त कारणों से मिशनरियों ने इसे अपने कार्य का क्षेत्र बनाया । झांसी सम्भाग के इन्चार्ज फादर फ्रांसिस ने 20 दिसम्बर, 1893 को रोम के धर्माध्यक्ष को सूचित करते हुये लिखा था कि 1893 में झांसी में कैथोलिक धर्म के मानने वालों की संख्या कुल 450 थी जिसमें 100 सैनिक, 100 यूरोपियन, 100 भारतीय तथा 150 एंग्लोइण्डियन थे ।[3] इससे 3 वर्ष पूर्व पादरी पेशी ने यहाँ धर्माध्यक्ष के निवास के लिये एक सुन्दर तथा विस्तृत बंगला बनवाया जो कि उपरोक्त चर्च से लगभग एक मील दूर था ।[4] 1915 से 1917 के बीच कैथोलिक समर्थकों की संख्या

1- हिस्टारिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस, पृष्ठ-110.
2- वही.
3- वही.
4- वही.

में काफी वृद्धि हुई । इनमें से लगभग 600 कैथोलिक झाँसी रेलवे में ही कार्यरत् थे ।[1] इनकी बढ़ती हुई संख्या को देखकर यह आवश्यकता महसूस की जाने लगी कि झाँसी छावनी में स्थित चर्च काफी छोटा है जिसमें केवल 250 से अधिक व्यक्ति एक साथ प्रार्थना नहीं कर सकते । इसके अलावा रेलवे क्षेत्र में निवास करने वाले कैथोलिकों के उपासना के लिये भी दूर पड़ता था । अत:1917 में यह प्रस्तावित किया गया कि रेलवे कालोनी में एक चर्च बनाया जाय । मार्च 1928 की एक बुलेटिन से यह ज्ञात होता है कि 1909 में ही पादर आलमिडा ने रेलवे कालोनी में गुड़िया फाटक नामक स्थान पर चर्च का निर्माण करने के लिये चन्दे वसूल करना प्रारम्भ कर दिये थे ।[2] बाद में चलकर यह महसूस किया गया कि गुड़िया फाटक के समीप इसाई धर्मावलम्बियों की संख्या काफी बढ़ रही है,साथ ही रेलवे लाइन के आस-पास रहने वाले लोगों को धार्मिक उपासना की आवश्यकता थी। अत:सैन्ट एन्थनी चर्च का निर्माण कराया गया ।[3] इस नये चर्च का उद्घाटन 12 फरवरी 1928 को डा0एन्जेलो पोली ने किया ।[4] इस चर्च के निर्माण में कुल 42,823 रूपया खर्च हुआ[5] जिसमें 12,000 रूपया जी0 आई0पी0 रेलवे ने तथा 25823 रूपया कैथोलिक समर्थकों ने दिया ।[6]

1- हिस्टारिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस पब्लिस्ड बाई डायोसिन कमेटी इलाहाबाद 1940,पृष्ठ 110·

2- वही· पृष्ठ 112·

3- वही·

4- वही·

5- वही·

6- वही·

1932 में माल्टा के कम्पूचोन मिशनरियों ने झाँसी तथा आस-पास के क्षेत्रों का ईसाई मत के प्रचार तथा प्रसार का कार्य अपने हाथ में लिया । तभी से लेकर इन मिशनरियों ने कैथोलिक धर्म के विकास तथा धर्म प्रचार में अधिक अभिरूचि दिखाई ।

बाँदा जिले में कैथोलिक मिशन की स्थापना और विकास :

बाँदा जिला भी कैथोलिक डायोसिस के अन्तर्गत् था जिसे बाद में झाँसी डायोसिस के अन्तर्गत् हस्तान्तरित कर दिया गया । यहाँ कैथोलिक धर्म प्रचार का कार्य झाँसी की भांति माल्टा के मिशनरियों ने किया । फादर एण्ड्रयू[1] ने बाँदा के बारे में लिखा है कि 1929 में माल्टा के फादर ल्यू[2] जो इलाहाबाद मिशन में पादरी थे, वे कई बार बाँदा गये । उनकी यात्रा का उद्देश्य बाँदा के प्रशासक से मिलकर उन सम्भावनाओं का पता लगाना था, ताकि बाँदा में लड़कियों की शिक्षा के लिये एक मिशन स्कूल की स्थापना की जा सके, लेकिन इसमें सफलता नहीं मिली । यह उल्लेखनीय है कि बाँदा में प्रोटेस्टैण्ट चर्च पहले से ही स्थापित हो चुका था । 1938 में ल्यू ने प्रोटेस्टैण्ट चर्च के इंग्लैण्ड स्थित उच्च अधिकारी से बाँदा स्थित उनके चर्च तथा जमीन को खरीदने के लिये बातचीत प्रारम्भ किया,[3] लेकिन प्रोटेस्टैण्ट मिशन की आधी जमीन वहीं के किसी एक वकील ने खरीदली । इसके बावजूद भी

1- हिस्टारिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस पब्लिश्ड बाई डायोसिस कमेटी इलाहाबाद 1940, पृष्ठ 115.

2- वही. पृष्ठ 115.

3- वही. पृष्ठ 115.

कैथोलिक पादरी और मिशनरी अपने प्रयासों को आगे बढ़ाते रहे । 1939 के नवम्बर माह में माल्टा के फादर फ्रांसिस जेवियर ने इलाहाबाद डायोसिस का कार्य-भार ग्रहण किया और उन्होंने फादर एण्ड्रयू को बांदा में कैथोलिक मिशन खोलने का कार्य सौंपा । उसी महीने में एण्ड्रयू ने बांदा में प्रोटेस्टेण्ट चर्च के स्कूल तथा प्रार्थना-गृहों को किराये पर ले लिया । 25 जनवरी 1940 को पहली बार फादर एण्ड्रयू ने यहाँ के सार्वजनिक प्रार्थना में भाग लिया ।[1] धीरे-धीरे कैथोलिक चर्च तथा उसके समर्थक बांदा में संगठित होकर धर्म का प्रचार करने लगे ।

कुशोपुरा में कैथोलिक मिशनरियों की गतिविधियाँ :

कुशोपुरा झाँसी के उत्तर-पश्चिम में स्थित कैथलिक मिशन का एक नया स्टेशन था । यहाँ की अधिकांश जनसंख्या गरीब तथा निचली जाति के होने के कारण कैथोलिक मिशनरियों ने उन्हें इसाई धर्म में परिवर्तित करने के लिये सुनहरा अवसर समझकर वहाँ मिशन के यूनिट की स्थापना की ।[2] कुशोपुरा में प्रेस ब्रिटेरियन मिशन के सहयोग से मिशनरी गतिविधियाँ आगे बढ़ी । बाद में इन लोगों ने कैथोलिक धर्म को स्वीकार कर लिया था । परिणाम स्वरूप अनेकों अन्य प्रोटेस्टेण्ट ने भी कैथोलिक धर्म को स्वीकार कर लिया । इस प्रकार कैथोलिकों ने न केवल गैर इसाईयों को इसाई बनाया, बल्कि अनेकों प्रोटेस्टेण्ट लोगों को भी इसाई धर्म में दीक्षित किया ।[3]

1- हिस्टारिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस पब्लिस्ड बाई डायोसिस कमेटी इलाहाबाद 1940, पृष्ठ-115.

2- वही. पृष्ठ 115-116.

3- वही.

इन मिशनरियों ने कुशीपुरा में प्रेम-सभा का आयोजन किया जिसके अन्तर्गत् धार्मिक,मंत्र तथा धार्मिक गीत गाये जाते थे । कुशीपुरा में कैथोलिकों की बढ़ती हुई संख्या को देखकर वहाँ पूजा-गृह हेतु किराये का एक भवन प्राप्त कर लिया गया जहाँ से धर्म-प्रचार का कार्य होने लगा ।[1] कैथोलिक धर्म प्रचार का यह आन्दोलन झाँसी जिले में तेजी से बढ़ने लगा । फलत:सीपरी बाजार तथा गड़िया फाटक जैसे इलाकों में जो प्रोटेस्टेण्ट लोग निवास कर रहे थे उन्होंने कैथोलिक धर्म स्वीकार कर लिया । ये ऐसे क्षेत्र थे जो सामाजिक,आर्थिक रूप में काफी पिछड़े हुए थे । गरीबी व अशिक्षा का बोलबाला होने के कारण ईसाई मिशनरियों ने यहाँ के लोगों को शिक्षा,चिकित्सा या रोजगार जैसी सुविधाएं देकर उन्हें सफलतापूर्वक अपने धर्म में दीक्षित कर लिया । कुशीपुरा जो मौलिक रूप से एक हिन्दू बस्ती थी,किन्तु यहाँ निम्न जाति के लोग निवास करते थे वहाँ शीघ्र ही धर्म परिवर्तित करने वाले लोगों की संख्या 70 हो गई[2] जिन्होंने कैथोलिक धर्म स्वीकार कर लिया ।

महोबा,मानिकपुर तथा उरई में कैथोलिक मिशनरियों के कार्य :

बुन्देलखण्ड में कैथोलिक धर्म-प्रचार का कार्य इलाहाबाद डायोसिस के माल्टा के पादरियों द्वारा किया गया । इसी क्रम में बम्बई के एक पादरी पायस को 1939 में जनवरी माह में महोबा भेजा

1- हिस्टारिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस पब्लिस्ड बाई डायोसिस कमेटी इलाहाबाद 1940,पृष्ठ 115.

2- वही.

गया ।[1] उसने महोबा में निवास कर रहे 23 कैथोलिक धर्मावलम्बियों की सूची बनाई तथा यह भी उल्लेख किया कि वहाँ अनेकों की संख्या में प्रोटेस्टेण्ट धर्मावलम्बी हैं जो कैथोलिक धर्म स्वीकार करना चाहते हैं ।[2] इसलिये फादर फ्रांसिस ने माल्टा के फादर पायस को महोबा भेजा जिसने रेलवे स्टेशन के पास एक भवन किराये पर ले लिया । एक साल के ही अन्तर्गत् उसके प्रयासों से कैथलिकों की संख्या 52 हो गई ।[3] महोबा के बारे में कैथोलिकों का यह विश्वास था कि यहाँ धर्म-प्रचार अधिकांश प्रोटेस्टेण्ट के बल पर ही हो सकेगा और उन्हीं को परिवर्तित करके कैथोलिक धर्म की शिक्षा दी जा सकती है । ऐसा प्रतीत होता है कि 1939-40 तक आते-आते भारतीयों में जनचेतना व्याप्त हो चुकी थी और वे अब ईसाई मिशनरियों के लालच में नहीं आना चाहते थे । यही कारण था कि कैथोलिक पादरियों ने महोबा में प्रोटेस्टेण्ट धर्मावलम्बियों को ही कैथोलिक धर्म में परिवर्तित किया ।

धीरे-धीरे कैथोलिकों ने महोबा में 8 एकड़ जमीन को एक भवन के निर्माण के लिये सरकार से खरीद लिया ।[4]

मानिकपुर, बाँदा जिले के दक्षिण-पश्चिम में स्थित स्टेशन रहा है । अधिकांश जंगली इलाका तथा उबड़-खाबड़ क्षेत्र होने के कारण यह आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ था । साथ ही मानिकपुर के जंगलों में बसे गाँवों में असभ्य तथा अशिक्षित जातियाँ निवास करती थीं अतः ईसाई

1- हिस्टारिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस पब्लिश्ड बाई डायोसिस कमेटी इलाहाबाद 1940, पृष्ठ 116-117.
2- वही.
3- वही.
4- वही.

मिशनरी ने मानिकपुर को केन्द्र बनाकर यहाँ के गाँवों में बसी हुई पिछड़ी जाति की जनता का धर्म परिवर्तित करना चाहते थे । यहाँ भी माल्टा के ही मिशनरियों ने अपनी गतिविधियाँ प्रारम्भ कीं । इनमें फादर ल्यो, फादर एण्ड्रयू आदि[1] प्रमुख रूप से सक्रिय थे । मानिकपुर के पिछड़े हुये क्षेत्रों में बीमार तथा गरीब लोगों की चिकित्सा और सेवा के द्वारा कैथोलिक धर्म के प्रचार में पादरी काफी सफल होते गये । प्रारम्भ में वहाँ प्रोटेस्टेण्ट धर्म के ही मानने वाले लोग थे जो कैथोलिकों के प्रचार से चिन्तित हुये । जब कैथोलिक मिशन के लिये वहाँ जमीन खरीदी जाने लगी उस समय वहाँ के प्रोटेस्टेण्ट लोगों ने इसका विरोध किया, किन्तु अपने उद्देश्य की पूर्ति में लगातार जुटे रहने के कारण अन्ततः कैथोलिकों को सफलता मिली और 25 दिसम्बर 1930 को फादर एण्ड्रयू ने वहाँ के लोगों की सार्वजनिक प्रार्थना में हिस्सा लिया ।[2] मानिकपुर में धर्माधिकारी के निवास के लिये जो जमीन खरीदी गई उसकी कीमत-4600 रु० थी जिसे माल्टा के मिशनरियों ने ही दिया था ।[3] उरई, जालौन जिले का मुख्यालय रहा है जहाँ कैथोलिक मिशन के प्रारम्भ करने का कार्य फादर जार्ज ने किया । यहाँ भी माल्टा के ही पादरियों ने कार्य प्रारम्भ किया । 21 जनवरी 1940 को कैथोलिक मिशन का प्रारम्भ उरई में हुआ ।[4]

1- हिस्टारिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस पब्लिस्ड बाई डायोसिस कमेटी इलाहाबाद 1940, पृष्ठ 116-117.

2- वही. पृष्ठ 118-119.

3- वही.

4- वही.

उपरोक्त केन्द्रों के अलावा पकड़ीपुर से लगभग 8 मील पूर्व की ओर स्थित क्षेत्र में ईसाई मिशन की स्थापना और विकास का कार्य माल्टा के ही कैथोलिकों ने किया । मार्च 1931 तक पकड़ीपुर जंगली इलाका था जहाँ जंगली भालू तथा खूँखार जानवर रहते थे ।[1] 8 अप्रैल 1931 को फादर एण्ड्रयू और एन्थनी ने 5 कैथलिक साथियों के साथ जाकर वहाँ के मिशन के कार्य का प्रारम्भ करना चाहा ।[2] चूंकि वहाँ पर रहने के लिये कोई मकान नहीं था अत: इन लोगों ने फारेस्ट आफीसर के मकान के बरामदें में निवास किया । कुछ दिन बाद इन मिशनरियों ने यहाँ टेन्ट लगाकर झोपड़ी बनाई । दो महीने बाद फादर एण्ड्रयू ने यहाँ निवास कर रहे 4 ब्राम्हणों को ईसाई बना लिया ।[3] और पकड़ीपुर मिशन की स्थापना की । इन मिशनरियों के प्रयासों से यहाँ जून 1932 में एक विशाल भवन तैयार हुआ ।[4] 1936 में धर्माधिकारी के निवास पर फोन लगा दिया गया । 9 वर्षों के समय में ही इस गाँव के कुल 200 लोगों में एक तिहाई लोगों को कैथोलिक बना लिया गया ।[5] धीरे-धीरे कैथोलिक मिशनरियों ने यहाँ काफी जमीन भी खरीद ली ।

बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों में कैथोलिक मिशनों की स्थापना व संगठन:

जिस प्रकार इलाहाबाद कैथोलिक डायोसिस से अलग झाँसी प्रिफैक्चर का (1932) गठन किया गया था ठीक उसी प्रकार जबलपुर

1- हिस्टारिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस पब्लिश्ड बाई डायोसिस कमेटी इलाहाबाद 1940, पृष्ठ 116-117.
2- वही.
3- वही.
4- वही.
5- वही.

प्रीफैक्चर की स्थापना भी 1932 में इलाहाबाद डायोसिस द्वारा कर दी गई। बुन्देलखण्ड के बीना, नौगांव तथा सागर के क्षेत्र भी कैथोलिक मिशन के जबलपुर प्रीफैक्चर में आते थे।[1] 25 मार्च 1920 को बीना में डा०एन्जलो पौली ने सीक्रेट हार्ट चर्च का उद्घाटन किया।[2] वास्तव में दमोह मिशन में कार्यरत माल्टा के कैथोलिक मिशनरी 1926 में इलाहाबाद डायोसिस में वापस आ गये थे। अतः उन्हीं मिशनरियों को बीना में कार्य करने के लिये अधिकृत किया गया।

नौगांव, छतरपुर जिले में छतरपुर रियासत के अन्तर्गत प्रारम्भ से ही एक सैनिक छावनी थी। कैथोलिक मिशनरियों ने 1860 ई० से ही इस क्षेत्र का दौरा करना प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु स्थायी रूप से यहाँ उनका आवास नहीं बन सका था फिर भी समय-समय पर यह मिशनरी कुछ समय के लिये यहाँ निवास करते थे। सैनिकों के बैरिक में प्रार्थनाएं आयोजित की जाती थीं। बाद में एक धनाढ्य कैथोलिक ने अपने किसी निकट के सम्बन्धी के मृत्यु के सम्मान में एक स्मारक बनवाया जिसे कैथोलिक मिशनरियों को दे दिया गया। 1894 ई० तक वहाँ आने वाले मिशनरियों के लिये रहने के लिये कोई आवास नहीं था। इस संदर्भ में फादर बार्थलोम ने लिखा है -
"2 दिसम्बर 1894 को जब मैं नौगांव पहुँचा उस समय मुझे रहने के

1- हिस्टारिकल स्कैच आफ द इलाहाबाद डायोसिस पब्लिस्ड बाई डायोसिस कमेटी इलाहाबाद 1940, पृष्ठ 63-64.

2- वही.

लिये वहाँ कोई मकान नहीं मिला और एक दिन वहाँ के डाक बंगले में रुकने के पश्चात् मैने एक माली के कमरे में अपना निवास बनाने का निश्चय किया । यह कमरा कीचड़, मिट्टी तथा छप्पर का बना हुआ था तथा इतना खराब था कि रात्रि में मैं तारों की ओर भी नहीं देख सकता था और दिन के समय सूर्य के प्रकाश में रहा भी नहीं हो सकती थी । 10 दिन पश्चात् मेरा वहाँ रहना असम्भव प्रतीत होने लगा अत: कुछ सैनिक अधिकारियों ने मुख्य सेनानायक से कुछ जमीन मुझे निवास स्थान बनाने के लिये दिलाने का प्रयास किया गया । मेरा धार्मिक कार्य सैनिक लोगों तक ही सीमित था, क्योंकि नौगाँव छावनी में उन दिनों बहुत कम भारतीय थे । लेकिन चार महीने के मेरा निवास के आधार पर मुझे यह अनुभव प्राप्त हुआ कि यदि मिशनरियों को पर्याप्त सुविधा दे दी जाय तो वे वहाँ के आसपास के क्षेत्रों में अनाथालय आदि बनाकर ईसाई धर्म के समर्थकों की संख्या में काफी वृद्धि कर सकते हैं ।[1] 1906 तक नौगाँव में 68 कैथोलिक धर्म के मानने वाले लोग थे जिसमें 6 स्थानीय लोग थे । बाद वाले समय में कैथोलिक मिशनरियों ने वहाँ अपने कार्य-कलाप में तेजी दिखाई । स्कूल, अस्पताल, चिकित्सा आदि साधनों द्वारा नौगाँव तथा आसपास के क्षेत्रों में बसी हुई गरीब जनता की सेवा आदि करके उन्हें ईसाई बना लिया ।

सागर भी जबलपुर प्रीफेक्चर का ही अंग था । यह भी एक सैनिक छावनी रहा । 1850 ई० में यह अंग्रेजी रेजीडेन्ट केन्द्र था ।[2] कई वर्षों तक चर्च के अभाव के कारण छावनी में भी पास के एक मकान

1- हिस्टारिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस, डायोसिस कमेटी इलाहाबाद 1940, पृष्ठ 63-64.

2- वही.

में प्रार्थनाएं इत्यादि होती रहीं । 13 दिसम्बर 1874 को फादर रैफिल ने सागर के पहले कैथोलिक चर्च की नींव डाली जिसका उद्घाटन 24 अक्टूबर 1890 को इलाहाबाद के पहले विशप ने किया ।[1] 1896 में यहाँ धर्माधिकारी के रहने के लिये एक मकान बना दिया गया । इसका धीरे-धीरे सागर तथा आस-पास के क्षेत्रों में कैथोलिक मिशनरियों ने अपना अड्डा जमाकर धर्म प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया । बुन्देलखण्ड के इस क्षेत्र में माल्टा के दो मिशनरियों ने कैथोलिक धर्म के प्रचार का कार्य अपने हाथ में लिया था ।

झाँसी जिले में क्रिश्चियन मिशनरी सोसायटी की स्थापना :

अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड का सामाजिक, आर्थिक पिछड़ापन इस क्षेत्र में ईसाई मिशनों की स्थापना के लिये अनुकूल साबित हुआ । धीरे-धीरे ईसाईमत के बढ़ते हुये प्रचार तथा प्रसार से यहाँ के निवासियों के धार्मिक भावनाओं को ठेस लगी । परिणाम स्वरूप 1857 के विद्रोह में लोग शामिल हुये । 1857 में अंग्रेजी सेनाओं द्वारा बुन्देलखण्ड का दमन करते हुये यहाँ आतंक को इस सीमा तक स्थापित कर दिया गया जिसकी छाप आगे आने वाले वर्षों के एक लम्बे समय तक लोगों के दिमाग पर छायी रही ।[2] इस दमन की प्रतिक्रिया के रूप में बुन्देलखण्ड के निवासियों में अंग्रेजी सेना के विरुद्ध घृणा की भावना जागृत हुई । इसके परिणाम स्वरूप लोग अंग्रेजों से स्वयं को अलग रखने लगे ।

1- हिस्टारिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस, डायोसियन कमेटी इलाहाबाद 1940, पृष्ठ 63-64.

2- पाठक एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 148.

1858 में झाँसी के कमिश्नर ने उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के सचिव को अपनी एक गोपनीय सूचना में लिखा था- "इस जिले के लोग साधारणतः हम लोगों से पृथक रहते हुये दूरी बनाये हुये हैं ।"[1] जनता की यह प्रतिक्रिया केवल कुछ दिनों तक ही नहीं रही बल्कि 19वीं शताब्दी तथा 20वीं शताब्दी के अर्धशतक तक लोगों के मस्तिष्क पर छायी रही । परिणाम स्वरूप लोग अंग्रेजों को कुत्ता कहकर पुकारते थे । इसका सबसे अच्छा उदाहरण झाँसी के कमिश्नर मेजर पिन्कने का स्मारक है जिसे लोग आज भी कुत्ते की टोरिया[2] के नाम से पुकारते हैं ।

उपरोक्त घृणा के वातावरण में अंग्रेजी शासकों ने यह उचित समझा कि इस कटुता को दूर करने का एक रास्ता यह होगा कि ईसाई मिशनरियों को बुन्देलखण्ड के क्षेत्रों में धर्म प्रचार की सुविधायें दी जायें,ताकि मानवीय कार्यों जैसे- स्कूल,अस्पताल तथा अन्य कल्याणकारी संगठनों के माध्यम से जनता का दिल जीत सकें ।[3] वास्तव में 1857 के विद्रोह की समाप्ति के बाद पूरा बुन्देलखण्ड भुखमरी की कगार पर आ गया । इसके बाद लगातार कुछ अन्तराल के बाद अकाल पड़ते रहे तथा बाढ़ आदि से स्थिति विषम होती गई ।[4] इस परिस्थिति में मिशनरियों को अपने कल्याणकारी कार्यों को आगे बढ़ाने का मौका मिला । इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड के अधिकांश

1- लैटर नम्बर 48,22 मार्च 1858 {पिन्कने वीकली रिपोर्ट}.
2- यह स्मारक झाँसी में फारेस्ट आफिस के सामने पहाड़ी पर स्थित है।
3- पाठक एस0पी0;झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 149.

4- वही.

क्षेत्रों में निम्न वर्गों की जनता पर्याप्त मात्रा में थी ।[1] जिसे आसानी से इसाईमत की ओर आकृष्ट किया जा सकेगा ।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर क्रिश्चियन मिशनरी सोसायटी ने झाँसी में अपने मिशनों की स्थापना की ।[2] इस मिशन की दो शाखाएं थीं- पहला ललितपुर तथा दूसरा मऊरानीपुर ।[3] बुन्देलखण्ड में आने वाले मिशनरियों के एक महत्वपूर्ण मिशन अमेरिका के प्रेसबिटेरियन चर्च का था । 1886 में प्रेसबिटेरियन चर्च के कुछ मिशनरी झाँसी आये तथा यहाँ धर्म-प्रचार का केन्द्र बनाया ।[4] थोड़े ही दिन बाद इन मिशनरियों ने धर्म-प्रचार की दृष्टि से स्थानीय जनता का विश्वास प्राप्त करने के लिये एक स्थानीय व्यक्ति को अपना धर्म-प्रचारक नियुक्त कर दिया जिसे झाँसी नगर तथा आसपास के क्षेत्रों में इसाई धर्म प्रचार का कार्य सौंपा गया । इन विदेशी मिशनरियों को किसी भी स्थानीय व्यक्ति को धर्म प्रचारक के रूप में नियुक्त करने की अत्यन्त आवश्यकता इसलिए थी, क्योंकि ये मिशनरी बुन्देलखण्ड के रीति-रिवाज व परम्पराओं से परिचित नहीं थी । साथ ही प्रचार के लिये जनता की बोली का सहारा लेना भी आवश्यक था । ये सभी कार्य स्थानीय इसाई आसानी से कर सकते थे । शीघ्र में

1- पाठक एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 149.

2- वही.

3- ड्रेन ब्रोक मैन डी0एल0, झाँसी गजे0इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 87.

4- ड्रेन ब्रोक मैन डी0एल0, झाँसी गजे0, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ-87 तथा इम्पीरियल गजे0आफ इण्डिया; भाग-2, पृष्ठ-91.

अमेरिकी मिशनरियों का उद्देश्य यह था कि धर्म प्रचार व प्रसार हेतु स्थानीय प्रचारकों को आगे रखते हुये स्वयं को पृष्ठ भूमि में रखकर मिशन के कार्यों को आगे बढ़ाया जाय। ऐसा करना इसलिए भी आवश्यक था, क्योंकि बुन्देलखण्ड के लोग योरोपीय धर्म प्रचारकों को विदेशी समझकर घृणा करते थे।

ललितपुर जिला जो झाँसी की तुलना में अत्यन्त ही पिछड़ा हुआ था। वहाँ ईसाई धर्म के प्रचार की प्रबल सम्भावनायें थीं। 1858 के बाद के वर्षों में जैसे- 1868, 1873, 1892, 1899,90 आदि वर्षों में ललितपुर जिले में भी भयंकर अकाल पड़े।[1] इन अकालों का प्रभाव बुन्देलखण्ड के सभी जिलों पर था, लेकिन ललितपुर का जिला इससे बुरी तरह प्रभावित हुआ। इसजिले में किसी भी प्रकार का उद्योग नहीं था। अतः लोगों की जीविका खेती पर निर्भर करती थी। चूंकि सरकार ने सिंचाई की सुविधाओं की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया[2] इसलिये अकाल से होने वाली क्षति कई गुना अधिक हो गई थी। 1868 और 69 के अकालों की भयंकरता को तो लोग अब भी याद करते हैं।[3] इस अकाल की विभीषिका का वर्णन करते हुये बेनवी ने लिखा है- "यद्यपि पूरा ललितपुर जिला अकाल की विभीषिका से ग्रस्त था, किन्तु सबसे प्रभावित इलाके तालबेहट, बाँसी और बानपुर थे।"[4] इस अकाल के परिणामों का वर्णन करते हुये झाँसी के डिप्टी-

---

1- पाठक एस०पी०, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ- 68-69.

2- वही. पृष्ठ-79.

3- वही. पृष्ठ-68.

4- एटकिन्सन ई०टी०, बुन्देलखण्ड गजे०, पृष्ठ-318.

कमिश्नर ने लिखा था- दुर्बल तथा कमजोर लोग भूख तथा प्यास के मारे धूप लग जाने के कारण गिर जाते थे और उनकी मृत्यु हो जाती थी । 1869 में ही झाँसी तथा ललितपुर में हैजे की बीमारी पड़ी जिसमें झाँसी में ही 20,331 लोग मर गये, जबकि इससे पूर्व 1868 में 3,180 लोग मर चुके थे ।[1] मानवीय क्षति के साथ-साथ जानवरों को भी काफी क्षति हुई । इसके दुःखद परिणामों का वर्णन करते हुये 1874 में एटकिन्सन ने लिखा था -ललितपुर जिला उत्तर पश्चिमी प्रान्त के उन अभागे जिलों में से एक है जहाँ अकाल के चिन्ह अब भी दिखाई पड़ते हैं । अधिकांश लोगों की मृत्यु हो जाने से गाँव की जनसंख्या में कमी आ गई तथा 10 से लेकर 20 प्रतिशत तक भूमि बिना जुताई के बची रही । धूप लगकर मरने वालों की संख्या लगभग पचास पचास हजार थी और इस जिले को अपनी स्थिति को काबू में पाने के लिये काफी समय लगेगा ।"[2]

अकालों द्वारा उत्पन्न भयावह स्थिति में बुन्देलखण्ड में आये मिशनरियों ने लोगों की मदद देकर ईसाई बनाना प्रारम्भ किया । ललितपुर मिशन ने अनाथ बच्चों की देख-रेख तथा पालन-पोषण कार्य करने के लिये एक अनाथालय खोला जिसमें ऐसे बच्चों को लाकर पाला जाने लगा जो अकालों के समय अपने माँ-बाप द्वारा फेंक दिये गये थे । इन अनाथालयों में बच्चों को विभिन्न प्रकार के हस्त शिल्प और कारीगरी की ट्रेनिंग दी जाती थी ।[3] इसी तरह के अनाथालय झाँसी

1- एटकिन्सन ई०टी०, बुन्देलखण्ड गजे०, पृष्ठ 253-254.

2- वही. पृष्ठ 256.

3- ड्रेक ब्रोक मैन डी०एल०, झाँसी गजे० पृष्ठ-87 तथा इम्पीरियल गजे० आफ इण्डिया, भाग-2, पृष्ठ-91.

हमीरपुर, बाँदा आदि जिलों में भी खोले गये । यहाँ पर गरीब बच्चों के पालन-पोषण का कार्य होता था । इन तरीकों से बुन्देलखण्ड के सम्भाग में इसाई धर्म के मानने वालों की संख्या निरन्तर बढ़ती गई । संख्या में बढ़ोत्तरी आगे आने वाले वर्षों में काफी तेजी से होने लगी । 1881 की जनसंख्या के अनुसार केवल झाँसी जिले में स्थानीय ईसाइयों की संख्या केवल 40 थी जो 1891 में आते-आते 161 हो गई ।[1] 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अर्थात् 1901 ई0 में यह संख्या बढ़कर 777 हो गई । यही गति अन्य जिलों में भी रही जो इसाईयों के बढ़ते हुये प्रभाव को स्पष्ट करती है ।[2]

बुन्देलखण्ड सम्भाग में प्रोटेस्टेण्ट मिशन का प्रारम्भ :

बुन्देलखण्ड के पिछड़े हुये इलाके में ईसाइयत के प्रचार तथा प्रसार का कार्य सर्वप्रथम प्रोटेस्टेण्ट मिशनरियों ने ही किया था ।[3] 1896 में बुन्देलखण्ड में एक भयंकर अकाल पड़ा[4] जिससे यहाँ के जनजीवन को भारी क्षति हुई । इससे पहले भी यहाँ पर समय-समय पर अकाल पड़ते रहे । फलत: कृषि पर आधारित जनता भुखमरी की कगार पर आ चुकी थी । जनवरी 1896 में तो अकाल के कारण लोग बिल्कुल तंग आ चुके थे । व्याप्त महंगाई के कारण लोग काफी संख्या में मरने लगे थे । यद्यपि सरकार ने दिखावे के लिये अकाल पीड़ितों की सहायता के लिये कुछ

1- ड्रेक ब्रोक मैने डी0एल0, झाँसी गजे0, पृष्ठ-87 तथा इम्पीरियल गजे0 आफ इण्डिया, भाग-2, पृष्ठ-91•

2- वही•

3- ए क्रिस्टिकल इनक्वायरी इन्टू द बुन्देलखण्ड मसीही मित्र समाज वर्क इन द बुन्देलखण्ड एरिया, रत्नाकर, एम•राव• [रिसर्च पेपर] 10-1-85 पृष्ठ-1•

4- पाठक एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 71-72•

प्रयास किए, लेकिन ये प्रयास लोगों को सन्तुष्टि प्रदान न कर सके ।[1]

ऐसी परिस्थिति में 1896 में प्रोटेस्टेण्ट मिशन की ओर से मिस ई०वार्ड तथा मिस फिलर जो मिशनरी कार्य के लिये भारत आई हुई थीं, ने लखनऊ में कुछ समय तक विश्राम किया तथा बुन्देलखण्ड की स्थिति का पता करने के बाद छतरपुर के नौगाँव इलाके में धर्म-प्रचार का बीड़ा उठाया ।[2] अकाल में गृह-विहीन तथा ऐसे लावारिस बच्चों की देख-रेख व पालन-पोषण का कार्य उन दोनों मिशनरियों ने किया ।[3] इस उद्देश्य से नौगाँव में एक अनाथालय, अस्पताल तथा एक स्कूल की भी स्थापना कर दी गई ।[4] धीरे-धीरे यह संस्थाएं काफी विकसित होने लगीं । 1902 में प्रथम बार प्रोटेस्टेण्ट मिशनरियों की मासिक बैठक का प्रारम्भ नौगाँव के अनाथालय से ही हुआ ।[5] 11 मार्च, 1902 को नौगाँव की मासिक बैठक में 47 प्रोटेस्टेण्ट लोग उपस्थित थे । यहीं से बुन्देलखण्ड चर्च का प्रारम्भ हुआ ।[6] धीरे-धीरे काफी संख्या में मिशनरी बुन्देलखण्ड के पिछड़े हुये जिलों में जाकर धर्म प्रचार करने लगे।

1- पाठक एस०पी०, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 71-72.

2- ए क्रिटिकल इन्क्वायरी इन-टू द बुन्देलखण्ड मसीही मित्र समाज, पृ०2.

3- वही.

4- वही.

5- वही.

6- वही.

मिशनरियों ने बुन्देलखण्ड चर्च अथवा बुन्देलखण्ड मसीही मित्र समाज नामक संस्थाओं की भी स्थापना कर ली ।[1] 1902 में प्रोटेस्टेण्ट चर्च के नियमों के लिये इलाहाबाद से एक पुस्तक प्रकाशित की गई और तत्पश्चात् 1939 में इसमें परिवर्तन किया गया । धीरे-धीरे बुन्देलखण्ड मसीही समाज को विन्ध्य प्रदेश की सरकार से मान्यता प्रदान कर दी गई ।[2]

बुन्देलखण्ड की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक पृष्ठ-भूमि :

बुन्देलखण्ड मूलत: हिन्दुओं के प्रभुत्व वाला क्षेत्र रहा है । अत: वर्ण व्यवस्था तथा जाति का गठन इस क्षेत्र में थी , हिन्दू संस्कारों के अनुसार ही हुआ । विशेषत. ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य जो समाज के प्रभावशाली लोग थे । वे अन्य निकली जातियों पर अपना प्रभुत्व बनाये रखने में सफल रहे ।[3] व्यापारी आर्थिक क्षेत्र में अपना प्रभुत्व बनाये रहे । बुन्देलखण्ड की अर्थ व्यवस्था मुख्यत: वैश्यों के हाथ में रही जिन्होंने जातीय संगठन को मजबूत किया तथा अपने प्रभाव और शक्ति में बराबर वृद्धि की । ब्राम्हण तथा क्षत्रियों ने भी समाज के प्रभावशाली लोगों के रूप में अपने को स्थापित कर लिया था । धार्मिक नेता होने के कारण तथा अपने ज्ञान के कारण वे ब्राम्हण समाज में पूज्य माने जाते रहे, जबकि इस क्षेत्र के शासक होने के नाते क्षत्रिय लोग तो पहले से ही प्रभावशाली थे।

1- ए क्रिटिकल इन्क्वायरी इन-टू द बुन्देलखण्ड मसीही मित्र समाज, पृ0 2

2- वही· पृष्ठ 2-3·

3- वही·

इनमें सबसे खराब स्थिति उन समाज को थी जिन्हें शूद्र अथवा हरिजन के नाम से पुकारते हैं।[1] संख्या की दृष्टि से यह वर्ग काफी था। इस वर्ग की हीनदशा का कारण यह था कि सदियों से वे कमजोर तथा पिछड़े बने रहे। ऐसी परिस्थिति में मिशनरियों ने बुन्देलखण्ड के इस कमजोर वर्ग को अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास किया। इन मिशनरियों को यह भली भांति ज्ञात था कि हिन्दू वर्ण व्यवस्था में यह शूद्र वर्ग उपेक्षित रहा है जिन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता रहा है। फलत:ईसाई धर्म का विस्तार करने के लिये इस समाज की निम्न जनता को ही मिशनरी धर्म प्रचारकों ने समय-समय पर सहायता तथा अन्य सुविधाओं के द्वारा ईसाई मत की ओर आकृष्ट किया।

जहाँ तक ईसाईयों द्वारा किये जा रहे धर्म प्रचार के प्रति उच्च वर्ग के हिन्दुओं का दृष्टिकोण था उन्हें बुन्देलखण्ड के उच्च वर्ग के हिन्दू सन्देह की दृष्टि से देख रहे थे, क्योंकि उन्हें यह भय था कि मिशनरियों के इन कार्यों से हिन्दू समाज का संगठन ध्वस्त हो जायेगा, किन्तु ये मिशनरी अपना निरन्तर कार्य करते रहे। फलत:समाज का उपेक्षित वर्ग उनकी ओर आकृष्ट हो गया।

राजनैतिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड भारत के मध्य में स्थित होने के नाते सदैव ही महत्व का बना रहा और यहाँ राजनैतिक उथल-पुथल होती रही है। 15वीं तथा 16वीं शताब्दी में बुन्देला ठाकुरों के आधिपत्य में

1- ए क्रिटिकल इन्क्वायरी इन-टू द बुन्देलखण्ड मसीही मित्र समाज, पृष्ठ 2-3.

धीरे-धीरे बुन्देलखण्ड,मुगल,बुन्देला तथा मराठाओं के संघर्ष का क्षेत्र हो गया था । महाराजा वीर सिंह देव जिन्होंने बुन्देलों की स्वतन्त्रता का उद्घोष किया था तथा जिसे जुझार सिंह,चम्पतराय तथा छत्रसाल ने आगे बढ़ाया था,उसी परम्परा के अनुसार मराठों से मिलकर महाराजा छत्रसाल बुन्देला ने मुगल सूबेदार मुहम्मद खान बंगश को पराजित किया था । इस घटना से इस क्षेत्र में बुन्देलों के स्वतन्त्र शासन का प्रारम्भ हुआ था । यहाँ से बुन्देलाओं और मराठाओं की दोस्ती का भी प्रारम्भ हुआ[1], किन्तु आगे आने वाले वर्षों में इन दोनों जातियों के बीच स्वार्थों की टकराहट हुई और आपसी विवाद होने लगे । इसी बीच गुसाईं नेता हिम्मत बहादुर,जो इस क्षेत्र में अपनी सर्वोच्चता स्थापित करना चाहता था,ने भी अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला की सेना को लेकर बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर दिया ।[2] अंग्रेज तो प्रारम्भ से ही बुन्देलखण्ड की केन्द्रीय स्थिति तथा भौगोलिक महत्व को समझते थे । अत:शुरू से ही उनकी यह लालसा थी कि बुन्देलखण्ड को अपने अधीन किया जाये । अत:बिगड़े हुये राजनैतिक परिवेश में अंग्रेजों को सफलता मिली और 1804 से यहाँ अंग्रेजी शासन स्थापित हुआ ।

इन लगातार युद्धों के कारण इस क्षेत्र की अर्थ व्यवस्था को भारी नुकसान तो पहुँचा ही,साथ ही साथ यहाँ व्याप्त गरीबी और मंहगाई आई । इस क्षेत्र की गरीबी का एक कारण यह भी था कि ब्रिटिश सरकार

1- पाठक एस०पी०,झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल ,पृष्ठ 8-9.

2- वही. पृष्ठ-11.

ने जानबूझ कर लगान की दरें अधिक रखीं ।[1] इसके पीछे इनका दृष्टिकोण यह था कि बुन्देलखण्ड के लोगों ने 1857 में विद्रोह के समय अंग्रेजी शासन का डटकर विरोध किया था । ये लोग भविष्य में भी ऐसा विरोध न करने पायें जिससे अंग्रेजी साम्राज्य को खतरा हो सके, अतः सरकार ने लगान की दरें कठोरता से निर्धारित कीं । यहाँ के उद्योग तथा धन्धों को कर लगाकर समाप्त कर दिया गया।[2] इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र के बुन्देला तथा अन्य जमींदार भी अपने किसानों से कठोरता पूर्वक कर वसूल करते रहे । जैनी तथा मारवाड़ियों ने तो उधार देने का व्यापार कर रखा था जिसके माध्यम से अधिक ब्याज लेकर यहाँ की जनता का शोषण किया जाता रहा । शोषण की इस प्रवृत्ति के कारण यहाँ की गरीबी तथा बेरोजगारी में व्यापक वृद्धि हुई ।[3] अतः इन परिस्थितियों में ईसाई मिशनरियों को अपने धर्म प्रचार का सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ ।

बुन्देलखण्ड मिशन का प्रारम्भ :

1648 में इंग्लैण्ड में क्वेकर आन्दोलन प्रारम्भ हुआ ।[4] 1661 में इस आन्दोलन के 6 नेता इंग्लैण्ड से भारत आये थे । अमेरिका में भी यह आन्दोलन 1660 में शुरू हुआ ।[5] 1813 में दमिश्क में

1- पाठक एस०पी०, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 113-114.

2- वही. पृष्ठ 66.

3- वही. पृष्ठ 86.

4- ए क्रिटिकल इनक्वायरी इन टू द बुन्देलखण्ड मसीही मित्र समाज वर्क इन द बुन्देलखण्ड एरिया., पृष्ठ-9.

5- क्वेकर्स इन इण्डिया, मारजोरी सके, लन्दन जार्ज ऐलिन एण्ड अनविन, 1980, पृष्ठ 60.

ओहियो लोगों की वार्षिक बैठकें प्रारम्भ हुयीं । वार्षिक बैठक का यह कार्यक्रम धीरे-धीरे बुन्देलखण्ड की अंग्रेजी छावनियों में भी प्रारम्भ हुआ । 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बुन्देलखण्ड अंग्रेजी छावनियों में विशेषतः नौगाँव में अनाथालय तथा स्कूल की स्थापना कर धर्म प्रचार के कार्य का प्रारम्भ 1893 में इसी प्रोटेस्टेण्ट मिशन ने प्रारम्भ किया । इसाई मिशनरियों द्वारा किये जा रहे कार्य विशेषतः अकाल-पीड़ितों की सहायता तथा स्कूल की स्थापना आदि से प्रेरित होकर अलीपुर[1] के महाराजा[2] ने इन मिशनरियों को अस्पताल बनाने के लिये जमीन दान में दी । धीरे-धीरे मिशनरियों ने बुन्देलखण्ड में अनेकों स्कूल तथा अस्पताल खोलने प्रारम्भ किये । 1925 में काफिन नामक मिशनरी ने नौगाँव में बाईबिल स्कूल का प्रारम्भ किया । इस कार्य में नौगाँव के पादरी मोतीलाल ने उनकी मदद की । इस स्कूल में अनेकों धर्म प्रचारकों को ट्रेनिंग दी जाती थी । धीरे-धीरे मोतीलाल को मसीही बन्दना समाज का अध्यक्ष बना दिया गया ।[3] इसी क्रम में बुन्देलखण्ड के क्षेत्रों में प्रोटेस्टेण्ट मिशनरियों के 9 अन्य मिशन स्थापित हुये । इससे अन्य धर्मावलम्बियों को इसाई बनाने में सुविधा हुई ।[4]

प्रारम्भिक वर्षों में बुन्देलखण्ड मिशन में अनाथालय तथा धर्म प्रचार से सम्बन्धित कार्य ही होता रहा । ये मिशनरी धर्म प्रचार के लिये बुन्देलखण्ड के ही लोगों को नियुक्त करते थे जो कि इसाई धर्म के

1- छतरपुर से 40 किलोमीटर उत्तर ।
2- मारजोरी सेक्स, पृष्ठ 102, 114, 137.
3- वही.
4- वही.

अनुयायी होते थे। 1925 में बुन्देलखण्ड मिशन ने अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन से सहयोग करना प्रारम्भ किया।[1] जिन 9 मिशनों की स्थापना की गई थी उनमें 1927 से 1947 तक कार्य करने वाले बुन्देलखण्ड के ही इसाई थे,[2] किन्तु बाहरी मिशनरी इनके कार्यों में बराबर मदद करते रहते थे। चूंकी यहाँ के लोग बुन्देली भाषा, यहाँ के रीति-रिवाज व धार्मिक विश्वासों से परिचित थे अतः वे भली-भांति जन-साधारण में जाकर जनसम्पर्क कर सकते थे। इसलिये विदेशी मिशनरियों ने धार्मिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये बुन्देलखण्ड के मिशनरियों को ही आगे रखकर स्वयं को उनके पीछे रखकर मदद करने का कार्य किया।[3] धीरे-धीरे इन विदेशी मिशनरियों को अपना कार्य-भार बुन्देलखण्ड के मिशनरियों को सौंपना पड़ा। इसका कारण यह था कि 1948 में भारत सरकार ने विदेशी मिशनरियों को अपने मिशनरी कार्यों को भारतीय मिशनरियों को देने का आग्रह किया।[4] इसके परिणामस्वरूप अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन ने आगामी 5 वर्षों में एक कार्यक्रम बनाकर बुन्देलखण्ड मिशन का कार्यभार यहाँ के ही प्रोटेस्टेण्ट इसाईयों को सौंपना प्रारम्भ किया। इस तरह अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन बाह्य रूप से बुन्देलखण्ड मिशन को सहायता पहुँचाने लगा और उसका प्रबन्ध यहाँ के ही इसाईयों द्वारा किया जाने लगा।[5]

1- ए क्रिटिकल इन्क्वायरी इन टू द बुन्देलखण्ड मसीही मित्र समाज-वर्क इन द बुन्देलखण्ड एरिया; पृष्ठ-10.

2- वही.

3- वही.

4- वही.

5- इण्डिया मिशन की छठवीं वार्षिक रिपोर्ट (1956), पृ0 44-45.

बुन्देलखण्ड मिशन की अन्य सहयोगी संस्थाएं :

बुन्देलखण्ड मिशन 1976 तक एक मात्र ऐसा संगठन था जो इस क्षेत्र में ईसाई धर्म प्रचार, बच्चों की देख-रेख, अस्पताल तथा स्कूल आदि की व्यवस्था आदि कार्य सम्पन्न किया करता था । 1948 तक यह संस्था विदेशी मिशनरियों के हाथ में रही । किन्तु सरकारी दबाव के कारण भारत स्वतन्त्र हो जाने के बाद इन विदेशी मिशनरियों ने बुन्देलखण्ड मिशन का प्रबन्ध और कार्य यहाँ के स्थानीय ईसाइयों को सौंपकर स्वयं को बाहर रखकर उनकी मदद करना प्रारम्भ कर दिया ।[1]

इस मिशन की अन्य अनेकों सहयोगी संस्थायें भी थीं । जैसे इवेन्जैलिकल फैलोशिप आफ इण्डिया, अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन, ओरियन्टल-मिशनरी सोसाइटी, आपरेशन मोबलाइजेशन, क्लिनिक सेन्टर, क्रिश्चियन एजूकेशन डिपार्टमेन्ट आदि संस्थाओं ने समय-समय पर बुन्देलखण्ड के मिशन के कार्यों से सहयोग किया ।[2]

अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन के कार्य का प्रारम्भ :

अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन का मुख्यालय ओहियो में था ।[3] इससे सम्बन्धित मिशनरी धर्म प्रचार के लिये बुन्देलखण्ड के पिछड़े हुये क्षेत्रों में आकर बस गये और सर्वप्रथम उन्होंने नौगांव छावनी, तत्पश्चात् छतरपुर को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया ।[4] धीरे-धीरे छतरपुर के राजा

1- ए क्रिटिकल इन्क्वायरी इन टू द बुन्देलखण्ड मसीही मित्र समाज वर्क-इन द बुन्देलखण्ड एरिया; पृष्ठ-11.

2- वही.

3- वही; पृष्ठ 11-12.

4- वही; पृष्ठ 13.

के सहयोग से इन मिशनरियों ने वहाँ पर चिकित्सालय प्रारम्भ किया और एक दशक के अन्तर्गत् ही इन मिशनरियों ने बिजावर, गंज, बौरा, मलेहरा, राजनगर, नौगाँव, गुलगंज और छतरपुर जैसे ग्रामीण क्षेत्रों में धर्म-प्रचार के कार्य करने प्रारम्भ कर दिये ।[1] यह उल्लेखनीय है कि ये मिशनरी ग्रामीण अंचलों में फैले रहने के बावजूद समय-समय पर नौगाँव में इकट्ठा होते थे और वहाँ से ही अपनी प्रेरणा ग्रहण किया करते थे ।

चूंकि यह क्षेत्र अधिकांश, अशिक्षित और पिछड़ा हुआ था इसलिये ईसाइधर्म के लिये आवश्यक था कि बुन्देली भाषा में ही इसका प्रचार और प्रसार किया जाये । इसीलिये इस मिशन ने बुन्देलखण्ड हैण्ड-बुक नामक पुस्तक का प्रकाशन किया जिसमें ईसाई धर्म की शिक्षाएँ लिखीं हुईं थीं ।[2] इस धर्म प्रचार के कार्य में केरलके मिशनरियों ने भी सहयोग किया ।[3] इनका अधिकांश समय तथा धन गाँव तथा पिछड़े इलाकों में लोगों को ईसाई बनाने तथा अन्य मानवीय कार्यों में खर्च होता था । 1948 के बाद अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन का कार्य भी बुन्देलखण्ड मिशन के हाथ में आ गया जिसका प्रबन्ध स्थानीय ईसाइयों ने करना प्रारम्भ किया । चर्चों की देख-रेख, स्कूल का प्रबन्ध तथा अनाथालयों के कार्यों की देख-रेख के अलावा, धर्म प्रचार करना इन लोगों का मुख्य कार्य बन गया ।

1- फ्रेण्ड्स इन बुन्देलखण्ड इण्डिया वाई मेरिल एम काफिन {ओहिओ}- फारेन मिशन वार्ड 1926, पृष्ठ-33.

2- ए क्रिटिकल इन्क्वायरी इन टू द बुन्देलखण्ड क्रीश्चियन मित्र समाज वर्क इन द बुन्देलखण्ड एरिया; पृष्ठ 13-14.

3- वही.

——:0:——

अध्याय चतुर्थ

बुन्देलखण्ड में ईसाइयत के प्रसार के प्रति ब्रिटिश नीति व उद्देश्य :

बुन्देलखण्ड में ईसाइयत के प्रचार के पीछे अंग्रेजी नीति को पूरे भारत वर्ष के परिप्रेक्ष में देखना उचित होगा । ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के बाद धीरे-धीरे ईसाई मिशनरियों का आगमन इस देश में प्रारम्भ हो गया था । 1698 के चार्टर एक्ट के समय पार्लियामेंट ने[1] कम्पनी के कारखानों तथा इसकी बस्तियों में इंग्लैण्ड के प्रोटेस्टेन्ट धर्म के प्रसार के लिये व्यवस्था की थी । 1700 ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरों ने कम्पनी के जहाजों तथा फ्लेन्टों को लन्दन के धर्माध्यक्ष द्वारा प्राप्त निर्देश के आधार पर भारत में ईसाइ धर्म के प्रचार के लिये सुविधाएं प्रदान करने के लिये आदेश दिये। प्रारम्भ में इंग्लैण्ड की सरकार इसके लिये विशेष इच्छुक नहीं थी । सम्भवतः ब्रिटिश सरकार को यह डर था कि ऐसा करने से भारतीयों के धर्म विश्वासों तथा भावनाओं को धक्का लगेगा, लेकिन बाद में मिशनों को आने की सुविधाएं दे दी गयीं । फलतः मिशनरियों को कम्पनी के

1- द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-6, पृष्ठ-121.

जहाजों पर बिना किसी किराये के भारत आने के लिये छूट दे दी गई। जर्मन ईसाई पादरी स्वार्ज जो हैदरअली के पास 1779 में एक गुप्त शान्ति सन्देश को लेकर आया था वह थोड़े समय बाद पादरी के रूप में मिशनरी कार्यों को आगे बढ़ाने लगा। मद्रास में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उसकी मृत्यु के 40 वर्ष बाद उसकी स्मृति में एक चर्च का निर्माण कराया जो यह प्रमाणित करता है कि अंग्रेज इस देश में ईसाई धर्म के प्रसार के लिये सतत् प्रयत्नशील थे।[1] 1793 के एक कानून के अनुसार भारत के गवर्नर जनरल तथा उसके कौंसिल ने भारतीयों के धार्मिक विश्वासों को यथावत् जारी रखने तथा शास्त्रों और कुरान के कानून को यथावत् बनाये रखने का आश्वासन दिया था।[2] इसमें यह भी कहा गया था कि इस देश में सभी प्रथाओं तथा रीति-रिवाजों को सहन किया जायेगा तथा पूर्व काल में शासकों द्वारा जिस धार्मिक उत्तरदायित्व का निर्वाह किया जाता था उसका निर्वाह यथावत् जारी रखा जायेगा।[3] इसी भावना के अन्तर्गत् 1793 में जब पार्लियामेन्ट ने चार्टर एक्ट पास किया था उस समय वहाँ के संसद सदस्य विलबर फोर्स पार्लियामेन्ट के द्वारा भारत में मिशनरियों के कार्यों को जारी रखने के लिये कम्पनी के डायरेक्टरों पर दबाव नहीं डाल सके थे। जब लार्ड वेलेजली भारत का गवर्नर जनरल होकर आया तो उस समय उसने मिशनरियों को सुविधायें देना प्रारम्भ कर दिया तथा विलियम कैरी को उसने एक अध्यापक के रूप में नियुक्त किया और बंगाल के श्रीरामपुर में उसने एक चर्च की इमारत बनाने के लिये 800 पौण्ड

1- द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-6, पृष्ठ 121.

2- वही.

की आर्थिक सहायता भी प्रदान की । वेलेजली ने धार्मिक मामलों में अपनी अलग नीति का पालन किया । 1805 में वह भारत से वापस हुआ उस समय उसके उत्तराधिकारियों ने उसके धार्मिक नीतियों को बदलने का प्रयास किया । सम्भवतः उसका कारण वेल्लोर का सैनिक विद्रोह था ।[1] यद्यपि इस विद्रोह से मिशनरी कार्यों का कोई संबंध नहीं था, किन्तु मद्रास की एक रिपोर्ट में यह प्रकाशित हुआ कि अंग्रेज सरकार की यह इच्छा है कि भारत के लोगों को बलपूर्वक ईसाई बना लिया जाये । यही कारण था कि 1807 से 1813 के बीच मिशनरियों को भारत में धर्म प्रचार करने के सम्बन्ध में सरकारी नीति स्पष्ट नहीं की जा सकी, लेकिन इसके बावजूद भी ये मिशनरी ब्रिटिश प्रबन्ध वाले भारतीय क्षेत्रों में कम्पनी से लाइसेन्स प्राप्त किये बिना भी आते रहे ।[2]

इस बीच इंग्लैण्ड में मैथडिस्ट चर्च के समर्थक तथा धर्म प्रचारक ईसाई धर्म के प्रचार के लिये जनमत को प्रभावित कर एक अच्छा वातावरण बना रहे थे । इंग्लैण्ड की ही एक बैपटिस्ट सोसाइटी ने जिसने कि विलियम केरी के कार्यों का समर्थन किया था उसे अन्य सम्प्रदायों के ईसाइयों ने इस बात के लिये आर्थिक मदद देना शुरू कर दिया, ताकि मिशनरियों को भारत में प्रचार कार्य में आने-जाने की छूट मिल जाय ।[3] ऐसे वातावरण में चर्च मिशनरी सोसाइटी, बाइबिल सोसाइटी, लन्दन-मिशनरी सोसाइटी तथा अन्य पुराने व नये ईसाई संघों ने काफी जन-समर्थन जुटा लिया था । फलतः यह कहा गया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी

1- मिल और विल्सन हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इण्डिया, भाग-7, पृ0 101.
2- स्टाक, हिस्ट्री आफ द चर्च मिशनरी सोसाइटी, भाग-1, पृ0 99.
3- वही.

के डायरेक्टर भारत में ईसाई मिशनरियों के दलों को भेजने के विरोध में नहीं हैं, लेकिन उनकी यह इच्छा अवश्य है कि ईसाई मत के प्रसार के लिये वे तरीके न अपनाये जायें जिनसे कि अन्य धर्मों के लोगों को असुविधा हो ।[1]

1813 के चार्टर के समय इंग्लैण्ड के मिशनरियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण वातावरण :-

जिस समय इंग्लैण्ड की पार्लियामेन्ट के समक्ष 1813 का चार्टर प्रस्तुत हुआ उस समय मिशनरियों को भारत भेजने तथा इसाईमत के प्रचार के लिये सुविधाएं देने के लिये इंग्लैण्ड में जन-समर्थन उमड़ने लगा ।[2] उस समय की परिचर्चाओं में यह कहा गया कि मुख्य प्रश्न यह है कि जहाँ भारतीयों को धार्मिक स्वतन्त्रता दी गई है वहाँ पर हमें इसाई मिशनरियों को भी धार्मिक स्वतन्त्रता देनी पड़ेगी, ताकि यदि वे भारत जाकर अपने धर्म का प्रचार करना चाहते हैं तो उन्हें ऐसा करने से वंचित न किया जाय । इसके अतिरिक्त इसाई मत के प्रचार का अर्थ नैतिकता की प्रगति से है और जहाँ कि भारत में विधवाओं को जलाने तथा बालिका-वध जैसी सामाजिक बुराइयाँ फैली हुई हैं, वहाँ मानवता की रक्षा की दृष्टि से यह और आवश्यक हो जाता है कि इसाई मिशनरियों को अपने प्रचार माध्यमों द्वारा इन बुराइयों को बन्द कराने के लिये प्रेरित किया जाए ।[3] इसके विपरीत कुछ पार्लियामेन्ट के सदस्यों ने बहस में भाग लेते हुये यह मत

1- मिल और विल्सन हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इण्डिया, भाग-7, पृष्ठ-389 से 396 तथा 401•

2- वही•

3- वही•

व्यक्त किया कि यदि ईसाई मिशनरियों को धर्म प्रचार में छूट दी जायेगी तो इससे भारतीयों के धार्मिक भावनाओं को ठेस लगेगी, परिणाम स्वरूप भारत से ब्रिटिश साम्राज्य समाप्त हो जायेगा ।[1] इसलिये सरकार की ओर से न तो मिशनरियों को प्रचार कार्य के लिये नियुक्त किया जाना चाहिए और न ही उन्हें सरकारी संरक्षण मिलना चाहिए । यदि वे जाना चाहते हैं तो वे अपनी इच्छा से जा सकते हैं । उन्हें किसी भी प्रकार की सरकारी मान्यता प्राप्त न हो।[2] फलत:पार्लियामेन्ट में यह प्रस्ताव पास हुआ कि ईसाई मत के विकास तथा लोगों के नैतिक प्रगति के लिये प्रयास किया जाय । कम्पनी के ईसाई मत प्रचार सम्बन्धी कार्यों की देख-रेख के लिये एक पादरी कैथरीन को नियुक्त कर दिया गया जिसमें खर्च होने वाली धनराशि को भारत में वसूल की जाने वाली राशि में से ही किया जाय । इस नीति के फलस्वरूप भारत में ईसाई धर्म के प्रचार के लिये मिशनरियों ने कार्य करना शुरू कर दिया । फलत:1813 से 1833 के बीच मिशनरियों ने हिन्दुस्तान में अनेकों की संख्या में ईसाई बना लिये ।[3]

1833 में जब चार्टर एक पार्लियामेन्ट के समक्ष पुन:प्रस्तुत किया गया उसमें यह प्रश्न पैदा हुआ कि मद्रास तथा बम्बई जैसे नगरों में धार्मिक प्रचार सम्बन्धी कार्य के लिये समुचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए । इसके पश्चात् मिशनरी भारत में काफी बड़ी संख्या में आने

1-दकैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-6, पृष्ठ-124.
2- वही.
3- वही.

लगे तथा यहाँ आकर सरकारी तन्त्र तथा शिक्षण संस्थाओं के कार्यों में मदद करने लगे । 1854 की योजना के अन्तर्गत् आते-आते उनके द्वारा चलाये जा रहे स्कूल सरकारी सहायता प्राप्त करने योग्य हो गये जहाँ कम्पनी के संचालकों का यह मत था कि राजकीय स्कूलों और कालेजों में शिक्षा, धर्म निरपेक्ष होनी चाहिए, वहाँ इन धर्माध्यक्षों ने यह बल दिया कि इन शिक्षण संस्थाओं की लाइब्रेरी में बाइबिल की पुस्तक रखी जानी चाहिए ।[1]

भारत में ईसाई मिशनरियों के आगमन तथा भारतीयों में इसके प्रचार से जब लोगों की संख्या में इस मत को नये लोग स्वीकार करने लगे उस समय नई समस्यायें पैदा होने लगीं । उदाहरण के लिये हिन्दू धार्मिक नियमों के अनुसार जैसे ही कोई व्यक्ति इस धर्म का त्याग कर ईसाई या अन्य कोई मत स्वीकार कर लेता था उस समय उसका पैतृक सम्पत्ति से हिस्सा समाप्त माना जाता था । फलत: दक्षिण भारत में जहाँ कि ईसाईयों की संख्या निरन्तर बढ़ रही थी वहाँ जिन हिन्दू तथा मुसलमानों ने ईसाई मत स्वीकार कर लिया उन्हें अपनी पैतृक सम्पत्ति से वंचित होना पड़ा ।[2] फलत: 1832 में सरकार ने कानून पास कर यह नियम बना दिया कि अब जो कोई भी व्यक्ति ईसाई मत स्वीकार करेगा उसे अपनी पैतृक सम्पत्ति से वंचित नहीं होना पड़ेगा । इस कानून का हिन्दू तथा मुसलमानों ने प्रतिरोध किया, किन्तु सरकार ने इसकी कोई चिन्ता नहीं की । प्रारम्भ में यह कानून बंगाल प्रेसीडेंसी तक ही लागू रहा, किन्तु 1850 में डलहौजी के समय इसको सभी जगह

1-द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-6, पृष्ठ-124.

2- वही; पृष्ठ-125.

लागू कर दिया गया ।[1] उस समय हिन्दुओं ने इस व्यवस्था का बहुत अधिक विरोध किया था । हिन्दुओं के इस प्रतिरोध को कुछ कम करने के लिये हिन्दुओं के तीर्थ स्थानों से वसूल किया जाने वाला कर समाप्त कर दिया गया ।[2] हिन्दू मन्दिरों,पूजा-गृहों तथा धार्मिक उत्सवों के समय नियुक्त की जाने वाली पुलिस का अतिरिक्त खर्च सरकारी श्रोत से देने का भी निर्णय किया गया,जबकि इससे पहले उसी धर्म विशेष के लोगों से वसूल किया जाता था ।[3] ऐसी परिस्थिति में हिन्दू तथा मुसलमानों में धर्म के नाम पर असन्तोष बढ़ने लगा । 1857 के विद्रोह के समय "धर्म खतरे में है" का नारा दिया गया जिससे अंग्रेजी शासन के विरुद्ध भारतीयों में विद्रोह भड़का ।[4]

1858 में शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद इंग्लैण्ड की पार्लियामेन्ट में इस बात को लेकर विवाद पैदा हुआ कि उन कारणों का पता लगाया जाय जिनमें 1857 का विद्रोह भड़का है । इस विद्रोह के लिये कम्पनी की नीतियों को उत्तरदायी ठहराया गया। यद्यपि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरों ने सरकार के समक्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था जिसमें कम्पनी की नीतियों का बचाव किया गया था,किन्तु इसके बावजूद भी 1858 का एक्ट पास करके पार्लियामेन्ट ने कम्पनी के हाथ से भारतीय शासन की सत्ता अपने हाथ में ले ली ।

1- द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-6, पृष्ठ 125.
2- वही; पृष्ठ 126.
3- वही.
4- वही; पृष्ठ 127.

विद्रोह की समाप्ति के बाद भारतीय प्रजा को सान्त्वना देने के लिये महारानी विक्टोरिया ने अपना घोषणा-पत्र प्रकाशित किया जिसमें यह कहा गया कि भारतीयों के धार्मिक प्रथाओं तथा विश्वासों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा,लेकिन महारानी का घोषणा-पत्र केवल दरबार में पढ़कर सुनाने के लिये ही था,इसमें कही गई बातों को कभी भी लागू नहीं किया गया और 1858 के बाद भी भारत में ईसाई मिशनरियों का आगमन तेजी से होता रहा तथा धर्म-परिवर्तन हेतु उनके प्रयास यथावत चलते रहे ।

1858 से लेकर 1892 तक बुन्देलखण्ड में ईसाई धर्म की स्थिति :

बुन्देलखण्ड में सामाजिक संगठन का आधार मुख्यत:धर्मप्रधान था जो जातीयता पर आधारित था । इस क्षेत्र में हिन्दुओं का बाहुल्य रहा है ।[1] 1901 की जनगणना[2] के अनुसार केवल झाँसी जिले में ही हिन्दू जनसंख्या लगभग 92·7% थी । मुस्लिम तथा अन्य धर्मावलम्बी यहाँ बहुत कम संख्या में थे । ईसाईयों की संख्या भी इसी प्रकार से अत्यन्त ही कम थी । ब्रिटिश छावनियों की स्थापना से सैनिक क्षेत्रों में अधिकारी जो प्राय:अंग्रेज थे,वे ईसाई धर्म के समर्थक अवश्य थे,अन्यथा प्रारम्भ में यहाँ ईसाई धर्म का कोई अधिक प्रभाव नहीं रहा । 1909में बाँदा जिले में यूरोपियन ईसाईयों की संख्या 39 थी तथा इस क्षेत्र में परिवर्तित किये गये लोगों की संख्या 1,147 थी जिनमें से 82 लोग एंग्लिकन चर्च के समर्थक थे, 30 प्रिसब्रिटेरियन चर्च के अनुयायी थे तथा

1- कैरी डी0सी0,सैंसस आफ इण्डिया,भाग-1,उत्तर-पश्चिमी प्रान्त तथा अवध,भाग-16,इलाहाबाद 1854,पृष्ठ 173·

2- वही·

8 लोग ऐसे थे जो रोमन कैथोलिक चर्च के अनुयाई माने जाते थे ।[1] यही स्थिति बुन्देलखण्ड के अन्य जिलों की भी थी । बाँदा के जिलाधिकारी मैन ने 1870 में वहाँ बुन्देलखण्ड मिशन की एक शाखा की स्थापना की थी जो कानपुर मिशन का ही एक अंग था । यह संस्था एक स्कूल खोलकर शिक्षा देने का कार्य करती थी जिसमें पाश्चात्य ढंग की शिक्षा का प्रबन्ध था, लेकिन इस दिशा में महत्वपूर्ण सफलता 1892 के बाद मिलनी प्रारम्भ हुई, जबकि नौगाँव में ऐलिया फिशलर ने अमरीकी फ्रैण्ड्स मिशन की ओर से अनाथालय स्थापित कर मिशनरी कार्य को अपने हाथ में लिया[2]। झाँसी, हमीरपुर, ललितपुर तथा जालौन के जिलों में भी लगभग यही स्थिति रही । 1909 में जालौन जिले में इसाईयों के वर्गीकरण से प्रतीत होता है कि 35 लोग ऐसे यूरोपीय थे जो इसाईमत में विश्वास करते थे । स्थानीय लोगों में 59 लोग ऐसे अवश्य थे जिन्होंने इस मत को स्वीकार कर लिया था । इनमें से अधिकांश संख्या एंग्लिकन चर्च के ही समर्थकों की थी ।[3] अभीतक इस जिले में इसाई मिशनरियों के कोई विशेष केन्द्र स्थापित नहीं हो सके थे, किन्तु उरई, कोंच तथा माधोगढ़ में अमरीका के मैथडिस्ट चर्च के मिशनरी चिकित्सा तथा स्कूलों के माध्यम से धर्म परिवर्तन का कार्य कर रहे थे ।[4] 1881 के पहले जालौन जिले में एक भी देशी इसाई नहीं था, किन्तु 1891 में देशी इसाईयों की संख्या 20 हो गई ।[5]

1- ड्रेक ब्रौक मैन डी०एल०, बाँदा गजे० 1909, पृष्ठ 91.

2- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ-12.

3- ड्रेक ब्रौक मैन डी०एल०, जालौन गजे०, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 59-60.

4- वही.

5- वही.

बाद में चलकर इसमें तेजी से वृद्धि होने लगी ।

झाँसी जिले में भी ईसाई-मत का प्रारम्भ 1858 के बाद शान्ति व्यवस्था स्थापित हो जाने से ही प्रारम्भ हुआ ।[1] 1857 में बुन्देलखण्ड के जिले विशेषत: झाँसी को ब्रिटिश सैनिकों ने लूटपाट द्वारा बुरी तरह नष्ट कर दिया था ।[2] इस दमन चक्र की समाप्ति के बाद बुन्देलखण्ड का आर्थिक उत्पीड़न शुरू हुआ । समय-समय पर पड़ने वाले अकालों तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण यह क्षेत्र आर्थिक पतन की कगार पर आ गया था । ईसाई मिशनरियों को इसी अवसर की तलाश थी,ताकि वे गरीबों तथा बीमारों के बीच जाकर अपनी सेवा और चिकित्सा कार्यों द्वारा ईसाईयों के प्रति लोगों का विश्वास प्राप्त कर सकें ।[3] चूंकि झाँसी जिले में निम्न जाति जैसे- चमार आदि की संख्या का औसत अधिक था अत:मिशनरियों को इनमें घुसने का उचित वातावरण भी प्राप्त हुआ ।

झाँसी में मिशनरी सोसाइटी की दो शाखायें थीं । एक ललितपुर में तथा दूसरी मऊरानीपुर में ।[4] 1886 ई0 में अमरीकी प्रिसबिटेरियन चर्च के मिशनरी झाँसी आये तथा उन्होंने यहाँ अपना केन्द्र स्थापित किया । ललितपुर मिशन द्वारा एक अनाथालय का भी प्रारम्भ किया गया जिसमें अकाल के समय मरने वाले बच्चों का पालन-

---

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0, झाँसी गजे0, इलाहाबाद 1909, पृ0-87 तथा इम्पीरियल गजे0आफ इण्डिया, भाग-2, कलकत्ता 1908, पृष्ठ-91.
2- रिजवी एस0ए0ए0, फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश, भाग-3, पृष्ठ-346.
3- पाठक एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ-149.
4- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0, झाँसी गजे0, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ-87.

पोषण किया जाता रहा ।[1] इन बच्चों को धीरे-धीरे उन उद्योग, हस्त-शिल्प जैसे रोजगार की ट्रेनिंग दी जाने लगी, ताकि वे अपनी जीविका चला सकें ।[2] शीघ्र ही इन मानवतावादी तरीकों का परिणाम दिखाई पड़ा और इससे इस क्षेत्र में ईसाई के अनुयाइयों की संख्या बढ़ने लगी । झाँसी जिले में इसमें अभूतपूर्व प्रगति हुई ।[3] इसकी पुष्टि जनगणना की रिपोर्टों से होती है । 1881 की जनगणना के अनुसार झाँसी में स्थानीय ईसाईयों की संख्या जहाँ मात्र 40 थी, वह 10 ही वर्षों के अन्तर्गत् 1891 में 161 तक पहुँच गई । आगामी वर्षों में तो धर्मान्तरण बड़ी तेजी से हुआ और 1901 की जनगणना के अनुसार केवल झाँसी जिले में ही स्थानीय ईसाईयों की संख्या बढ़कर 777 हो गई ।[4]

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि 1858 से लेकर 1892 तक झाँसी, बाँदा, हमीरपुर, जालौन, ललितपुर आदि जिलों में तथा बुन्देलखण्ड के अन्य सम्भागों में भी जो ईसाई थे वे मुख्यतः सैनिक छावनियों में या तो अंग्रेज अधिकारी थे अथवा सैनिक । लेकिन 1858 के पश्चात् धीरे-धीरे ईसाई धर्म के प्रसार की प्रक्रिया का विकास होता रहा और बुन्देलखण्ड में इस कार्य में सबसे अधिक तेजी लाने का कार्य अमरीका की महिला मिशनरियों ने किया । इस कार्य के लिये मिशनरियों को बुन्देलखण्ड में सामाजिक, आर्थिक पिछड़ापन मिला जो उनके लिये वरदान साबित हुआ ।

1- ड्रेक ब्रोक मेन डी०एल०, झाँसी गजे०, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ-87 तथा इम्पीरियल गजे०आफ इण्डिया, भाग-2, कलकत्ता 1908, पृष्ठ-91·

2- वही·

3- वही·

4- वही·

मिशनरियों के आगमन के पूर्व बुन्देलखण्ड की दशा :

यह उल्लेखनीय है कि उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध तथा बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध बुन्देलखण्ड के सामाजिक, आर्थिक इतिहास में अत्यन्त गरीबी और बेरोजगारी का समय रहा है ।[1] 1858 की शान्ति के बाद यह क्षेत्र अभी महान् विद्रोह के प्रभाव से किसी तरह मुक्त हुआ ही था कि बुन्देलखण्ड के क्षेत्रों में अकाल की विभीषिका शुरू हुई ।[2] अकाल के अतिरिक्त समय-समय पर कांस, घास के उग जाने के कारण इस क्षेत्र की उर्वरा शक्ति ही नष्ट हो जाती थी । फलत: कई वर्षों तक भूमि खेती के योग्य नहीं होती थी ।[3] 1892 में झांसी जिले का बन्दोबस्त करते समय इम्पे और मेस्टन नामक अधिकारियों ने यह लिखा था कि "1857 के विद्रोह के समय ओरछा रियासत द्वारा झांसी पर किये गये आक्रमण और राजस्व की वसूली से यहां के लोगों की दयनीय स्थिति हो गई इसके अतिरिक्त 1858 में शान्ति स्थापित हो जाने के बाद ब्रिटिश अधिकारियों ने दोबारा किसानों से राजस्व वसूल किया ।"[4] इस दु:खद स्थिति का वर्णन उस समय झांसी के सुपरिन्टेन्डेंट मेजर पिनकने ने अपने एक गोपनीय पत्र के द्वारा उच्च अधिकारियों को सूचना देने के सम्बन्ध में लिखा था कि "1857 के विद्रोह के समय हमारे मित्र टिहरी और दतिया के राजाओं ने झांसी जिले के कुछ भू-भाग को ही नहीं दबा लिया था, बल्कि एक लाख रुपये की राजस्व वसूली भी कर ली थी । चूंकि इस समय हम नाजुक स्थिति में हैं अत: उन राजाओं के इस

1- देखिए अध्याय-दो ।
2- पाठक एस0पी0, झांसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ-67·
3- वही·
4- वही·

कार्य के प्रति हम कुछ नहीं कह सकते अन्यथा वे हमसे अप्रसन्न हो जायेंगे। जैसे ही शान्ति स्थापित होगी, वैसे ही इस सम्बन्ध में जाँच पड़ताल की जायेगी।"[1]

उपरोक्त घटनाओं के अतिरिक्त बुन्देलखण्ड के जिलों में पड़ने वाले अकालों से लोगों की आर्थिक स्थिति खराब हुई।[2] बुन्देलखण्ड की कृषि व्यवस्था के बल पर 90% जनसंख्या की उदर-पूर्ति होती थी, किन्तु दुर्भाग्य का विषय यह था कि यहाँ की कृषि व्यवस्था को काँस-घास ने सबसे अधिक प्रभावित किया जिससे यह क्षेत्र गरीबी की रेखा के नीचे आ गया। 1892 में इलाहाबाद सम्भाग के कमिश्नर राइट[3] ने लिखा था कि "बुन्देलखण्ड की आर्थिक विवेचना के सन्दर्भ में काँस-घास के वर्णन के बिना कोई भी रिपोर्ट प्रेषित नहीं की जा सकती।"[4] यह घास उग जाने के बाद कई वर्षों तक कृषि योग्य भूमि की उर्वरा शक्ति ही नष्ट हो जाती थी। इस प्रकार इस घास से कृषि व्यवस्था अत्यन्त ही कठिन स्थिति में पहुँच जाती थी। यह घास काफी लम्बी तथा जुताई समाप्त हो जाने के बाद अधिक तेजी से फैलने में सक्षम थी। इसकी जड़ें तेजी के साथ 6 या 7 फीट गहराई तक चली जाती थीं और जब किसान हल चलाने के लिये खेत में जाता था उस समय ये गहन जड़ें हल को ही रोक लेती थीं। 10 तथा 15 वर्षों के पश्चात् काँस-घास से प्रभावित खेतों में दूसरी प्रकार की घासें पैदा हो जाती थीं और तभी वह भूमि

1- रिपोर्ट नम्बर 122, झाँसी दिनांक 23 अप्रैल 1858.

2- देखिए अध्याय द्वितीय।

3- इम्पे तथा मेस्टन, झाँसी सेटिलमेन्ट रिपोर्ट 1892 [फारवर्ड नोट] पृष्ठ-2.

4- वही.

कृषि प्रयोग में लायी जा सकती थी । 1871 में झाँसी जिले के डिप्टी-कमिश्नर जेनकिन्सन ने यहाँ का बन्दोबस्त करते समय इस घास के प्रकोप का विशद विवरण दिया है ।[1] जेनकिन्सन ने लिखा है कि "झाँसी जिले में भसनेह नामक गाँव,जहाँ पर कृषि योग्य अच्छी जमीन थी वहाँ पर काँस-घास का इतना अधिक प्रकोप हुआ कि वहाँ के किसानों ने गाँव ही छोड़ दिया"।[2] इन किसानों ने पूर्व अनुभव के द्वारा यह समझ लिया था कि प्राय:सभी खेतों में यह घास उग आई है जिसका प्रकोप कई वर्षों तक चलेगा । अत:कृषि से वंचित हो जाने के कारण लोग भूखों मरने लगेंगे, परिणाम स्वरूप लोगों ने उस गाँव को खाली कर दिया ।[3] अंग्रेज सरकार को इस उत्पन्न स्थिति का सामना करने के लिये भसनेह ग्राम का प्रबन्ध स्वयं अपने हाथ में ले लेना पड़ा था ।[4]

ऐसा प्रतीत होता है कि अत्यधिक वर्षा होने के कारण काँस सम्भवत:अच्छी उर्वरा शक्ति वाले खेतों में पैदा हो जाती थी ।[5] 1868 तथा 1869 के अकालों के पश्चात् बुन्देलखण्ड में व्यापक अत-वृष्टि हुई । परिणाम स्वरूप अगले ही वर्ष उपजाऊ खेतों में काँस-घास काफी तेजी से पैदा हुई ।[6] 1872 की एक रिपोर्ट से यह पता चलता है कि इस घास ने मात्र झाँसी जिले में ही 40 हजार से भी अधिक एकड़ भूमि पर

1- जेनकिन्सन ई0जी0, झाँसी सेटिलमेन्ट रिपोर्ट 1871, पृष्ठ-92.

2- वही; पृष्ठ-92.

3- वही.

4- वही.

5- इम्पे तथा मेस्टन , झाँसी सेटिलमेन्ट रिपोर्ट 1892 [फारवर्ड नोट] पृष्ठ-56.

6- वही.

अपना प्रकोप दिखाया । 1877 में पुन:अकाल पड़ गया जो इस घास की बढ़ोत्तरी में सहायक सिद्ध हुई ।[1] पानी के अभाव में 1877 में इसका प्रकोप इतना अधिक था कि सरकार को कृषकों की सहायता के लिये 1874 में राजस्व की वसूली स्थगित करनी पड़ी ।[2]

झाँसी,ललितपुर,जालौन और हमीरपुर के जिले में कृषकों के सम्मुख काँस गम्भीर संकट उत्पन्न करने में सक्षम थी । 1892 ई॰ में जिस समय झाँसी जिले का दूसरा बन्दोवस्त हो रहा था उस समय बन्दोवस्त अधिकारियों के सम्मुख मुख्य प्रश्न यह था कि इस घास से ग्रस्त खेतों के राजस्व के निर्धारण में क्या नीति अपनाई जाय ।[3] बुन्देलखण्ड के किसान इस समस्या के कारण कर्ज के भार से दब गये थे । झाँसी के प्रथम बन्दोवस्त के समय अधिक मात्रा में यह घास उत्पन्न हो जाने के कारण सरकारी राजस्व को 6 लाख रुपये का नुकसान हुआ था ।[4] यह घास समय-समय पर उग्र रूप भी धारण कर लेती थी इससे भूमि की उर्वरा शक्ति ही नष्ट हो जाती थी । विशेषत:काली मिट्टी वाले इलाके इससे विशेष प्रभावित थे । [5]

काँस उन्मूलन के प्रयास :

काँस-ग्रस्त होने के कारण सरकार को राजस्व वसूली में घाटा होने लगा । फलत:अधिकारियों का ध्यान इस समस्या के समाधान की ओर गया । सर्वप्रथम डब्ल्यू॰ई॰नीले ने इस घास को नष्ट करने का प्रभाव-

---

1- इम्पे तथा मेस्टन,झाँसी सेटिलमेंट रिपोर्ट 1892,फारवर्ड नोट,पृ॰-56॰
2- वही॰
3- वही॰
4- वही; पृष्ठ-2
5- इम्पीरियल गजे॰आफ इण्डिया,भाग-1,पृष्ठ-101॰

शाली तरीका प्राप्त किया । उसने यह बताया कि इस घास को खेत में जला देने अथवा अधिक गहराई तक खोदकर इसका उन्मूलन किया जा सकता है ।[1] बुन्देलखण्ड के जिलों में ये सभी तरीके अपनाये गये, किन्तु उनके सुखद परिणाम नहीं निकले और जला देने के बाद यह देखा गया कि दूसरे ही वर्ष यह घास और तेजी से निकली । अन्त में यह निर्णय लिया गया कि कांश ग्रस्त खेतों को वैसे ही छोड़ दिया जाय, ताकि यह घास स्वयं नष्ट हो जाय ।[2] झाँसी जिले के गरौठा तहसील में इस घास को जलाने का प्रयास किया गया, किन्तु यह देखा गया कि दूसरे ही वर्ष और अधिक मोटी जड़ों के साथ इस घास ने खेतों को घेर लिया ।[3] सहारनपुर के उद्यान निदेशक ने यह विचार व्यक्त किया कि जिन खेतों में अच्छी तरह खाद दी जाती है वहाँ कांश का प्रभाव नहीं होता है,[4] लेकिन यह तरीका उन दिनों अधिक सम्भव नहीं था, यह देखते हुये कि बुन्देलखण्ड का किसान खेती के पुराने तरीकों को ही अपनाये हुये था और आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण यह कृषि में अधिक पूँजी निवेश करने की स्थिति में नहीं था ।

कांश ने जहाँ भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट करके कृषकों के सम्मुख गम्भीर संकट उत्पन्न किया वहीं दूसरी ओर भूमि कटाव के कारण भी उर्वरा शक्ति नष्ट होती रही । बेतवा, धसान, केन आदि नदियों की तेज धार के कारण इस भूमि का कटाव होता रहा ।

1- हमीरपुर सेटिलमेन्ट रिपोर्ट, इलाहाबाद 1880, पृष्ठ-118.
2- इम्पे और मेस्टन, झाँसी सेटिलमेंट रिपोर्ट 1892 (फारवर्ड नोट) पृ0-8.
3- वही; पृष्ठ-131.
4- वही.

1864 में झाँसी के बन्दोबस्त अधिकारी ने यह लिखा था कि धसान नदी के किनारे जो गाँव पहले खेती योग्य थे, वे बाद में ककर कटाव के कारण कृषि की दृष्टि से अयोग्य हो गये ।[1] गरौठा तहसील में जहाँ कि अच्छी किस्म की जमीन थी, कटाव के कारण काफी प्रभावित हुई ।[2] बेतवा, धसान नदियों के किनारे वाले गाँवों में यह स्थिति थी ही इसके अतिरिक्त आस-पास के नालों से भी निरन्तर कटाव होते रहने के कारण उर्वरा शक्ति नष्ट हुई । ललितपुर जिले में बेतवा ने इतना अधिक कटाव उत्पन्न नहीं किया है, किन्तु सहजाद, सन्जाम तथा जामिनी नदियों ने कटाव पैदा करने में मुख्य भूमिका निभाई । इस प्रकार बुन्देलखण्ड की अर्थ-व्यवस्था जो मुख्यतः कृषि प्रधान थी, वह लगातार अकालों, समय-समय पर उत्पन्न कांस-घास तथा भूमि कटाव के कारण लोगों की गरीबी और भुखमरी बढ़ाने में सहायक रही जिससे पूरा क्षेत्र ऋणदाताओं के चंगुल में फंस गया ।

कृषकों पर ऋण का बोझ तथा जमीन का हस्तान्तरण :

आर्थिक तंगी के परिणाम स्वरूप बुन्देलखण्ड के किसान तथा जमींदार ऋण के बोझ से दब गये । 1864 के प्रारम्भ में ही झाँसी के डिप्टी कमिश्नर जेनकिन्सन ने इस सम्भावनाओं को देख लिया था । जेनकिन्सन ने इस समस्या के लिये मराठा शासनकाल के समय इस क्षेत्र में की जाने वाली अधिक राजस्व वसूली को दोषी ठहराया है ।[3] लेकिन केवल यही बात नहीं थी । वास्तव में 1857 के विद्रोह में इस

1- इम्पे और मेस्टन, झाँसी सैटिलमैंट रिपोर्ट 1892 (फारवर्ड नोट) पृ0-10.
2- वही.
3- जेनकिन्सन ई0जी0, झाँसी सैटिलमेन्ट, इलाहाबाद 1871, पृ0 442.

क्षेत्र में की गई लूटपाट, राजस्व की दूसरी बार वसूली, पड़ोसी रियासतों जैसे दतिया तथा ओरछा द्वारा की गई राजस्व की अवैध वसूली और इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार के राजस्व अधिकारियों द्वारा राजस्व के कठोर दरों का निर्धारण तथा समय-समय पर पड़ने वाली प्राकृतिक आपदायें आदि सभी के कारण किसान तथा जमींदार ऋण-दाताओं के चंगुल में फंस गये ।[1]

अंग्रेजी शासनकाल में किसानों को भूमि का पूरा अधिकार दिया गया था अतः वे अपनी भूमि को गिरवी रखकर ऋणदाताओं से ऋण लेने लगे । धीरे-धीरे कर्ज की मात्रा बढ़ती गई । आर्थिक संकट में भी कोई कमी नहीं आई और भूमि अधिक मात्रा में कृषकों के हाथ से निकलकर ऋणदाताओं के हाथ में जाने लगी ।[2] 1864 में झाँसी के डिप्टी कमिश्नर ने ऋणदाताओं की पूँजी की जाँच करने के लिये आदेश दिये थे, लेकिन उसके चले जाने के पश्चात् इस दिशा में कोई विशेष कार्यवाही नहीं हो सकी और ऋण-ग्रस्त किसान ऋणदाताओं के चंगुल में फंसते चले गये ।[3] 1873 में झाँसी में स्थानापन्न कमिश्नर कालविन ने 1878 में रिपोर्ट दिया कि इस समय तक 28% लोग अपनी भूमि को {जिसका राजस्व लगभग 7 लाख रुपये है} वह ऋणदाताओं के पास गिरवी रख चुके हैं ।[4] 1892 तक आते-आते केवल झाँसी जिले में ही यह अनुमान लगाया गया कि 11,251 एकड़ जमीन किसानों ने ऋण के कारण ऋणदाताओं को बेच दी है । इसके अतिरिक्त 45,276 एकड़ प्रति-

---

1- जेनकिन्सन ई०जी०, झाँसी सेटिलमेंट रिपोर्ट, इलाहाबाद 1871, पृ०448.
2- वही.
3- वही.
4- इम्पे और मेस्टन, झाँसी सेटिलमेंट रिपोर्ट, 1892 {फारवर्ड नोट} पृ०-55.

वर्ष की औसत से भूमि गिरवी रखी जा रही है । ललितपुर सर्वाधिक प्रभावित क्षेत्र रहा है । वहाँ तो जैनियों और मारवाड़ियों ने ऋण देने का व्यवसाय ही बना लिया था और वहाँ यह कहावत बन गई थी कि ललितपुर न छोड़िये जबतक मिले उधार ।

लैफ्टीनेन्ट गवर्नर का बुन्देलखण्ड के क्षेत्रों का दौरा :

उपरोक्त समस्या का समाधान करने के लिये लैफ्टीनेन्ट गवर्नर विलियम म्यूर ने जनवरी,फरवरी 1872 में बुन्देलखण्ड के क्षेत्रों का दौरा किया ।[1] अपनी यात्रा के समय उसने इस बात को आवश्यक माना कि बहुत बड़ी संख्या में जो जमीन कृषकों के हाथ से निकलकर ऋणदाताओं के हाथ में जा रही है उस पर रोक लगानी चाहिए और इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिये एक बिल पास करने का निश्चय किया । विलियम म्यूर ने उसी समय झाँसी के कमिश्नर कालविन को इस समस्या की जाँच-पड़ताल करते हुये एक विस्तृत रिपोर्ट देने को कहा था । फलतः मार्च 1874 में यह रिपोर्ट पेश की गई जिसमें यह प्रस्तावित किया गया कि सरकार कोई ऐसा कानून पास करे जिससे लोग भूमि ऋणदाताओं को न बेच सकें ।

अनेकों जाँच-पड़ताल के बाद 1876 में पोर्टर नामक अधिकारी को नियुक्त किया गया जिसे मऊ,गरौठा और मोंठ में जाँच का कार्य सौंपा गया । इन तहसीलों में ही सबसे अधिक भूमि का हस्तान्तरण हुआ था ।[2] पोर्टर अपनी रिपोर्ट दे भी नहीं सका था कि इसी बीच उसका

1- जम्पे और मेस्टन,झाँसी सेटिलमेंट रिपोर्ट 1892(फारवर्ड नोट)पृ0-55.
2- वही.

स्थानान्तरण हो गया और उसके स्थान पर लाटाच नामक अधिकारी ने अपनी विस्तृत रिपोर्ट बनाकर लेफ्टीनेन्ट गवर्नर को प्रेषित की । इसमें यह कहा गया कि इन तीनों परगनों में 16•5 लाख रुपये का ऋण किसानों पर था जिसे न दे सकने के कारण लोगों ने अपनी भूमि ऋणदाताओं को बेच दी है ।[1]

झाँसी इन कम्बर्ड स्टेट्स एक्ट 1882 :

झाँसी जिले में भूमि का हस्तान्तरण रोकने के लिये सरकार ने 1882 का कानून पास किया । इसी तरह का कानून सिन्ध में भी पास हो चुका था । इसमें यह व्यवस्था कर दी गई कि किसानों द्वारा ली गई ऋण का वास्तविक ब्यौरा तैयार करने के लिये तथा उसका भुगतान करने के लिये एक मजिस्ट्रेट की नियुक्ति की जाय जो गिरवी रखी हुई भूमि के अन्तर्गत् या तो उसकी आमदनी से ऋणदाता के कर्ज का भुगतान करेगा अथवा उस भूमि का एक भाग ऋणदाता को देकर शेष हिस्सा उसी किसान को दे दिया जायेगा ।[2] इसप्रकार 1882 के कानून से स्पेशल जज के रूप में इंक्न्स की नियुक्ति की गई,लेकिन इस कानून से भी भूमि का हस्तान्तरण बन्द नहीं हुआ । गरीबी का प्रकोप और आर्थिक तंगी निरन्तर बढ़ रही थी । फलत:सरकार ने बाध्य होकर भूमि हस्तान्तरण एक्ट पास किया जिसमें यह व्यवस्था की गई कि यदि कोई किसान अपनी भूमि बेचना चाहता है तो वह उस भूमि

1- इम्पे और मेस्टन,झाँसी सेटिलमेंट रिपोर्ट 1892 [फारवर्ड नोट] पृ056-57•
2- वही•

को किसी कृषक को ही बेच सकेगा ।[1] इस प्रकार बुन्देलखण्ड के जिलों में यह व्यवस्था कर दी गई, लेकिन तब तक अनेकों किसानों ने अपनी भूमि बेच डाली थी और वे गरीबी, भुखमरी के शिकार हो गये थे ।

विभिन्न आपराधिक जातियों का उदय :

आर्थिक समस्याओं से ग्रस्त तथा अपनी भूमि से वंचित होने के कारण बुन्देलखण्ड में अनेकों आपराधिक जातियों का उदय हुआ । इनमें ललितपुर के सनौरिया अथवा उठाईगीरा प्रमुख थे । ललितपुर के बीर और सनवाहा नामक गाँवों में इनकी काफी संख्या थी । इसके अतिरिक्त ओरछा रियासत तथा दतिया के कुछ गाँव में भी ये अपराधी निवास करते थे । परम्परा के अनुसार इस क्षेत्र में भग्गा, बंजारा के उपद्रव को समाप्त करने के लिये किसी मुगल सम्राट ने सनौरिया ब्राम्हणों को इनाम के लिये दो गाँवों की जमीन दे दी थी । यही गाँव बीर और सनवाहा के नाम से प्रसिद्ध है ।[2] यद्यपि इस कथानक की ऐतिहासिकता ज्ञात नहीं होती, किन्तु ललितपुर में अनेकों परिवार के लोग यह दावा करते हैं कि भग्गा, बंजारा के मारने के उपलक्ष्य में उन्हें उपहार स्वरूप जमीन प्राप्त हुई थी ।[3] 1858 में चन्देरी के सुपरिन्टेन्डेन्ट मेजर हैरिस ने भी इन गाँवों का उल्लेख किया है ।[4]

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एन0, झाँसी गजे0 1909, पृष्ठ-154.
2- प्लाउडिन डब्ल्यू0सी0, सेन्सस आफ द नार्थ वेस्ट प्राविन्सेस आफ इण्डिया, भाग-1, इलाहाबाद 1867, पृष्ठ-87.
3- सिंह प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, भाग-1, चित्रलेख प्रेस, वाराणसी सम्वत् 1985, पृष्ठ-209.
4- वही.

ललितपुर के उठाईगीरों के बारे में एक दूसरा कथानक इस प्रकार है कि सनोरिया ब्राम्हणों को इसलिये अपनी जाति से निकाल दिया गया था, क्योंकि रावण के वध के बाद रामचन्द्रजी ने जो भोज दिया था उसमें इन सनोरिया ब्राम्हणों ने भोजन किया था । इस ब्रम्ह हत्या वाले भोज में खाना-खाने के कारण उन्हें जाति से निकाल दिया गया ।[1] जाति से निष्कासित होने के बाद उन्होंने अपराध करना प्रारम्भ कर दिया । वास्तव में सनोरिया कोई एक जाति नहीं थी बल्कि चोरों का एक गिरोह था जिसमें अपराधी प्रवृत्ति के लड़कों को भर्ती किया जाता था और इसमें बनिया, चमार, मेहतर आदि सभी जातियों के लोग थे । सनोरिया का पुत्र सनोरिया ही होता था । इस प्रकार यह जाति विकसित हुई । इन लोगों द्वारा किये जा रहे अपराधों में मुख्यत: चोरी होती थी जो प्राय: दिन में की जाती थी । इन लोगों ने यह शपथ ले रखी थी कि घर जलाने तथा अन्य किसी प्रकार की कत्ल आदि के अपराध वे प्राय: नहीं करेंगे । अपने व्यवसाय संहिता के आधार पर वे अपने निवास क्षेत्र से 100 मील दूरी पर जाकर ही अपराध किया करते थे और सम्भवत: ये उत्तर दिशा की ओर जाते थे ।[2] 1865 में यह अनुमान किया गया कि 1872 की जनगणना तक यह जाति समाप्त हो जायेगी, लेकिन आश्चर्य का विषय तो यह है कि इसका धीरे-धीरे विस्तार होने लगा ।[3] 1874 की एक रिपोर्ट से यह पता चलता है कि इस अपराधी जाति ने पूरे देश में अपने केन्द्र खोल

1- सिंह प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, भाग-1, हितचिन्तक-प्रेस, वाराणसी, सम्वत् 1985, पृष्ठ-209.

2- वही; पृष्ठ 209-210.

3- ग्राउजिन डब्ल्यू०सी०, तेन्सस आफ द नार्थ वेस्ट प्राविन्सेस आफ - इण्डिया, भाग-1, इलाहाबाद 1867, पृष्ठ-87.

रखे हैं तथा कलकत्ता, वर्दवान, राजमहल, बम्बई, बड़ौदा, अहमदाबाद और अमरावती में इनके मुख्य केन्द्र हैं। इन स्थानों पर चोरी से लाये गये सामानों की बिक्री की जाती है।[1]

झांसी जिले के अलावा ये अपराधी ओरछा, बानपुर और दतिया में भी फैले हुये थे। ओरछा में इनकी संख्या 4000, बानपुर में 300 और दतिया में 300 के लगभग थी।[2] 1874 ई0 में ओरछा रियासत में एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की गई जो उन गाँवों की निगरानी किया करते थे जहाँ पर ये जातियाँ निवास करती थीं।[3] 1864 से 1874 के बीच इन जातियों को पुलिस निगरानी के अन्तर्गत रखा गया। 1883 में अंग्रेज सरकार ने इस बात का प्रयास किया कि उन्हें सरकारी जमीन देकर बसा दिया जाय, किन्तु इन जातियों ने अपना अपराध नहीं छोड़ा और यह योजना अधूरी रह गई।[4]

बुन्देला जमींदारों का आर्थिक पतन तथा बुन्देलखण्ड में डकैती का प्रारम्भ :

ब्रिटिश शासनकाल में आर्थिक शोषण का सबसे दुःखद परिणाम इस क्षेत्र में डकैती जैसी आपराधिक प्रवृत्तियों के जन्म के रूप में देखने को मिलता है। कठोर राजस्व नीति तथा प्राकृतिक आपदाओं ने इस क्षेत्र के कृषकों को तो परेशान किया ही, साथ ही साथ बड़े-बड़े जमींदार

1- सिंह प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, भाग-1, हितचिन्तक-प्रेस, वाराणसी, सम्वत् 1985, पृष्ठ 210.

2- वही तथा ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0, झाँसी गजे0 1909, पृ0 99-100.

3- वही.

4- वही.

भी इससे अप्रभावित नहीं रहे । बुन्देलाओं की बहादुरी,साहस और प्रभाव के नाम से विख्यात,बुन्देलखण्ड अंग्रेजी काल में खेती के संकट में आ गया । आर्थिक संकट के कारण इन बुन्देला जागीरदारों ने धीरे-धीरे अपनी जमीन ऋणदाताओं को बेच दी ।[1] इन जमींदारों के परम्परागत शान-शौकत में आर्थिक संकट के बावजूद भी कोई कमी न आयी ।[2] फलतः अपव्यय तथा शान-शौकत यथावत जारी रहा और जमीन से वंचित होने के बाद इन ठाकुरों ने अपनी जीविका-पूर्ति का सहारा डकैती को बना लिया । ललितपुर जहाँ कि बुन्देला ठाकुरों का अधिक प्रभाव रहा,सबसे अधिक इन अपराधों से ग्रस्त रहा और 1903 में झाँसी के तीसरे बन्दोबस्त के समय बन्दोबस्त अधिकारी पिम ने लिखा था कि "पिछले 40 वर्षों के अन्तराल में केवल ललितपुर में ही 70 हजार एकड़ भूमि कृषकों तथा जमींदारों के हाथ से निकल कर जैनियों,मारवाड़ियों तथा ऋणदाताओं के हाथ में आ गई । इनमें सबसे अधिक भूमि का हस्तान्तरण बुन्देला जमींदारों का ही हुआ।"[3]

इस असीम गरीबी के दूरगामी परिणाम निकले । फलतः बुन्देलाओं ने डकैती डालना प्रारम्भ कर दिया ।ललितपुर में यह अपराध चरम सीमा पर था । 1909 में ड्रेक ब्रोक मैन ने लिखा था कि "ललितपुर सब डिवीजन के गाँवों में यह अपराध पूरी तरह से विकसित हो चुका है । सर्वप्रथम 1871 में[4] दलीपसिंह और रणधीरसिंह

1- पिम ए०डब्ल्यू०,झाँसी सेटिलमेन्ट रिपोर्ट,इलाहाबाद 1907,पृ0-9.
2- वही.
3- वही.
4- झाँसी गजे0,इलाहाबाद 1909, पृष्ठ-128.

के नेतृत्व में ललितपुर में डाकुओं के गिरोह का गठन हुआ था ।[1] दलीप सिंह जो जुलाई 1871 में ललितपुर जेल में एक कैदी था, जब किसी तरह वहाँ से भाग निकला और तत्पश्चात् उसने ललितपुर सब डिवीजन के विजयपुर नामक ग्राम के रणधीर सिंह से सम्पर्ककर इस अपराध को और आगे बढ़ाने लगा । रणधीर सिंह भी सेन्ट्रल जेल, इलाहाबाद में एक कैदी था, किन्तु वहाँ से एक दूसरे कैदी मंगलिया के साथ भाग निकला था । इस प्रकार दलीपसिंह और रणधीर सिंह दस्यु नेताओं ने ललितपुर के जंगलों में घुमकर डकैती डालना प्रारम्भ किया । उस समय प्रारम्भ में इस दस्यु दल में केवल 9 लोग थे । 1872 में सर्वप्रथम ललितपुर में ही डकैती डालकर गनेश कुँवर नामक विधवा महिला का कत्ल करते हुये उसके तीन पुत्रों को मार डाला ।[2] इसके थोड़े ही दिन बाद इन डकैतों ने ललितपुर के ही 4 घरों में डकैती डाली तथा लूटपाट की । 6 फरवरी से लेकर 12 फरवरी 1873 के 6 दिन के अन्तर्गत् ही इस पार्टी ने अनेकों अन्य डकैतियाँ डालीं । उसी महीने के 17 तारीख को ललितपुर के जैनी बनिया को लूटा गया तथा उसका वध कर दिया गया । 14 फरवरी को दलीप सिंह को ललितपुर पुलिस ने धोखे के साथ बन्दी बना लिया तथा उसे मार डाला ।[3] डकैतों का गिरोह 1875 के बाद और विकसित होने लगा । 1889 तक आते-आते यह समस्या और अधिक गम्भीर होने लगी । 1889 के फरवरी और सितम्बर के महीनों में 36 डकैती बांसी में तथा 14 डकैती बानपुर तथा तालबेहट के गाँवों में डाली गईं ।[4]

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी०एल०, झाँसी गजे०, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ-159.
2- वही. पृष्ठ 156-157.
3- वही.
4- वही, पृष्ठ 158.

उपरोक्त अपराध का उन्मूलन करने के लिये सरकार ने यूरोपीय अधिकारी लायड के नेतृत्व में पर्याप्त पुलिस का प्रबन्ध किया ।[1] इसके अतिरिक्त ओरछा तथा ग्वालियर की रियासतों ने भी इस कार्य में अंग्रेज सरकार की सहायता की ।[2] इन रियासतों में यह नियम बना दिया गया कि कोई भी व्यक्ति बिना लाइसेन्स के हथियार नहीं रख सकेगा ।[3] इसके परिणाम स्वरूप ललितपुर में 1574 बन्दूकें, 1344तलवारें तथा 274 अन्य धारदार हथियार जब्त कर लिये गये ।[4] इसके अलावा 1891 में बुन्देलखण्ड से डकैती उन्मूलन के लिये ए०सी०हाकिम को विशेष अधिकारी बनाकर कार्य-भार सौंप दिया गया । इन दमनात्मक तरीकों के भी कोई विशेष अच्छे परिणाम नहीं निकले और बुन्देलखण्डमें डकैती का तेजी से विस्तार होने लगा जो इस क्षेत्र के आर्थिक उत्पीड़न का ही परिणाम था ।

डकैतों के अलावा बुन्देलखण्ड में अन्य आपराधिक जातियां थीं, जैसे- कंजर, विछनी आदि जातियां जो कि आर्थिक रूप से असहाय होने के कारण अपनी उदर-पूर्ति के लिये चोरी तथा अन्य अपराधों को ही सहारा बना रखा था । ये जातियां जो कि हिन्दू जाति के निम्न वर्ग से संबंधित थीं, इन्हीं जातियों ने इन छोटे-मोटे अपराधों को स्वीकार कर लिया ।

बुन्देलखण्ड के मिशनरियों ने इन्हीं निम्न किस्म की अपराधी जातियों को सुधारकर शिक्षित करके उन्हें इसाई धर्म में दीक्षित करने का कार्य किया । नौगांव में जब डेनिया शिक्षार ने मिशन की स्थापना की थी

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी०एल०, झांसी गजे०, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ-158-159.
2- वही.
3- वही.
4- वही.

उसके थोड़े ही दिन पश्चात् वहीं पास में स्थित कंजरपुर नामक गाँव में मिशन ने स्कूल खोलकर उन्हें शिक्षित करने का कार्य किया था ।[1] कंजरपुर के निवासी अधिकांशत: अपराधी थे जो चोरी तथा लूटपाट आदि किया करते थे । इन्हें इसाई धर्म में दीक्षित करने के लिये मिशनरियों ने जो मानवीय तरीके अपनाये उनमें चिकित्सा तथा शिक्षा का प्रसार-कार्य प्रमुख था और इन्हीं तरीकों के माध्यम से बुन्देलखण्ड में इसाई मिशनरियों ने कंजरपुर के गाँव में बसी हुई अपराधी जातियों को इसाई धर्म में दीक्षित किया ।

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों के प्रति उत्पन्न घृणा की भावना :

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासन 1803 की बेसीन की सन्धि से प्रारंभ हुआ जो 1947 तक चलता रहा । इस लम्बी अवधि में अंग्रेजी शासन काल का बुन्देलखण्ड में सबसे विपरीत प्रभाव पड़ा । कठोर राजस्व नीति तथा सामाजिक आर्थिक उत्पीड़न ने लोगों के दिल में ब्रिटिश शासन की निर्मम नीति तथा आतंक की छाप छोड़ दी । 1857 में हुये दमन को तो लोग आज भी याद करते हैं । इसकी प्रतिक्रिया के रूप में लोगों में अंग्रेजी शासन काल के प्रति घृणा की भावना पैदा हुई । यहाँ तक कि 1858 में जबकि शान्ति स्थापित हो गई थी उस समय भी झाँसी के कमिश्नर मेजर पिन्कने ने अपने एक गोपनीय पत्र में[2] उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त के सेक्रेटरी को सूचित करते हुये लिखा था कि "इस जिले के लोग अब भी हम लोगों से दूर

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ-32.

2- लेटर नम्बर 48, झाँसी 22 मार्च, 1858.

रखते हैं तथा वे हमारे पास नहीं आना चाहते हैं, बुन्देलखण्ड के लोगों की यह प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती ही चली गई और लोगों ने अंग्रेजों को कुत्ते की तरह घृणा करना शुरू कर दिया । ऐसे शासन में जन सहयोग का नितान्त अभाव था ।

ब्रिटिश शासन द्वारा बुन्देलखण्ड में मिशनरियों की मदद :

उपरोक्त वातावरण में किसी भी शासन का अधिक दिनों तक निर्भर रहना सम्भव नहीं था । अंग्रेजी अधिकारी इस बात को समझते थे कि ऐसे तरीके अपनाये जाएं,ताकि लोगों के दिलों में जो कटुता की भावना भरी हुई है वह समाप्त की जा सके । यह कार्य सरकारी अधिकारी सीधे तौर पर नहीं कर सकते थे । इसलिये उन्होंने अपरोक्ष रूप में मिशनरी धर्म-प्रचारकों को सहायता देकर उनके माध्यम से यह कार्य करना चाहते थे । 1857 में जो दमन हुआ था तथा परवर्ती युग में जो उत्पीड़न हो रहा था उसके प्रति बुन्देलखण्ड के लोगों में जो असन्तोष अन्दर ही अन्दर पनप रहा था उसे बहुत ही कुछ कम करने में मिशनरी सहायक हो सकते थे । यही कारण था कि ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट जो नौगांव में ही रहा करता था ने डेनिया फिशर को समय-समय पर सहायता प्रदान की,ताकि उसके माध्यम से बुन्देलखण्ड के लोगों का विश्वास प्राप्त किया जा सके । इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि इस क्षेत्र में मिशनरियों को मदद देने के पीछे सरकार की नीति का उद्देश्य यह था कि उनके माध्यम से बुन्देलखण्ड के लोगों का खोया हुआ विश्वास पुनःप्राप्त किया जा सके ।

बुन्देलखण्ड में मिशनरियों को शासन द्वारा अपरोक्ष रूप से सहायता दी जाने के पीछे दूसरा उद्देश्य यह था कि इस पिछड़े हुये क्षेत्र में जहां कि लोग गरीबी,भुखमरी आदि बुराइयों से ग्रस्त हैं तथा साथ

ही साथ अशिक्षित हैं और हिन्दू वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत हरिजन तथा निम्न जातियाँ जो अत्यन्त ही सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित हैं उन्हें मिशनरियों के द्वारा समझा-बुझाकर व चिकित्सा तथा अन्य सेवाओं के द्वारा ईसाई बना लिया जाय। ऐसा करने से नये धर्म में दीक्षित लोग ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादार होंगे तथा उनकी विश्वसनीयता पर सरकारी अधिकारियों को कार्य करने में सुविधा होगी। इस प्रकार एक वफादार भारतीय प्रजा के निर्माण की आवश्यकता जो पहले से ही समझी जा रही थी उसकी अब पूर्ति हो सकेगी। इसीलिये इन मिशनरी एजेन्सियों द्वारा बुन्देलखण्ड के इस पिछड़े हुये भू-भाग पर ईसाई धर्म के प्रचार व प्रसार के लिये जन सहयोग प्राप्त करना नितान्त आवश्यक था और इस कार्य को ईसाई मिशनरियों के द्वारा ही किया जा सकता था। वास्तव में इन मिशनरियों ने जो कुछ भी किया उसके पीछे उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य की संस्थाओं का विकास करना था, ताकि यह अधिक टिकाऊ बन सके।

बुन्देलखण्ड में ईसाई मिशनरियों द्वारा अपनाई गई कार्य-शैली एवं नीति:

भारत के इस हृदय प्रदेश बुन्देलखण्ड में ईसाई धर्म के प्रचार तथा प्रसार का सुनियोजित ढंग से कार्य करने का श्रेय अमरीका की महिला मिशनरियों को है[1] इन्हीं में से डेलिया फिशर ने 1892 ई0 में फ्रेन्डस मिशन की ओर से ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिये बुन्देलखण्ड आने का निश्चय किया, क्योंकि यह क्षेत्र सर्वाधिक पिछड़ा हुआ था इसके साथ ही यह भारत के केन्द्र में स्थित था और यहाँ जाति-प्रथा की दृष्टि से हिन्दू समाज की निम्न जातियों का प्रतिशत भी अधिक था। साथ ही

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग [भूमिका], पृष्ठ-13.

साथ बुन्देलखण्ड में अनेकों अंग्रेजी छावनियां भी थीं जहां केन्द्र बनाकर इस कार्य में अंग्रेज अधिकारियों की मदद भी प्राप्त की जा चुकी थी । बुन्देलखण्ड में नौगांव ब्रिटिश सेना की एक बड़ी छावनी थी जिसे सर्वप्रथम डेलिया फिशर ने अपने कार्य के क्षेत्र के रूप में चुना ।[1] । अप्रैल, 1896 को डेलिया फिशर ,एस्थर वार्ड और मर्या नामक तीनों महिलाओं का दल नौगांव आया । जहां फ्रेण्ड्स मिशन की स्थापना हुई ।[2] बुन्देलखण्ड की भीषण गर्मी तथा यातायात की सुविधाओं के अभाव में भी इन महिला मिशनरियों ने ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये इसी क्षेत्र को चुना,क्योंकि उन्हें यह ज्ञान था कि यह क्षेत्र आर्थिक संकट की स्थिति से गुजर रहा है जहां लोगों की मदद करके धर्म-परिवर्तन में आसानी से प्रेरित किया जा सकता था । जिस समय डेलिया फिशर का नौगांव आगमन हुआ उस समय बुन्देलखण्ड अकाल के प्रभाव से ग्रस्त था ।[3] बीमारी के कारण अधिकांश संख्या में लोगों की मृत्यु हो रही थी । 1891 से लेकर 1901 के बीच यहां के 9% लोग मर गये ।[4] अत:चिकित्सा सेवाओं के द्वारा लोगों की सहायता करके और उनका दिल जीतकर उन्हें नये धर्म की ओर आकृष्ट करने का कार्य इन महिला मिशनरियों ने किया ।

1- ओहियो ईयरली मीटिंग मिनट्स,1896, पृष्ठ-45.

2- वही.

3- वही.

4- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ-17.

बुन्देलखण्ड में फ्रेण्ड्स मिशन ने जिस कार्य-शैली और नीति का पालन किया वह वास्तव में अनाथालय खोलकर, गरीब तथा अनाथ बच्चों की सेवा और सहायता करके उन्हें नये धर्म में दीक्षित करना था ।[1] यह कहना गलत नहीं होगा कि मिशन की नीति प्रारम्भिक वर्षों में अनाथालय से ही जुड़ी हुई थी । 1896 में जब नौगांव में फ्रेण्ड्स मिशन की ओर से जब डेलिया फिशर ने अनाथालय खोला उस समय यह कार्य उपयुक्त अवसर पर किया गया । अकाल के प्रकोप के कारण भुखमरी और गरीबी के रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करने वाले लोगों का जीवन असहनीय हो रहा था । स्वयं अपना पेट न भर पाने वाले लोग अपने शिशुओं को अनाथालय में छोड़कर चले जाते थे जिससे शीघ्र ही नौगांव अनाथालय में अनाथ शिशुओं की संख्या बढ़ने लगी । इन महिला मिशनरियों ने इन बच्चों का पालन-पोषण किया तथा उनको ईसाई बनाना प्रारम्भ कर दिया । धीरे-धीरे यहां पलने वाले बच्चों की संख्या 500 हो गई ।[2] अनाथालय में काम करने वाली सेविकायें जो स्थानीय महिलाएं होती थीं उन्हें नियुक्त कर लिया जाता था उनमें सबसे पहली महिला सेविका पंडिता रमाबाई थी और इसे भी ईसाई धर्म में दीक्षित कर लिया गया था ।[3] अनाथालयों के खोलने के पीछे हिन्दू समाज की उत्पन्न संकीर्णता का गहन अध्ययन इन महिला मिशनरियों ने किया था । उन दिनों बुन्देलखण्ड में बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित थी, फलतः मृत्यु की दर अधिक होने के कारण अधिकांश स्त्रियां कम उम्र में ही विधवाएं हो जाती थीं । विधवा हिन्दू समाज

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ-17.
2- वही. पृष्ठ-18.
3- वही.

की सबसे उपेक्षित कड़ी होती थी । उसके लिये दो ही रास्ते होते थे, या तो वह मृतक पति की चिता के साथ जल जाए अथवा वह आजीवन बाल मुड़ाकर एक निराश्रित महिला के रूप में जीवन व्यतीत करे । इतना ही नहीं था बल्कि कम उम्र होने के नाते इन बाल-विधवाओं का सम्पर्क प्राय:समाज के उच्च वर्ग के लोगों से हो जाता था जो अनैतिक ढंग से सम्बन्ध स्थापित करते थे । इस सम्बन्ध से जो सन्तान होती थी उसके लिये समाज में कोई स्थान नहीं था । हिन्दू समाज उन्हें स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं था । अत:ऐसी सन्तान अवैध सन्तान होती थी । प्राय:लोग इन्हें अनाथालयों में छोड़ आते थे,क्योंकि उन्हें यह आशा रहती थी कि इन मिशनरी अनाथालयों में पलने वाले शिशुओं की अच्छी तरह देख-रेख की जायेगी । बुन्देलखण्ड की रियासतों में तथा अंग्रेजी क्षेत्रों में ऐसे अनैतिक सम्बन्धों से उत्पन्न सन्तानों की संख्या बहुत अधिक होती थी ।

ऐसी परिस्थिति में बुन्देलखण्ड की सैनिक छावनी वाले इलाके नौगांव में अनाथालय की स्थापनाकर डैनियल फिलर ने इसाई धर्म के प्रचार को तेज किया । अनाथालय में पलने वाले बच्चों की देख-रेख करने के लिये पंडिता रमाबाई के अलावा चारलोटे बाई नामक एक अन्धी महिला को भी नियुक्त कर लिया गया[1] जो लखनऊ की निवासी थी और अन्धी होने के कारण हिन्दू समाज से उपेक्षित कर दी गई थी । इस वृद्ध महिला ने नौगांव के अनाथालय में पलने वाले शिशुओं की सहानुभूति-पूर्वक सेवा करके उन्हें माँ की तरह प्यार दिया । अनाथालय की स्थापना

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ-17.

की नीति बुन्देलखण्ड में शीघ्र ही और तेजी से आगे बढ़ाई जाने लगी। हरपालपुर,छतरपुर तथा उन तमाम स्थानों पर जहाँ-जहाँ भी शाखाएं खुलती थीं,वहाँ अनाथालयों की व्यवस्था की जाती थी। प्रारम्भ के 40 वर्षों तक फ्रेन्ड्स मिशन ने अनाथालयों के द्वारा ही ईसाई धर्म के प्रचार का कार्य किया।

<u>जन आन्दोलन की नीति :</u>

1896 से लेकर 40 वर्षों तक मिशन की नीति अनाथालय पर केन्द्रित थी,किन्तु इसी बीच अनाथालय में पलने वाले बच्चे काफी बड़े हो चुके थे[1] अब उन्हें विभिन्न प्रकार के रोजगारों की शिक्षा दी जाने लगी जैसे-बढ़ईगीरी,जूता-निर्माण,कपड़े की सिलाई आदि हस्त शिल्प की ट्रेनिंग देकर उन्हें आत्म निर्भर बनाया जाने लगा था। इसके साथ ही साथ अनाथालय में पलने वाले बच्चे युवावस्था को प्राप्त हो गये थे। अत:उनका विवाह कराकर उन्हें विभिन्न रोजगारों में लगा दिया गया। इस परम्परा में बुन्देलखण्ड में व्यवस्थित रूप से ईसाई धर्म तथा समाज का गठन होने लगा। धीरे-धीरे बुन्देलखण्ड के वे ही अनाथ बच्चे जो अब काफी बड़े हो गये थे उनको आगे करते हुये ईसाई धर्म के प्रचार के लिये जन-आन्दोलन किया गया।[2] इस नीति के अन्तर्गत् पिछड़ी हुई जातियों,जन-जातियों तथा अपराधी जातियों के बीच जाकर शिक्षा तथा चिकित्सा-सुविधाओं को उपलब्ध कराकर एवं धर्म परिवर्तन द्वारा उन्हें समाज में उच्च स्थान दिलाने का वायदा कर फ्रेन्ड्स मिशन के स्थानीय धर्मावलम्बियों ने

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग (भूमिका)•पृष्ठ-14•

2- वही•

इसाई धर्म के प्रचार का यह रास्ता अपनाया । महिला मिशनरी कैटिल ने इसी पद्धति का पालन किया जिसमें प्रमुख रूप से इसाई धर्म का प्रचार करना शामिल था ।[1] हम यह देख चुके हैं कि नौगाँव के निकट स्थित कंजरपुर गाँव[2] जिसमें निम्न तथा पिछड़ी हुई जातियों का बाहुल्य था उसे मिशनरियों ने कार्य के क्षेत्र के रूप में चुना और उन्हें इस दिशा में सफलता भी प्राप्त हुई । नौगाँव के पोलिटिकल एजेन्ट की सहायता से और अमरीकी फ्रेण्ड्स मिशन द्वारा प्राप्त किये गये फण्ड के आधार पर शीघ्र ही बुन्देलखण्ड के मिशनरियों ने कंजरपुर में हस्तक्षेप करते हुये काफी संख्या में लोगों को इसाई धर्म में दीक्षित कर लिया । इस कार्य में अमरीकी फ्रेण्ड्स मिशन की ओर से नेतृत्व प्रदान करने का काम किया । नौगाँव मिशन में पलने वाले उन अनाथ बच्चों ने जो धर्म परिवर्तन के बाद काफी बड़े हो चुके थे । अमरीकी मिशनरियों ने पीछे रहकर इन्हीं स्थानीय लोगों के माध्यम से अन्य लोगों को प्रेरित कर नये धर्म में आने की प्रेरणा दी । इनमें विलियम प्रसाद,पंचमसिंह,प्रेमदास तथा याकूब जैसे स्थानीय इसाई कार्य कर्ताओं ने महत्वपूर्ण कार्य किया ।[3] कंजरपुर में इन्हीं लोगों ने सर्वप्रथम प्रवेश कर वहाँ निवास कर रहे अपराधी जातियों तथा निचले वर्ग के लोगों को शिक्षित करने का काम किया ।[4] डेलिया फिशर जो नौगाँव मिशन की सुपरिन्टेन्डेन्ट थी ,[5] ने बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेन्ट से अनुमति

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग [भूमिका],पृष्ठ-14.
2- वही. पृष्ठ-32,
3- वही.
4- वही.
5- वही. पृष्ठ-32.

प्राप्त करके कंजरपुर में अगस्त 1910 में एक स्कूल खोलने का कार्य प्रारम्भ किया जिसमें प्रारम्भ में 8 छात्र थे।[1] प्रेमदास उस स्कूल में जो मिशन वायज स्कूल के नाम से प्रसिद्ध था, प्रति दिन 5 घन्टे तक वहाँ के बच्चों को पढ़ाता था। मिशन की इस सफलता को देखते हुये 1911 में पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल मैकडोनल्ड ने कंजरपुर में एक स्कूल की इमारत के निर्माण का आदेश दिया जिसका सारा खर्च सरकार ने वहन किया।[2] और यह स्कूल चर्च को दे दिया गया, इस प्रकार नौगाँव मिशन में ही पढ़कर तैयार हुये इसाईयों को नेतृत्व देकर इसाई धर्म के प्रचार का कार्य आगे बढ़ाया गया।

शिक्षा तथा चिकित्सा-सुविधाओं द्वारा इसाई मत का प्रसार :

बुन्देलखण्ड में अमरीकी मिशनरियों ने अनाथालय को आधार बनाकर धर्म प्रचार का जो कार्य आगे बढ़ाया था। उसी क्रम में मिशन ने चिकित्सा तथा शिक्षा का विस्तारकर इस कार्य को और सक्रिय रूप से आगे बढ़ाया। बुन्देलखण्ड में शिक्षा अत्यन्त ही पिछड़ी हुई थी और यहाँ पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के आधार पर अंग्रेजी के पठन-पाठन द्वारा इसाई धर्म का और अधिक विस्तार किया जा सकता था। इसके अलावा अंग्रेजी शासन काल में अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों को नौकरी प्राप्त करने में सुविधाएं प्राप्त हो सकती थीं। हम यह जानते हैं कि 1833 में जब अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाया जाने लगा था उस समय गवर्नर जनरल लार्ड

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग (भूमिका), पृष्ठ-32.
2- वही.

विलियम बैंटिंग की कौंशिल में लार्ड मैकाले विधि-सलाहकार था । लार्ड मैकाले ने राजाराम मोहन राय के सहयोग से भारत में अंग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली के प्रारम्भ पर बल दिया । मैकाले को यह आशा थी कि अंग्रेजी पढ़-लिखकर भारतीयों में इसाईयत के प्रति आकर्षण पैदा होगा और लोग इस नये धर्म को स्वीकार करने लगेंगे । नि:सन्देह इसाई मिशनरियों ने जब शिक्षा से पिछड़े हुये इस क्षेत्र में स्कूलों की स्थापना की होगी तो उनके पीछे प्रमुख उद्देश्य इस धर्म का प्रचार ही रहा होगा । इन स्कूलों प्राय: ऐसे शिक्षकों एवं कर्मचारियों को नियुक्त किया जाता था जो इसाई होते थे अथवा रोजगार देकर इसाई बनाने की भावना रही होगी । इसके साथ ही ऐसे स्थानीय इसाई जो मिशन के कार्य में संलग्न थे उन्हें इन शिक्षण संस्थाओं में पठन-पाठन का कार्य देकर रोजगार उपलब्ध कराया जाता था । इतना ही नहीं बल्कि गरीब बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करके उनके संरक्षकों को यह समझाने-बुझाने का प्रयास किया जाता था । चूंकि मिशन ने ही उनके बच्चे को रोजगार के योग्य बनाया है अत:उन्हें यह धर्म स्वीकार कर लेना चाहिए । नि:सन्देह लालच की इस प्रवृत्ति से आर्थिक रूप से पिछड़े हुये तथा उन गरीबों की पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण करने की कामना ने इस धर्म के विकास में पर्याप्त सहयोग दिया ।

इसाई मिशनरियों द्वारा चलाये जा रहे स्कूलों में बाईबिल की शिक्षा देना, ईसा मसीह का जन्म-दिन मनाना तथा इसाई धर्म के रीति-रिवाजों के प्रति जानकारी देना और नैतिक शिक्षा का अध्ययन कराकर इसाई धर्म के शिक्षाओं को लोगों में फैलाने का कार्य इन शिक्षण संस्थाओं ने किया ।

ठीक इसी प्रकार गरीबों तथा असहायों की चिकित्सा का प्रबन्ध करके जरूरतमन्द लोगों को इन अस्पतालों में रोजगार देकर और नर्सों का प्रशिक्षण देकर इन मिशनरियों ने मिशनरी कार्यों को आगे बढ़ाते हुये अधिकतर लोगों को इस धर्म के लिये अपरोक्ष लालच प्रदान किया । ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं,जबकि किसी असहाय व्यक्ति को मुफ्त चिकित्सा-सेवा द्वारा ठीक कर दिया गया और तत्पश्चात् उसे ईसाई बना लिया गया । अंग्रेजी शासन काल में बुन्देलखण्ड में मिशनरियों ने जो अस्पताल खोले हैं उनमें से अधिकांश स्त्रियों तथा बच्चों की सेवा कर उन्हें चिकित्सा सेवाएं उपलब्ध कराना था । इस नीति के पीछे उद्देश्य स्पष्ट था,अर्थात् स्त्रियों के दिमाग पर सेवा-भाव द्वारा ईसाई धर्म की छाप छोड़ना तथा बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर ईसाई धर्म के प्रति सहानुभूतिपूर्ण मन:स्थिति पैदा करने का कार्य इन चिकित्सा सुविधाओं द्वारा कराया गया,ताकि लोग यह समझ सकें कि मिशनरियों ने उनकी बड़ी सेवा की है । अत:उन्हें ईसाईमत स्वीकार कर लेना चाहिए । नि:सन्देह बुन्देलखण्ड मिशन ने शिक्षा और चिकित्सा सेवा द्वारा यह कार्य सफलतापूर्वक किया ।

इस प्रकार अंग्रेजी शासन काल में सरकार की नीति और मिशन की कार्य-शैली द्वारा बुन्देलखण्ड में ईसाई धर्म के प्रचार तथा प्रसार का कार्य सफलतापूर्वक हो सका ।

——:0:——

अध्याय- पंचम्

स्कूलों की स्थापना और प्रबन्ध

बुन्देलखण्ड में 1804 में बेसीन की सन्धि से ब्रिटिश सत्ता की स्थापना हुई थी। प्रारम्भिक वर्षों में अंग्रेजी शासक इस क्षेत्र के जमींदारों, राजाओं तथा महाराजाओं को दबाकर शान्ति व्यवस्था स्थापित करने में ही व्यस्त रहे। चूंकि विदेशी शासक अधिक से अधिक राजस्व की वसूली तथा शोषण में ही रुचि रखते थे अत: स्वाभाविक था कि वे बुन्देलखण्ड के कल्याण अथवा शिक्षा आदि के लिये वे विशेष दिलचस्पी नहीं रखते थे। यही कारण था कि 1804 से लेकर 1858 तक इस क्षेत्र में शिक्षा की व्यवस्था के लिये किसी भी सुनियोजित नीति का पालन नहीं हुआ।

ग्रामीण तथा तहसील स्तर पर स्कूलों की स्थापना :

1858 में विद्रोह समाप्त होने के पश्चात् अंग्रेजी अधिकारियों ने बुन्देलखण्ड के विभिन्न अंचलों में प्राथमिक स्कूलों की स्थापना करनी प्रारम्भ की । इन स्कूलों की स्थापना करके ये सरकारी अधिकारी जनता को यह दिखाना चाहते थे कि सरकार उनका कल्याण चाहती है । झाँसी सम्भाग में सरकार यह प्रयास अधिक से अधिक स्तर पर करना चाहती थी । 1858 में झाँसी, करेरा, पिछोर, मोंठ, गरौठा, मऊ और पंडवाहा में प्राथमिक स्कूल खोले गये ।[1] ठीक इसी तरह कुछ गाँवों में भी ऐसे स्कूलों की स्थापना की गई जिनकी संख्या झाँसी जिले में लगभग 28 थी । इस जिले के विस्तृत क्षेत्र तथा जनसंख्या की दृष्टि से 28 प्राइमरी स्कूल लोगों की आवश्यकता से बहुत कम थे । इसी तरह का प्रयास ललितपुर में भी किया गया, जहाँ ललितपुर, महरौनी और मडौरा में प्राइमरी स्कूलों की स्थापना हुई ।[2] 1861 में कुछ नये तहसील स्कूल चिरगाँव, बरुआसागर और मऊरानीपुर में प्रारम्भ हुये । 1862 तक आते-आते यह देखा गया कि झाँसी जिले में तहसीली स्कूलों की संख्या कुल 11 है ।[3] इसके अतिरिक्त गाँवों में 76 स्कूल स्थापित किये जा चुके थे ।[4] 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक झाँसी जिले में स्कूलों की संख्या 167 हो गई । इसके अलावा 39 प्राइवेट स्कूल भी प्रारम्भ किये जा चुके थे ।[5]

1- पाठक एस०पी०, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 157.
2- ड्रेक ब्रोक मैन डी०एल०, झाँसी गजे०, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 174.
3- वही.
4- वही.
5- वही.

स्त्री-शिक्षा की दशा :

शिक्षा की दृष्टि से बुन्देलखण्ड अत्यधिक पिछड़ा हुआ था, किन्तु स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में यह सर्वाधिक पिछड़ा रहा । इस क्षेत्र में 1866 में सर्वप्रथम स्त्री शिक्षा का प्रारम्भ हुआ,जबकि इसी वर्ष ललितपुर में एक कन्या स्कूल की स्थापना की गई । ललितपुर में इस योजना का स्वागत किया गया और यह सफल रही ।[1] इससे प्रेरित होकर अधिकारियों ने इसी तरह का कन्या विद्यालय झाँसी में भी स्थापित करना चाहा,किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि यह योजना झाँसी में सफल न हो सकी । ऐसा प्रतीत होता है कि 1857 में झाँसी का इतना अधिक दमन कर दिया गया था जिससे यहाँ के लोग सरकारी योजनाओं में असहयोग करने लगे थे । यद्यपि लोगों को कन्याओं की शिक्षा की उपयोगिता भलीभांति ज्ञात थी,किन्तु ब्रिटिश दमन अत्याचार एवं लूट की 1857 की घटना की याद लोगों के दिमाग में ताजा बनी हुई थी । फलत:यहाँ के लोग सरकारी योजनाओं को शंका की दृष्टि से देखने लगे थे । और इसी असहयोग के कारण कन्या विद्यालय की सफलता की सम्भावना भी क्षीण हो गई, लेकिन ललितपुर में यह विद्यालय सफलतापूर्वक कार्य कर रहा था ,इस आधार पर 1872 में झाँसी में पुन:कन्या स्कूल की स्थापना का प्रयास हुआ और इस समय 7 कन्या विद्यालय स्थापित किये गये,लेकिन इस योजना को पुन:लोगों का प्रोत्साहन प्राप्त नहीं हुआ । 4 वर्ष की अवधि के भीतर ही इस स्कूल में लड़कियों की संख्या 116 से अधिक नहीं पहुँची । परिणाम यह हुआ कि कम संख्या के कारण 7 में से 6 स्कूलों को बन्द करना पड़ा ।

1- ड्रेक ब्रोक मैन डी0एल0, झाँसी गजे0, इलाहाबाद 1909, पृष्ठ 174.

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लोगों ने कन्या विद्यालय के महत्व को समझा । इस समय तक ब्रिटिश दमन की याद भी लोगों के मस्तिष्क से विस्मृत हो रही थी । अत: झाँसी तथा ललितपुर को मिलाकर 146 कन्या विद्यालय[1] स्थापित किये गये । झाँसी सम्भाग के अन्य जिलों में विशेषत: बाँदा तथा जालौन में भी यही स्थिति रही ।

अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों के प्रति लोगों का झुकाव :

इसके साथ ही सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि लोग अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूलों में भेजना अधिक पसन्द करने लगे थे । अत: तहसील तथा गाँव स्तर के स्कूल अधिक महत्व नहीं पकड़ सके । 1867 में गाँवों में स्कूलों को इसलिए घटा देना पड़ा, क्योंकि वहाँ लोग बहुत कम संख्या में पढ़ने आते थे ।[2] अंग्रेजी भाषा के स्कूल धीरे-धीरे अधिक महत्व के समझे जाने लगे थे । फलत: मऊ में एक प्राइवेट अंग्रेजी स्कूल स्थापित किया गया जैसाकि ललितपुर और झाँसी में यह स्कूल पहले से ही चल रहे थे ।

बुन्देलखण्ड के निवासियों को भारत के अन्य क्षेत्रों के लोगों की ही भाँति ज्ञात हो चुका था कि अब रोजगार के लिये अथवा किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिये अंग्रेजी पढ़ना आवश्यक हो गया है । तहसील तथा ग्रामीण स्तर के स्कूलों में साधारण साहित्य तथा विज्ञान की शिक्षा हिन्दी में दी जाती थी,[3] जबकि दूसरी ओर

1- इम्पीरियल गजे०आफ इण्डिया, भाग-2, पृष्ठ 98.
2- पाठक एस०पी०, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 154.
3- वही.

अंग्रेजी पढ़कर लोगों को सरकारी कार्यालयों में नौकरी आदि प्राप्त करने की सम्भावनाएं अधिक बढ़ जाती थीं ।

मिशनरियों द्वारा बुन्देलखण्ड में स्कूलों की स्थापना :

यह भली भांति ज्ञात है कि बुन्देलखण्ड में अनेकों अंग्रेजी छावनियां थीं । यहां कार्यरत् सैनिक अधिकारियों के बच्चों को पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के आधार पर अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने की आवश्यकता महसूस की जा रही थी । साथ ही झांसी, रेलवे का एक प्रमुख केन्द्र था । यहां भी काफी संख्या में ईसाई नौकरी आदि में आ चुके थे जिनके बच्चों की शिक्षा के लिये भी अंग्रेजी स्कूलों की स्थापना आवश्यक थी । इसके साथ ही यूरोप के विभिन्न ईसाई मिशनरी भारत के पिछड़े क्षेत्रों में जाकर स्कूल आदि की स्थापना के द्वारा मानवीय कल्याण के कार्य करते हुये लोगों का दिल जीत कर अपने धर्म का प्रचार तथा प्रसार करना चाहते थे । पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार के पीछे ब्रिटिश शासकों का उद्देश्य यह भी था कि इस देश में अंग्रेजी पढ़े-लिखे एक ऐसे वर्ग का निर्माण किया जाय जो रक्त में तो भारतीय हो, किन्तु जिनके विचार तथा सोचने के तरीके अंग्रेजों जैसे हो । साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत में पढ़े-लिखे सस्ते क्लर्कों की आवश्यकता थी । अतः इन तमाम कारणों से लार्ड-विलियम बैंटिक के समय अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया गया ।

ईसाई मिशनरियों ने तो बहुत पहले से ही यह कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था । 1793 में विलियम कैरी नामक पादरी जो पहले जूते बनाया करता था, वह कलकत्ता पहुँचा तथा बंगाली भाषा

में लोगों में ईसाई धर्म का प्रचार करने लगा ।[1] 18वीं शताब्दी में काफी समय तक दक्षिण भारत में मिशनरी कम्पनी में कार्यरत ईसाईयों के बच्चों को शिक्षा देने के लिए अंग्रेजी स्कूलों की स्थापना के लिए प्रयास कर रहे थे ।[2] कम्पनी अपने सामुद्रिक जहाजों में इन मिशनरियों से भारत में आने तथा जाने के लिए किसी भी प्रकार का किराया नहीं लेती थी । इन मिशनरी स्कूलों को सरकार की ओर से सहायता तथा सुविधाएं भी प्राप्त थीं । मद्रास की सरकार ने वहाँ चलाये जा रहे मिशनरियों के कुछ स्कूलों को सरकारी मदद देना प्रारम्भ कर दिया था । ऐसा ही प्रयास बंगाल में भी किया जा रहा था । इस प्रकार समय-समय पर अधिक से अधिक मिशनरी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आकर बस गये तथा वहाँ स्कूल आदि प्रारम्भ कर ईसाई मत प्रचार का कार्य करने लगे ।

बुन्देलखण्ड में माल्टा के मिशनरियों द्वारा शिक्षा का प्रारम्भ :

बुन्देलखण्ड सम्भाग में माल्टा के मिशनरियों ने धर्म प्रचार का कार्य अपने हाथ में लिया था । इस कार्य को क्रियान्वित करने के लिये उन्होंने न केवल चर्च,प्रार्थना-गृह,धर्माध्यक्ष,निवास,अनाथालय आदि के निर्माण तथा देख-रेख का कार्य ही किया,बल्कि स्कूलों की स्थापनाकर लोगों को पाश्चात्य शिक्षा का ज्ञान देते हुये ईसाई धर्म का प्रचारकर धर्म-प्रचार करना शुरू किया । इस दिशा में झाँसी में उन्होंने एक स्कूल खोला जो बालकों के लिए था ।

1- द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया,भाग-6,पृष्ठ 98-99.
2- वही.

क्राइस्ट द किंग स्कूल :

यह स्कूल झाँसी छावनी के अन्तर्गत् स्थित है । जिसे 16 जनवरी, 1940 को पट्टे की जमीन लेकर प्रारम्भ किया गया था ।[1] 1940 ई० में जब इसका प्रारम्भ हुआ उस समय केवल 26 लड़के ही इस स्कूल में पंजीकृत थे । इसके प्रारम्भ होने के 4 महीने के ही अन्तर्गत् छात्रों की संख्या दो गुना हो गई । जब इस स्कूल का दूसरा सत्र प्रारम्भ हुआ तब विद्यार्थियों की संख्या 75 हो चुकी थी ।[2]

इस स्कूल में बढ़ते हुए विद्यार्थियों की संख्या को देखते हुये यह अनुभव किया गया कि विद्यालय की वर्तमान छोटी इमारत इस स्कूल की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं है । अत:मई के महीने में इसकी नई इमारत के निर्माण के लिए पर्याप्त जमीन खरीद ली गई । 14 हजार रुपये की लागत से नई इमारत का निर्माण हुआ जिसमें 200 बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्थान प्राप्त हो सकता था । आगामी वर्षों में यह स्कूल अत्यन्त ही प्रसिद्ध होता गया जिसमें छात्र संख्या में पर्याप्त वृद्धि होती गई ।[3]

सेन्ट फ्रांसिस कान्वेन्ट स्कूल झाँसी :

इस स्कूल का प्रारम्भ 1898 में हुआ जिसके संचालन का कार्य-भार सिस्टर पैट्रेशिया और टेरेसा को दिया गया ।[4] प्रारम्भ में इसकी

1- हिस्टोरिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस पब्लिस्ड बाई द डायोसिसन कमेटी इलाहाबाद 1940, पृष्ठ 113.
2- वही.
3- वही.
4- वही.

इमारत अत्यन्त ही छोटी तथा आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं थी । इसलिए शीघ्र ही छात्राओं की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुये इसकी विस्तृत इमारत का निर्माण किया गया । इस स्कूल के प्रारम्भ के 5 वर्ष कठिनाइयों में निकले, किन्तु यहाँ की प्रिंसिपल मदर डेलफाइन ने अपने प्रयासों द्वारा कई बड़े और हवादार कमरे बनवा लिये ।[1] 1927 में इस स्कूल की इमारत में पुन: विस्तार किया गया और धीरे-धीरे यह हाईस्कूल के रूप में परिवर्तित हो गया ।[2]

सागर में सेन्ट जोसेफ कान्वेन्ट की स्थापना :

माल्टा के कैथोलिक मिशनरियों ने बुन्देलखण्ड के क्षेत्रों में धर्म-प्रचार का कार्य अपने हाथ में लिया था । सागर जिला जबलपुर प्रीफेक्ट के अन्तर्गत आता था । अत: इसी प्रीफेक्ट के मिशनरियों ने इस स्कूल की स्थापना तथा उसके विकास का कार्य किया । 1896 ई० में सागर में कैथोलिक धर्माधिकारी के निवास का निर्माण हुआ था[3] और उसी वर्ष वहाँ एक कान्वेन्ट स्कूल की स्थापना की गई जिसका दायित्व लोरेटो सिस्टर्स को सौंप दिया गया,[4] लेकिन दुर्भाग्यवश यह स्कूल कुछ ही वर्षों में बन्द कर देना पड़ा । इसका कारण यह था कि स्कूल की इमारत की दशा ठीक न थी तथा अन्य सुविधाओं का भी अत्याधिक अभाव था ।

1- हिस्टोरिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस पब्लिश्ड बाई द डायोसिसन कमेटी इलाहाबाद 1940, पृष्ठ 114.
2- वही.
3- वही; पृष्ठ 65.
4- वही.

1907 में नागपुर मिशन की[1] कुछ भिक्षुणियों ने अपने मिशनरी कार्य को और तेज करने की इच्छा व्यक्त की । इस उद्देश्य से उन्होंने इलाहाबाद डायोसिस के धर्माध्यक्ष को एक प्रार्थना-पत्र प्रेषित किया तथा इलाहाबाद डायोसिस का कार्य ग्रहण करना चाहा । इसी पत्र में इन भिक्षुणियों ने सागर जिले के अन्तर्गत् अपने मिशनरी कार्य को प्रारम्भ करने की इच्छा भी व्यक्त की थी । इलाहाबाद के एक पादरी ने प्रसन्नतापूर्वक सहमति भी प्रदान कर दी तथा पुराने कान्वेन्ट स्कूल को जो कुछ कारणों से बन्द पड़ा था, उसे इन भिक्षुणियों को सौंप दिया ।[2]

सागर आने के पश्चात् इन भिक्षुणियों ने विभिन्न गाँवों में जाकर अत्यन्त लगन और साहस का कार्य किया । परिणामस्वरूप अपने सेवा-भाव से गाँव के तमाम वर्गों के लोगों को जिसमें निम्न जाति के लोग शामिल थे, उन्हें इसाई धर्म की दीक्षा देते हुए कैथोलिक धर्म का अनुयाई बना लिया । इस कार्य से इलाहाबाद डायोसिस का धर्माध्यक्ष इतना प्रसन्न हुआ था कि उसने इन भिक्षुणियों को आर्थिक सहायता प्रदान की ।[3]

चूंकि धीरे-धीरे सागर में भिक्षुणियों की संख्या बढ़ गई थी । अत: मदर जोसिफ ने धर्माध्यक्ष से यह प्रार्थना की कि सागर में यूरोपियन तथा एंग्लोइण्डियन बच्चों की शिक्षा की आवश्यकता को पूरा करने के लिए एक स्कूल की स्थापना कर दी जाय । इससे बच्चों को तो शिक्षा दी ही जा सकेगी, साथ ही साथ इस स्कूल की जो फीस आयेगी उससे

1- बुलेटिन आफ द कैथोलिक एसोसियेशन आफ द इलाहाबाद डायोसिस मार्च 1920, पृष्ठ 56.

2- वही.

3- वही.

भिक्षुणियों का खर्च भी निकलेगा तथा मिशन का कार्य भी आसानी से चल सकेगा ।[1] मदर ने यह भी लिखा कि भिक्षुणियों के लिए पुराने कान्वेन्ट स्कूल के स्थान पर नई इमारत बनवाई जाय, क्योंकि पुराने स्कूल की इमारत गिरने की कगार पर थी । धर्माध्यक्ष ने इन दोनों कार्यों के प्रति सहमति प्रदान की और फादर जूलियस को इन कार्यों के लिए अधिकृत कर दिया ।[2] स्कूल की इमारत तथा भिक्षुणियों के निवास के लिए जो इमारत बनी उसमें कुल 32,000 रुपया खर्च हुआ जिसमें 20,000 रुपया मध्य प्रदेश की सरकार ने भवन अनुदान के रूप में प्रदान किया । 10,000 रुपये चन्दे के रूप में तथा 2,000 रुपया अपने व्यक्तिगत् खर्चों को काटकर चन्दे के रूप में इन मिशनरियों ने दिया । बाद में उसमें और वृद्धि की गई । धीरे-धीरे यहाँ के विद्यार्थी हाईस्कूल परीक्षा के लिए तैयार किये गये । 1907 में इसमें 36 विद्यार्थी अध्ययनरत् थे ।[3]

सेन्ट रैफिल स्कूल :

सागर में कैथोलिक मिशन ने एक अन्य स्कूल की भी स्थापना की थी जिसे फादर जूलियस ने 12 अप्रैल 1912 को वहाँ के आस-पास गरीब बच्चों की शिक्षा के लिए प्रेरित किया । प्रारम्भ में इस स्कूल की कक्षायें एक कमरे तथा एक बरामदे में सदर बाजार में प्रारम्भ की गई,

---

1- हिस्टौरिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस, पृष्ठ 65.
2- वही; पृष्ठ 66.
3- वही.

जहाँ पर गधों के खड़े होने का अड्डा था ।[1] एक साल बाद उस स्कूल को सेन्ट जोसिफ कान्वेन्ट के प्रांगण में हस्तान्तरित कर दिया गया और धर्माध्यक्ष की स्वीकृति से वहाँ की मदर ने चार्ज ले लिया। 1914 में यहाँ पढ़ने वालों की संख्या 30 थी जो दूसरे ही वर्ष बढ़कर 58 हो गई ।[2]

सागर जिले में फादर रैफिल को 1872 में वहाँ स्थित सैनिक छावनी में धर्माधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था । उस समय वहाँ बच्चों को शिक्षा देने के लिये कोई कैथोलिक स्कूल नहीं था । वे केवल प्रार्थना करते थे तथा लोगों को धर्म में परिवर्तित करने के लिये सागर के आस-पास कई मीलों तक जाते थे,किन्तु प्रारम्भ में इसमें विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई । 3 वर्ष बाद 1875 में उन्हें सागर में एक अनाथ बालक मिला जिसे फादर रैफिल घर ले आये तथा बाद में उसे ईसाई बना लिया उसी की सहायता से उन्होंने कैथोलिक धर्म के प्रचार की आशा रखी,लेकिन फादर रैफिल को और अनाथ बच्चे मिलने इसलिए कठिन प्रतीत हो रहे थे,क्योंकि जो अवैध सन्तान हिन्दू तथा मुसलमानों की होती थीं,उसे वे ईसाई मिशनरियों के देने के स्थान पर मार डालना ज्यादा श्रेष्ठ समझते थे ।[3] इस कठिनाई के बावजूद भी मार्च 1876 में उन्हें दूसरा अनाथ बच्चा प्राप्त हुआ । इसके बाद तीसरा और चौथा बच्चा भी प्राप्त हुआ । जून 1882 तक इन

1- हिस्टोरिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस,पृष्ठ-6·
2- बुलेटिन आफ द कैथोलिक एसोसियेशन आफ द इलाहाबाद-डायोसिस,दिसम्बर 1917,पृष्ठ-6·
3- हिस्टोरिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस,पृष्ठ-66·

अनाथ बच्चों की संख्या 84 हो गई जिनमें से 45 बच्चे थोड़े बड़े होते-होते मर गये, शेष में से 6 की शादी हो गई । इस प्रकार इन परिस्थितियों में सागर जिले में एक कैथोलिक मिशन की स्थापना हुई ।[1]

फादर रैफिल द्वारा सम्पुरा में कैथोलिक मिशन की स्थापना व स्कूल का प्रारम्भ :

सम्पुरा आधुनिक सागर नगर के उत्तर-पश्चिम में कुछ मील की दूरी पर स्थित एक स्थान है जहाँ 1874 में 12 एकड़ भूमि के अन्तर्गत् 4 गाँव बसे हुये थे । यहाँ कैथोलिक अनाथालय तथा मिशन की स्थापना और विकास के कार्य का श्रेय फादर रैफिल को है । फादर रैफिल का जन्म इटली में 31 जुलाई 1827 को हुआ ।[2] 2 सितम्बर, 1845 को उन्होंने इटली के टस्कनी प्रान्त में कम्पूचीन सम्प्रदाय के अन्तर्गत् मिशनरी कार्य में प्रवेश किया । जनवरी 1854 में उन्हें बम्बई में मिशन के कार्य के लिये भेज दिया गया । बम्बई से शीघ्र ही उनका स्थानान्तरण पटना हो गया ।[3] पटना में 1859 तथा 60 के बीच उन्होंने कार्य किया ।[4]

1860 में रैफिल को गोरखपुर का धर्माध्यक्ष नियुक्त किया गया जो कि उन दिनों मुख्य सैनिक छावनी थी । उसी वर्ष उन्होंने गोरखपुर में सेन्ट जोसेफ चर्च का निर्माण कराया । इन सब अनुभवों

1- हिस्टोरिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस, पृष्ठ 66.
2- वही; पृष्ठ 67.
3- वही.
4- वही.

के आधार पर रैफिल ने 1872 में सागर की सैनिक छावनी में धर्माध्यक्ष के रूप में प्रवेश किया ।[1] यद्यपि उन्होंने छावनी में रहने वाले सैनिकों की आध्यात्मिक उन्नति के लिये पर्याप्त कार्य किये थे,किन्तु वे गरीब भारतियों की सेवाकर उन्हें इसाई धर्म में परिवर्तित करना चाहते थे । प्रारम्भ में रैफिल ने किसी भारतीय इसाई की तलाश करने के लिये सागर के आस-पास के क्षेत्रों में काफी लम्बी यात्रायें कीं,किन्तु उन्हें एक भी भारतीय इसाई प्राप्त नहीं हुआ । उन्होंने स्वयं इस दिशा की ओर कार्य किया और अनाथ बच्चों को खोजकर उन्होंने अनाथालय की स्थापना की । 1882 में उन्होंने 5 भारतीय परिवारों को जो सागर के पास समपुरा में निवास करते थे,उन्हें इसाई बना लिया ।[2] समपुरा में उन्होंने एक अनाथालय की भी स्थापना की थी । यहां के बच्चों को पढ़ने-लिखने के साथ-साथ खेती करने की भी ट्रेनिंग दी जाती थी । रैफिल ने समपुरा में लड़कियों के लिये भी एक अनाथालय खोला, जहां उन्हें पढ़ने-लिखने की ट्रेनिंग दी जाती थी । इसके अलावा अनाथालय में रहने वाली लड़कियों के लिये गृह-कार्य जैसे कपड़े सिलना, व्यंजन बनाना,जो कि एक अच्छी मां बनने के लिये आवश्यक होती है, उन बातों की भी ट्रेनिंग दी जाती थी ।

1882 में फादर रैफिल ने सागर में भिक्षुणियों को ट्रेनिंग देने के लिये एक केन्द्र खोले जाने की भी व्यवस्था की,लेकिन बाद में यह योजना विफल हो गई और इन भिक्षुणियों को बिहार बेटिया नामक

1- हिस्टोरिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस,पृष्ठ 67.

2- वही, पृष्ठ 69.

केन्द्र में स्थानान्तरित कर दिया गया ।[1] अन्त में लम्बी कष्टकारक बीमारी के कारण फादर रैफिल के 21 सितम्बर 1894 को मृत्यु हो गई ।[2] उनकी प्रसन्नता में इलाहाबाद के धर्माध्यक्ष ने लिखा था- "दिन में फादर रैफिल पैदल चलकर सागर तथा आस-पास के क्षेत्रों की यात्रा करते थे तथा रात्रि में अनाथ बच्चों को शिक्षाएं देते थे ।" इन अनाथों को शिक्षा देने के लिये वे अपने शरीर की भी चिन्ता नहीं करते थे । वे गरीब अवश्य थे,किन्तु उनका जीवन पूर्ण धार्मिक था । जब उनकी मृत्यु हुई उस समय सभी ने शोक मनाया तथा सैनिक कमाण्डर ने पूरे सैनिक सम्मान के साथ उनकी अन्त्येष्टि की ।[3]

मार्च 1895 में रैफिल की मृत्यु के बाद बार्थलोम्यू नामक पादरी ने सम्पूर्ण मिशन का कार्य-भार सम्भाला । नये पादरी को 115 अनाथ बच्चों,5 विधवाओं तथा 5 ऐसे गरीब परिवार जिन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था,की देख-रेख का प्रबन्ध का कार्य करना था । कुछ समय ऐसा भी होता था जब उनके पास पैसे नहीं होते थे । उस समय वे सागर के सैनिक कमाण्डर से आर्थिक मदद प्राप्त करते थे ।

1896 में मध्य प्रान्त में भयंकर अकाल पड़ा उस समय बैलगाड़ियों में बैठकर दवा तथा राहत सामग्री के साथ गाँव में जाकर वे दु:खी तथा निर्धन लोगों की देख-रेख का कार्य करते थे । इन बैलगाड़ियों में देहात के उन छोटे-छोटे बच्चों को लाया जाता था जिनके माँ-बाप अकाल से

1- हिस्टोरिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस,पृष्ठ 69.
2- वही.
3- वही.

मर गये थे,ऐसे बच्चों की भी कमी नहीं थी जिनका जन्म अभी हुआ ही था । चूंकि सम्पूरा अनाथालय स्वयं इन सारे गरीब बच्चों की देख-रेख का कार्य कर सकने में पर्याप्त नहीं था । अतः अतिरिक्त व्यवस्था के रूप में इन बच्चों के लिये झोपड़ियां बैरिक तथा अस्पताल बनाये गये । अकाल की विभीषिका इतनी भयंकर थी कि ये झोपड़ियां भी पर्याप्त न सिद्ध हुयीं । अतः इलाहाबाद मिशन के धर्माध्यक्ष के आदेश से सागर के इन अनाथ बच्चों को आगरा,लाहौर तथा रावल-पिण्डी की अनाथ केन्द्रों पर भेज दिया गया[1] लेकिन उनमें से अधिकांश बच्चे सम्पूरा में ही रखे गये ।

फादर बार्थलोम्यू ने सम्पूरा अनाथालय में बढ़ईगीरी,दरी तथा चादरें बुनना,मोमबत्ती बनाना तथा दस्तकला के ट्रेनिंग के अनेकों प्रशिक्षण केन्द्र शुरू किये,ताकि ऐसे भारतीय गरीब बच्चे,जो इस अनाथालय में रह रहे थे उन्हें ऐसी ट्रेनिंग दी जा सके जिससे वे अपनी जीविका का पालन कर सकें । यह प्रयास काफी सफल भी रहा ।

बार्थलोम्यू ने सम्पूरा में एक नया चर्च,अनाथालय,धर्माधिकारी निवास तथा देशी भिक्षुणियों के निवास के लिये एक इमारत तथा एक कारखाने का निर्माण किया । अभी यह कार्य पूर्ण भी नहीं हो पाये थे और इसी बीच बार्थलोम्यू का स्थानान्तर हो गया तथा उनका स्थान अलिक्जण्डर ने लिया जिसने अपने पूर्वज के सारे कार्यों को पूरा किया। 4 अक्टूबर 1892 को अलिक्जेण्डर ने इन इमारतों की नींव रखी जो 17 दिसम्बर 1897 में बनकर तैयार हो गई । नवनिर्मित अनाथालय में 10,000 रुपये खर्च हुये जिसे सन्त फ्रांसिस अनाथालय के नाम से पुकारा

1- हिस्टोरिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस पब्लिश्ड बाई द डायोसिस कमेटी इलाहाबाद 1940,पृष्ठ 70.

जाने लगा ।[1] धीरे-धीरे इसमें अनेकों परिवर्तन हुये तथा सम्मुरा महत्व-पूर्ण मिशन के रूप में परिवर्तित हो गया ।

1922 में इलाहाबाद डायोसिस की कैथोलिक एसोसियेशन के एक प्रत्यक्षदर्शी ने सम्मुरा मिशन के बारे में लिखा था - "सम्मुरा मिशन में लगभग 300 कैथोलिक हैं जो मुख्यत:बढ़ईगीरी का कार्य जानते हैं । उनका कार्य अत्यन्त ही उच्च कोटि का तथा साफ है । उनके द्वारा निर्मित चीजों की माँग सागर तथा आस-पास के बाजारों में है । इस मिशन को बनाने का मुख्य श्रेय फादर रैफिल तथा बार्थलोम्यू को है ।[2] बार्थलोम्यू ने एक व्याकरण की पुस्तक का भी निर्माण किया जो हिन्दुस्तानी आधार पर इटालियन भाषा में थी । सम्मुरा के स्कूल का प्रबन्ध 1926 में माल्टा के कपूचीन फादर ने अपने हाथ में लिया,बाद में इसे उच्च पादरियों ने अपने हाथ में ले लिया । इस प्रकार सागर तथा सम्मुरा के मिशन स्कूल कैथोलिक डायोसिस के महत्व-पूर्ण स्कूल थे ।

प्रोटेस्टेण्ट मिशनरियों द्वारा बुन्देलखण्ड में शिक्षा का प्रसार :

बुन्देलखण्ड के पिछड़े हुये क्षेत्र में जहाँ अकालों,प्राकृतिक-आपदाओं आदि से गरीबी,भुखमरी और बेरोजगारी फैल रही थी, वहाँ प्रोटेस्टेण्ट मिशनरियों ने धर्म प्रचार की दृष्टि से न केवल अनाथालय ही बल्कि अस्पताल भी खोले । उन्होंने स्कूलों की स्थापना कर यहाँ के

1- हिस्टोरिकल स्केच आफ द इलाहाबाद डायोसिस पब्लिस्ड बाई द डायोसिस कमेटी,इलाहाबाद 1940,पृष्ठ 70-73.

2- वही.

बच्चों को शिक्षित कर धर्म प्रचार के कार्य को तेज किया । यहाँ की व्याप्त गरीबी का चित्रण करते हुये अमेरिकन मिशनरी डेलिया फिशर ने लिखा था कि "ये मित्रो बुन्देलखण्ड के पिछड़े हुये क्षेत्र में जाओं जहाँ की भूख से मरने वालों की संख्या बहुत अधिक है,यहाँ के लोग दयनीय स्थिति में हैं । इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि हम उनके लिये ईश्वर से प्रार्थना करें । वहाँ की गरीबी का चित्रण कलम के द्वारा नहीं किया जा सकता । ऐसे क्षेत्र में ईसा मसीह के दूत बहुत कम संख्या में पहुँच सके हैं । अत:वहाँ बहुत अधिक कार्य करने की आवश्यकता है ।"[1] डेलिया फिशर ने सर्वप्रथम लखनऊ से नौगाँव पहुँचकर बुन्देलखण्ड के लोगों की सेवा करने का बीड़ा उठाया ।[2] फिशर इंग्लैण्ड के क्वेकर आन्दोलन से प्रभावित थीं । इस आन्दोलन के अनुयाई स्वयं को फ्रेण्ड्स {मित्र} शब्द से सम्बोधित करते थे । क्योंकि ईसामसीह ने कहा था कि आप हमारे मित्र हैं,यदि मेरे द्वारा दिये गये आन्दोलन को मानते हैं । चूंकि ईसामसीह की अन्तिम इच्छा यह थी कि उनके आदर्शों को प्रत्येक जीवधारी तक पहुँचा दिया जाय । अत:इसी उद्देश्य को लेकर डेलिया फिशर,ई0वेयर्ड और अन्ना निक्सन जैसे अनेकों मित्र महिला मिशनरियों ने बुन्देलखण्ड के विशाल क्षेत्रों में इसी प्रेरणा को लेकर पदार्पण किया ।[3] बुन्देलखण्ड में अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन के कार्य के प्रारम्भ का उद्देश्य शिक्षा तथा चिकित्सा की सुविधायें प्रदान करते हुये लोगों को नये धर्म की ओर आकृष्ट करना था ।[4]

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग,ए हिस्ट्री आफ द अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन इन इंडिया वाई ई॰अन्ना निक्सन प्रीफेस॰
2- वही॰
3- वही॰
4- वही; पृष्ठ 14॰

डेलिया फिशलर तथा ई0वर्ड का बुन्देलखण्ड आगमन :

अंग्रेजी शासनकाल में 1804 से लेकर बुन्देलखण्ड में आर्थिक शोषण के कारण गरीबी,बेकारी तथा अशिक्षा अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी । व्याप्त अकालों के कारण लोग भुखमरी की कगार पर आ गये थे । ऐसे समय में अमेरिकन मिशनरियों ने इस पिछड़ेक्षेत्र में प्रवेशकर इसाई धर्म के प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया । 1892 में अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन को डेलिया फिशलर ने 25 वर्ष की अवस्था में एक नर्स ई0वर्ड के साथ लखनऊ पदार्पण किया । और थोड़े ही दिनों में उन दोनों महिलाओं ने बुन्देलखण्ड के नौगाँव क्षेत्र में आकर धर्म-प्रचार का कार्य अपने हाथ में ले लिया ।[1] उस समय वर्ड की उम्र 33 वर्ष की थी जो एक ट्रेण्ड नर्स थी । उन दिनों महिलाओं ने ही नौगाँव में अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन के कार्य का प्रारम्भ किया था । ऐसा कहा जाता है कि बचपन से ही डेलिया के मन में भारत आकर सेवा करने की भावना विद्यमान थी ।[2] 19 वर्ष की ही अवस्था में उन्होंने धार्मिक कार्यों के लिये इवेन्जेलिकल चर्च में प्रवेश किया जिसके सदस्य उनके माँ-बाप भी रह चुके थे । बाद में उनका सम्पर्क अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन के सहयोगियों से हुआ । अत:फ्रेण्ड्स मिशनरी सोसाइटी बोर्ड के सम्पर्क से उन्होंने बुन्देलखण्ड के पिछड़े हुये क्षेत्र में जाकर ईसा मसीह का सन्देश लोगों तक पहुँचाने का कार्य किया ।

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग,ए हिस्ट्री आफ द अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन इन इण्डिया वाई ई॰अन्ना निक्सन प्रीफेस॰भूमिका पृष्ठ 9-10 ॰

2- वही॰

1892 में उपरोक्त फ्रेन्ड्स मिशन के महिलाओं का दल जो भारत आया था उसमें इन दोनों महिलाओं ने मुख्य भूमिका निभाई थी । इसी बोर्ड के अन्तर्गत् 1887 में कुछ धर्म प्रचारक महिलायें चीन भी भेजी गयी थीं ।[1] इन महिलाओं के साथ एक तीसरी महिला मर्थ बारबर भी आई थी ।[2] अत:30 अगस्त 1892 को ये तीनों महिलायें धार्मिक कार्यों हेतु भारत आयीं । इन तीनों विदेशी महिलाओं के समक्ष अनेकों समस्यायें भी थीं । उदाहरण के लिये-धन की कमी के कारण ये एक विस्तृत मिशन की स्थापना प्रारम्भ में नहीं करना चाहती थीं । इसके साथ ही भारतीय भाषा प्रथाओं तथा संस्कृति से वे पूर्णत:परिचित भी नहीं थीं । अत:मिशन बोर्ड ने यह निर्णय लिया कि इन महिला मिशनरियों को भारत में कार्यरत् अन्य मिशनरियों की देख-रेख के अन्तर्गत् कार्य करने के लिये भेजा जाए । मर्थ बारबर उन दिनों अकालों में कार्यरत् इसाई मिशनरी फुलर से परिचित थी और उन दोनों के बीच पत्राचार भी होता था । अत: तमाम चर्चाओं के बाद इन महिलाओं ने भारत की ओर प्रवेश किया । जिस समय समुद्री जहाज पर अपनी यात्रा के लिये उन्होंने प्रस्थान किया उस समय मेरीथामस नामक महिला मिशनरी ने लिखा था"हमारी भारत यात्रा सामुद्रिक यात्राओं की महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक है । अच्छा होता कि भारत पहुंचने के लिये हमें इतनी अधिक समुद्री दूरी तय न करनी पड़ती[3] इस प्रकार 28 दिसम्बर 1892 को इन अमरीकी महिला

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग,ए हिस्ट्री आफ द अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन इन इण्डिया बाई ई0अन्ना निक्सन प्रीपेस •पृष्ठ 10-11•

2-वही•

3- वही•

मिशनरियों का दल बम्बई पहुँचा,[1] जहाँ पर ब्रिटिश सेना के अधिकारियों ने उनका स्वागत किया । थोड़े ही दिन बाद डेलिया तथा वर्ड दोनों मथुरा पहुँचीं । डेलिया को मथुरा के ट्रेनिंग स्कूल का कार्य-भार सौंप दिया गया । यह स्कूल इसाई कार्य-कर्ताओं को ट्रेनिंग प्रदान करता था । इसी प्रकार वर्ड ने एक अस्पताल में नर्स के रूप में सेवा-कार्य प्रारम्भ कर दिया ।[2] वहाँ से उन दोनों महिलाओं को बरेली भेज दिया गया । तत्पश्चात् बिजनौर में इनकी नियुक्ति की गई जहाँ पर कुछ अंग्रेजी परिवार रहते थे । वहीं पर उन महिलाओं ने हिन्दी का ज्ञान भी प्राप्त किया ।[3]

भारत आने के चार महीने बाद यहाँ की गर्मी का प्रभाव उन महिला मिशनरियों को दिखाई देने लगा । गर्मी के मौसम की गर्म हवाओं में वे अभ्यस्त नहीं थीं,इस प्रकार मई तथा जून के महीने में डेलिया ने नैनीताल तथा मर्था वर्ड ने मसूरी में व्यतीत किये ।[4] इसी समय इन मिशनरियों को इस आशय के पत्र प्राप्त होते रहते थे कि भारत में फ्रेण्ड्स मिशन की स्थापना की जाए ।

मिशनरी कार्यों के प्रारम्भ के लिए ये महिलायें भारत में उचित स्थान की तलाश में थीं । सबसे पहले गुना की ओर इनका ध्यान गया ,किन्तु ठीक प्रकार से मकान न होने के कारण वहाँ से इनका इरादा

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग,ए हिस्ट्री आफ द अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन इन इण्डिया वाई डी०अन्ना निक्सन प्रीफेस• पृष्ठ 10-12•
2- वही•
3- वही•
4- वही•

बदल गया ।[1] उसी समय लखनऊ में एक चर्चा के दौरान नौगाँव सैनिक-छावनी का उल्लेख आया जो ब्रिटिश सेना का मुख्यालय था । वहाँ पोलिटिकल एजेन्ट तथा पुलिस अधीक्षक का भी कार्यालय था । इस कस्बे के आस-पास देशी रियासतें थीं । जहाँ के समीप गाँवों में लगभग एक लाख लोग निवास करते थे । लखनऊ में केलोन नामक पादरी ने डेलिया के साथ बात-चीत में कहा था कि बुन्देलखण्ड का 9852 वर्ग मील का क्षेत्र मिशनरी कार्यों के लिये अछूता पड़ा है जिसे आपको अपने हाथ में लेना चाहिए । नौगाँव के चारों ओर स्थित यह क्षेत्र इस कार्य के लिये सर्वथा उपयुक्त है । साथ ही यहाँ स्थित अंग्रेजी सेना आप लोगों की सुरक्षा का उचित बन्दोबस्त भी करेगी । इन दोनों महिलाओं ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया और नौगाँव में एक किराये का बंगला लेकर मिशनरी कार्य को प्रारम्भ किया ।

डेलिया का नौगाँव आगमन :

9 दिसम्बर 1895 को अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन की ओर से डेलिया को सुपरिन्टेन्डेन्ट,ऐस्था को कोषाध्यक्ष तथा मर्था को आडीटर नियुक्त किया गया और इस प्रकार । अप्रैल 1896 को इन महिलाओं ने फ्रेण्ड्स मिशन की स्थापना की ।[2] उस समय गर्मी के मौसम का प्रारम्भ हो चुका था तथा बुन्देलखण्ड में चारों ओर अकाल पड़ा हुआ था ।चारों ओर गर्म हवायें तेजी से चल रही थीं । इस विपरीत परिस्थिति के बावजूद भी ये महिलायें अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये जुटी हुई थीं ।

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग,ए हिस्ट्री आफ द अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन इन इण्डिया बाई ई0अन्ना निक्सन प्रीफेस-पृष्ठ 16·

2- वही·

प्रारम्भ में ईसाई धर्म के सन्देशों की ओर लोग अधिक आकृष्ट नहीं हुये । जब ये गांवों में जाती थीं तो अकाल पीड़ित लोग उनसे रोटी और कपड़े की मांग करते थे । यह अकाल का तीसरा वर्ष था । लोग पेड़ों की पत्तियां खाकर किसी तरह गुजर कर रहे थे ।[1] अकाल के वातावरण में भूखे,नंगों की मदद में उन मिशनरियों का सारा पैसा खर्च हो गया था, अत:इन्होंने अमेरिका स्थित अपने बोर्ड को और अधिक आर्थिक सहायता देने का आग्रह किया । ये महिलाएं ऐसे बच्चों को लाकर नौगांव मिशन में रखती थीं जिनके मां-बाप नहीं थे । एक बुंगलाल को साफ करके इन बच्चों को रहने के लिये जगह बनाई गई थी । इनकी देख-रेख का कार्य ऐस्थर नामक नर्स किया करती थी,जबकि डेलिया चर्च में प्रार्थना तथा शिक्षा देने का कार्य करती थी । इसके अतिरिक्त छावनी में रहने वाले अंग्रेजी सेनाओं को भी प्रार्थना कराने का कार्य डेलिया ही किया करती थी । 1896 के अकाल से बुन्देलखण्ड की 2 लाख,25 हजार वर्ग भूमि प्रभावित हुई थी ।[2] इससे प्रभावित लोगों की जनसंख्या लगभग 6 करोड़ 50 लाख थी । 1891 से लेकर 1901 के बीच बुन्देलखण्ड की 9 प्रतिशत जनसंख्या समाप्त हो चुकी थी । ऐसी कठिन परिस्थिति में काफी अन्तराल के बाद 1600 डालर डेलिया को अमरीकी मिशनरियों से प्राप्त हुआ । बाद में चलकर 40,210.56 डालर का चन्दा अन्य लोगों ने भी दिया जिससे अकाल पीड़ितों के लिये कपड़ा,कम्बल तथा अन्य सहायता दी गई ।[3]

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग,ए हिस्ट्री आफ द अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन इन इण्डिया वाई डॉ०अन्ना निक्सन प्रीसेल,पृष्ठ 17.

2- वही; पृष्ठ 17-18.

3- वही.

अनाथालय का प्रारम्भ :

1895-96 के अकालों की विभीषिका के परिणाम स्वरूप तमाम असहाय बच्चों को उनके माँ तथा बाप नौगाँव के मिशन में ऐस्थर तथा डेलिया की देख-रेख में छोड़ जाते थे ।[1] यद्यपि उनके माता-पिताओं ने उन बच्चों को छोड़ते हुये यह कहा था कि अकाल की समाप्ति के बाद वे उन्हें वापस लेने आयेंगे,लेकिन गरीबी के प्रकोप में वे वापस नहीं लौटे । ऐसी परिस्थिति में डेलिया ने नौगाँव में एक अनाथालय खोला जिसमें उन गरीब बच्चों की देख-रेख की जाती थी ।[2] इतना सब कुछ करने के बावजूद भी डेलिया आस-पास के गाँवों में लोगों को आसानी से इसाई धर्म में दीक्षित न कर सकी । लेकिन धीरे-धीरे अनाथालय में रखे गये बच्चों का पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा इस प्रकार की गई कि वे इसाई बना लिये गये । इस अनाथालय में 500 बच्चों को प्रारम्भ में शरण दी गई ।[3]

अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन की इन इसाई महिलाओं ने एक भारतीय महिला पण्डिता रमाबाई को अनाथालय की देख-रेख तथा विधवाओं आदि की मदद करने के लिये कार्य-भार सौंपा । पण्डिता रमाबाई पूना के निकट केडगाँव की रहने वाली थी ।[4] वह पूना से नौगाँव कई बार अनाथ बच्चों,विधवाओं तथा निम्न जाति के तिरस्कृत बच्चों को लेने के लिये आ चुकी थी । नौगाँव के फ्रेण्ड्स मिशन में 81 लड़के

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग,ए हिस्ट्री आफ द अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन इन इण्डिया वाई डा०अन्ना निक्सन प्रीपेस,पृष्ठ 18·

2- वही·

3- द प्लान्टिंग ए चर्च·पृष्ठ 18·

4- वही·

तथा 3 लड़कियाँ, मिशन परिवार के सदस्य के रूप में स्थायी रूप से रख ली गयीं ।[1] इस मिशन के अन्तर्गत् एक अन्धी महिला जो लखनऊ की रहने वाली थी और जिसका नाम चारलोटे बाई था[2] को नौकरी देकर इस मिशन में रख लिया गया । निःसन्देह चारलोटे बाई अंध थी, किन्तु फिर भी अपनी योग्यता और क्षमता से उसने अधिकांश लोगों को प्रभावित कर रखा था । इस प्रकार वह धीरे-धीरे इस नये अनाथालय में प्रेरणा का स्रोत बन गई जिससे यहाँ पल रहे बच्चे उससे अत्यधिक प्रभावित हुये । इस अनाथालय के बच्चे उसकी सेवाओं को कभी भूल नहीं पायेंगे । डेलिया फिशर के कार्यों से नौगांव का मिशन दिन-प्रति-दिन सशक्त होता चला गया । अपने भारत छोड़ने से पूर्व उसने अमेरिकन मिशन बोर्ड को एक पत्र लिखकर यह प्रार्थना की थी कि इस क्षेत्र में एक मिशन का स्थायी रूप से मुख्यालय बनाने के लिये 5 हजार डालर की सहायता प्रदान की जाय ।[3] यह उल्लेखनीय है कि नौगांव में मिशन के कार्य का प्रारम्भ एक किराये के मकान में हुआ था । किन्तु डेलिया की यह सिफारिश असफल सिद्ध हुई । नवम्बर 1891 के प्रारम्भ में डेलिया नौगांव से अमेरिका वापस पहुँची । तत्पश्चात् उसने अमेरिकन मिशन बोर्ड के सामने नौगांव में मिशन के निर्माण के लिये आर्थिक सहायता प्राप्त करने हेतु दलीलें पेश कीं ।[4] अन्ततः उसकी

1- प्लान्टिंग ए चर्च, पृष्ठ 18.
2- वही.
3- वही, पृष्ठ 19.
4- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग ए चर्च, पृष्ठ 20-21.

बात को स्वीकार कर लिया गया और बोर्ड ने इस कार्य हेतु मदद देने का निश्चय किया । थोड़े ही दिन पश्चात् सितम्बर 1898 में मर्था बारबर अमेरिका वापस पहुँची । उसके स्थान पर अन्ना एजरटन को डेलिया के साथ 1899 में भारत भेजा गया । इसके साथ ही नौगाँव मिशन के अन्तर्गत् चलाये जा रहे अनाथालय में चारलोटे बाई के निरन्तर प्रयासों से प्रगति हो रही थी । ठीक उसी समय नौगाँव के पोलिटिकल एजेन्ट ने वहाँ मिशन की इमारत निर्माण के पत्रों पर हस्ताक्षर करने के पूर्व ही स्थानान्तरण का शिकार होना पड़ा । नये पोलिटिकल एजेन्ट ने इस योजना को यह कह कर स्थगित कर दिया कि अनाथालय ब्रिटिश एजेन्सी के अधिक समीप है । अतः उसने 10 एकड़ जमीन अन्यत्र इस कार्य हेतु देने का निश्चय किया जिसे बाद में डेलिया ने स्वीकार कर लिया ।[1]

28 जून 1900 ई० को 13 एकड़ जमीन नौगाँव में मिशन के कार्य हेतु 18 डालर प्रति वर्ष के किराये पर दे दी गई । इस प्रकार जून 1901 में अनाथालय भवन का निर्माण पूरा हुआ ।[2] उसी के समीप चारलोटे बाई को रहने के लिये एक कमरा दे दिया गया ।

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग द चर्च, पृष्ठ 20-21.

2- वही.

अनाथालय के भवन के निर्माण के साथ ही अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन द्वारा प्राप्त सहायता-धनराशि समाप्त हो गई। किन्तु 1902 में एक बंगले के निर्माण के लिये आधारशिला रखी जा चुकी थी जिसे बाद में आर्थिक मदद भी प्राप्त हुई। जनवरी 1903 तक यद्यपि यह इमारत पूर्ण नहीं हो सकी थी, किन्तु फिर भी मिशनरियों ने उसमें प्रवेश कर लिया था और अप्रैल के महीने तक इस इमारत का कार्य भी पूर्ण हो गया।[1] इस प्रकार डेलिया के प्रयासों से नौगाँव में अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन के अन्तर्गत एक अनाथालय तथा एक निवास हेतु इमारत का निर्माण कार्य पूरा हो गया था। अब आवश्यकता इस बात की थी कि नौगाँव के मिशन में बच्चों की शिक्षा के लिये एक स्कूल की स्थापना की जाय।

<u>नौगाँव में मिशन स्कूल का प्रारम्भ :</u>

बुन्देलखण्ड के इस पिछड़े हुये क्षेत्र में अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन की महिला मिशनरियों ने नौगाँव के अनाथालय में पल रहे बच्चों तथा आस-पास के बच्चों को शिक्षित करने के लिये एक स्कूल के प्रारम्भ करने की आवश्यकता महसूस की। शिक्षा के क्षेत्र में लगभग यह क्षेत्र शून्य था। अतः पेलीजा फ्रेन्क लेण्ड जो अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन की एक अवकाश प्राप्त महिला थी, वह नौगाँव पहुँचकर वहाँ के

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग ए वर्क, पृष्ठ 20-21.

अनाथालय के बच्चों के लिये स्कूल की व्यवस्था कर सकने में सफल हुई। साथ ही साथ उन्होंने नौगाँव के बाजार में लड़कियों के लिये एक स्कूल खोले जाने पर भी विचार करना प्रारम्भ किया।[1] इससे पहले बुन्देलखण्ड में लड़कियों के लिये कोई उचित स्कूल नहीं था। एलीजा के आगमन से नौगाँव के मिशन में स्टाफ की कमी की पूर्ति हो सकी, विशेषत: यह देखते हुये कि डेलिया, मर्था और ऐस्थर को अब अपने देश वापस लौटना था।[2] थोड़े ही दिन बाद नौगाँव के बाजार में एक स्कूल का प्रारम्भ हुआ जिसकी देख-रेख अन्ना फ्लेटर नामक मिशनरी कर रही थी। इस स्कूल में लगभग 100 किताबों की एक लाइब्रेरी की व्यवस्था की गई। यद्यपि वहाँ शिक्षित लोगों का अनुपात केवल 2% ही था। चूंकि उन दिनों नौगाँव के स्कूल में क्रिश्चियन अध्यापक उपलब्ध नहीं थे। अत: अनाथालय के बच्चों की शिक्षा के लिये एक हिन्दू महिला अध्यापक की नियुक्ति कर दी गई। नि:सन्देह वह प्रतिभावान थी तथा इस कार्य में सहयोग कर रही थी, किन्तु वह महिला हिन्दू धर्म और प्रथाओं के अनुसार मूर्ति-पूजा इत्यादि भी करती रहती थी जिसे डेलिया ने पसन्द नहीं किया। परिणामस्वरूप उक्त हिन्दू महिला अध्यापिकाको स्कूल से निकाल दिया गया। इसके साथ ही स्कूल की देख-रेख करने वाली महिला मिशनरी अन्ना फ्लेटर भी थोड़े समय बाद अपने देश विश्राम हेतु वापस लौट गई।[3] इन मिशनरियों

1- ओहियो ईयरली मीटिंग मिनट्स, 1897, पृष्ठ 35.
2- वही.
3- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग ए चर्च, पृष्ठ 23.

ने यह निश्चय किया कि मिशन स्कूल में केवल स्त्रीं अध्यापक ही रखे जायें। फलत:अन्ना फ्लेटर के स्थान पर ईवा पैलिन को न्यू इंग्लैण्ड से नियुक्त करके भेजा गया। ईवा ने किन्डर गार्डन स्कूल से ट्रेनिंग {प्रशिक्षण} प्राप्त की थी। फलत:उसके देख-रेख में नौगांव के मिशन स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या निरन्तर बढ़ती गई और स्कूल भी विकसित होने लगा।[1]

अनाथालय के बच्चों के लिये प्रशिक्षण स्कूल की स्थापना :

नौगांव में जिस स्कूल की स्थापना डेलिया के प्रयासों से हुई थी उसमें पल रहे बच्चे धीरे-धीरे जवान हो गये थे। अब उनकी स्कूली शिक्षा भी लगभग समाप्त हो गई थी।[2] उनमें से अधिकांश बच्चे विभिन्न उद्योगों का प्रशिक्षण प्राप्त करके रोजगार प्राप्त करना चाहते थे। फलत:1904 ई0 में नौगांव के मिशन ने वहाँ एक औद्योगिक स्कूल की स्थापना की। इसमें सर्वप्रथम 14 बच्चों को प्रवेश मिला।[3] इस औद्योगिक स्कूल में प्रशिक्षण देने तथा उसकी देख-रेख करने के लिये एक नये व्यक्ति की आवश्यकता थी,किन्तु जब इस कार्य के लिये कोई उपलब्ध न हुआ तो ऐसी स्थिति में उसका दायित्व ऐस्थर वार्ड नामक महिला मिशनरी के कन्धों पर रखा गया।[4]इस स्कूल

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग ए वर्ड,पृष्ठ 23.
2- वही.
3- वही.
4- औहियो ईयरली मीटिंग मिनट्स 1904, पृष्ठ 38.

में बागवानी,बढ़ईगिरी,कपड़े की सिलाई,कुर्सियों की बुनाई, कारीगरी,जूता बनाना आदि विषयों से सम्बन्धित प्रशिक्षण दिया जाता था । धीरे-धीरे इसमें प्रशिक्षण देने के लिये कुशल प्रशिक्षकों की नियुक्ति कर दी गई ।[1] यह औद्योगिक स्कूल रोजगार प्राप्त करने के लिये एक महत्वपूर्ण कदम था । मिशन यह समझता था कि अनाथालयों में पल रहे अनाथ बच्चे जो ईसाई धर्म में दीक्षित हो चुके हैं उन्हें औद्योगिक प्रशिक्षण देकर तथा रोजगार देकर अपने पैरों पर खड़ा कर दिया जाय । इसकी सफलता को देखकर डैनियल को तथा बोर्ड के सदस्यों को प्रसन्नता हुई । इस प्रकार यह प्रशिक्षण स्कूल मिशन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि था । यह उल्लेखनीय है कि अभीतक बुन्देलखण्ड के किसी भी क्षेत्र में ऐसे प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं थी ।

कन्जरपुर गाँव में मिशन स्कूल की स्थापना :

अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन नौगाँव की महिला मिशनरियों ने इस क्षेत्र के आसपास के इलाकों में पिछड़े हुये तथा उपेक्षित वर्ग के लोगों में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिये जो योजना बनाई उसी के अन्तर्गत् कन्जरपुर में एक स्कूल खोला गया । कन्जरपुर में निवास करने वाले अधिकांश लोग कन्जर जाति के थे जो चोरी तथा अनेक अपराधों में संलग्न थे ।[2] ब्रिटिश सरकार ने इस गाँव के लोगों को

1- त्रैमासिकी क्वैरली मीटिंग मिनट्स 1904, पृष्ठ 38.
2- ए सैन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 32.

पुलिस निगरानी के अन्तर्गत रख छोड़ा था, लेकिन इसके बावजूद भी ये अपराधी जातियां विभिन्न अपराधों में व्यस्त थीं । महिला मिशनरियों ने मानवीय कार्यों तथा आर्थिक मदद के द्वारा इस गांव के पंचम सिंह और प्रेमदास नामक व्यक्तियों को सर्वप्रथम ईसाई धर्म में दीक्षित किया । इसके साथ ही अन्य कन्जर लोग भी पंचम सिंह और प्रेमदास द्वारा प्रभावित होने लगे । ईसाईयत के प्रति बढ़ते हुये उनके रुझान के कारण नौगांव के मिशन ने वहां एक मिशन स्कूल खोल दिया जिसमें प्रेमदास और याकूब को अध्यापक नियुक्त किया गया ।[1] अध्यापन कार्य के साथ ही साथ प्रत्येक रविवार को ये लोग ईसाईयों के लिये प्रार्थना की भी व्यवस्था करते थे । इस स्कूल को खोलने का कार्य डेलिया फिशर ने ही किया था ।[2] नौगांव के पोलिटिकल एजेन्ट से अनुमति प्राप्त कर लेने के बाद डेलिया ने अगस्त 1910 में 8 बच्चों के साथ यह स्कूल प्रारम्भ किया ।[3] पहले इस स्कूल का प्रारम्भ एक मकान के छोटे-से बरामदे में हुआ था, किन्तु बाद में किराये पर एक भवन ले लिया गया ।[4]

प्रेमदास इस स्कूल में मिशन के बच्चों को प्रति दिन 5 घन्टे पढ़ाया करता था उसके साथ रविवार को वह धार्मिक सभायें आयोजित करता था ।[5] नौगांव के पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल मेकडोनल्ड

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 32.
2- वही.
3- वही.
4- वही.
5- वही.

ने मई 1911 में कन्जरपुर का दौरा किया । वह वहाँ ईसाई-मिशनरियों के कार्यों से इतना प्रभावित हुआ था कि बुन्देलखण्ड के इस भाग में सरकारी खर्च पर चर्च के लिये एक स्कूल के निर्माण का आदेश दिया ।[1] प्रेमदास को चर्च की ओर से कुछ पारिश्रमिक भी मिला था । उसकी मृत्यु के बाद तुलसीदास को उसके स्थान पर अध्यापक नियुक्त किया गया । तुलसीदास कन्जरपुर का ही एक अपराधी जाति का व्यक्ति था ।[2] जिसने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था । इस प्रकार कन्जरपुर का स्कूल अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन का एक अन्य महत्वपूर्ण प्रयास था ।

नौगाँव में मिशनरियों द्वारा अन्य स्कूलों की स्थापना :

नौगाँव मिशन में शिक्षा के क्षेत्र में कैरीवुड के आगमन से एक नये अध्याय का प्रारम्भ हुआ । इस ईसाई महिला ने विभिन्न भाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् नौगाँव में आकर लड़कियों के लिये बाजार-स्कूल को पुनःप्रारम्भ किया ।[3] थोड़े ही दिन पश्चात् इस महिला मिशनरी ने मिशन गर्ल्स स्कूल से इसे सम्बद्ध कर दिया । उसमें पढ़ने वाली लड़कियों की संख्या प्रारम्भ में 45 थी । स्कूल की व्यवस्था तथा पठन-पाठन में नौगाँव अनाथालय की लड़कियाँ कैरीवुड की सहायता करती थीं । मिशनरियों के

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 32.

2- वही.

3- वही, पृष्ठ 33.

प्रति बुन्देलखण्ड के लोगों का दृष्टिकोण इसी से स्पष्ट हो जाता है कि सवर्ण जाति की लड़कियाँ अपनी ईसाई अध्यापिकाओं के हाथ से पेन्सिल अथवा अन्य वस्तुएँ सीधे नहीं लेती थीं । उसका कारण यह था कि ये उच्च जाति की लड़कियाँ ईसाईयों से घृणा करती थीं । अतः अध्यापिकायें जिस किसी वस्तु को किसी लड़की को देना होता था उसे वहीं समीप में रख देती थीं जिससे लड़कियाँ बिना किसी अध्यापक को छुये हुये उस वस्तु को उठा लेती थीं ।[1] क्रिसमस तथा अन्य त्यौहारों के समय कैरीवुड अपने स्कूल की छात्राओं तथा कन्जरपुर स्कूल और नौगाँव के चमारों के स्कूलों में उपहार बाँटा करती थीं । इस कार्य द्वारा ये मिशनरी लोगों का दिल जीतकर उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करना चाहती थीं । इस प्रकार नौगाँव की चमार बस्ती में प्रारम्भ किया हुआ यह स्कूल इस मिशन की अन्य उपलब्धि थी । इन स्कूलों में अध्यापकों की नियुक्ति के लिये ईसाई बच्चों को सेन्ट जोन्स कालेज, आगरा भेजकर ट्रेनिंग कराई जाती थी जिसका व्यय मिशन ही वहन करता था ।[2]

हरपालपुर में मिशन स्कूल का प्रारम्भ :

हरपालपुर मिशन नौगाँव स्टेशन का ही एक अंग था जो अमेरिकन प्रेस्बिटेरियन सोसाइटी के अन्तर्गत था । नौगाँव में मिशन स्कूल की स्थापना तथा उसके सफलतापूर्वक कार्य को देखते हुये नौगाँव के ही

1- औहियो ईयरली मीटिंग मिनट्स 1911, पृष्ठ 53.

2- वही, पृष्ठ 73.

मिशनरियों ने छतरपुर में अपना केन्द्र स्थापित किया । छतरपुर मिशन की देखरेख तथा व्यवस्था का कार्य-भार पंचमसिंह को दिया गया ।[1] जो ठाकुर जाति का था तथा 1909 में नौगांव में ईसाई धर्म को स्वीकार कर चुका था ।[2] पंचमसिंह को छतरपुर मिशन के संगठन तथा व्यवस्था का कार्य दिया गया, लेकिन इस मिशन की मुख्य अधिकारी ऐस्थर वार्ड महिला मिशनरी थी ।[3] इस मिशन की महिला मिशनरी गाड़ियों में बैठकर दौरा आदि करके गांवों में लोगों की चिकित्सा की देखरेख करती थीं ।

छतरपुर रियासत द्वारा दी गई सहायता :

छतरपुर रियासत के राजा ने छतरपुर में मिशनरियों को अस्पताल तथा स्कूल खोलने के लिये भूमि दान में दी । छतरपुर में इसी समय एक मिशन स्कूल खोला गया जिसमें हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों की पढ़ाई होती थी । इस स्कूल का प्रारम्भ 2 अक्टूबर 1911 को हुआ जिसमें प्रारम्भ में 60 विद्यार्थी थे ।[4] गोरेलाल सिंह को इस स्कूल का इन्चार्ज बनाया गया ।[5] गोरेलाल सिंह का पालन-पोषण नौगांव मिशन के अन्तर्गत हुआ था । 1896 में जबकि बुन्देलखण्ड में व्यापक अकाल पड़ा हुआ था उस समय गोरेलाल सिंह एक बच्चा था,

---

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 37.
2- वही; पृष्ठ 34.
3- ऐस्थर वार्ड डायरी, फरवरी 13, 1911.
4- फ्रेन्डस ओरियन्टल न्यूज जिल्द नं0 4, 1911.
5- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 435.

उसके माँ-बाप ने नौगाँव के मिशन में उसे छोड़ दिया था । इसी मिशन के अनाथालय में उसका पालन-पोषण हुआ था । बाद में मिशनरियों ने उसे पढ़ा-लिखा कर सेन्ट जोन्स कालेज,आगरा में अध्यापक की ट्रेनिंग करायी तथा उसे हरपालपुर स्कूल का इन्चार्ज बना दिया गया । गोरेलाल का विवाह भी नौगाँव मिशन - अनाथालय की पली हुई लड़की के साथ हुआ था । उसकी पत्नी भी उसी के साथ हीहरपालपुर स्कूल में अध्यापिका के पद पर नियुक्त हुई । गोरेलाल बुन्देलखण्ड में फ्रेण्ड्स मिशन का पहला मिनिस्टर नियुक्त हुआ जिसने ईसाई धर्म की रक्षा और विकास के लिये महत्वपूर्ण कार्य किये ।[1] गोरेलाल के प्रयासों से धीरे-धीरे हरपालपुर स्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने लगी और शीघ्र ही यह संख्या 90 तक पहुँच गई ।[2]

प्रथम विश्व युद्ध का प्रारम्भ तथा बुन्देलखण्ड के मिशनरियों को विदेशों से आने वाली सहायता में कमी :

डेलिया[3] के प्रयासों से नौगाँव में अमरीकी मिशनरियों के द्वारा जिस मिशन की स्थापना हुई थी वह धीरे-धीरे आसपास के क्षेत्रों में जैसे - छतरपुर,हरपालपुर आदि तक फैल गया था । अनाथालय

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग,पृष्ठ 435.
2- वही; पृष्ठ 55.
3- वही; पृष्ठ 55.

अस्पताल तथा स्कूलों की स्थापना कर ये मिशनरी इस क्षेत्र के पिछड़े हुये लोगों का विश्वास प्राप्त कर रहे थे तथा उन्हें ईसाई धर्म में दीक्षित कर रहे थे। भुखमरी तथा गरीबी से परेशान लोग अपने धर्म-परिवर्तन में भी नहीं हिचक रहे थे। 1914 में प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ। परिणाम स्वरूप अमरीकी मिशनरियों द्वारा बुन्देलखण्ड मिशन को जो सहायता-धनराशि भेजी जा रही थी वह कुछ दिनों के लिये बन्द हो गई।[1] इससे मिशनरी कार्यों को आगे बढ़ाने में कठिनाई हुई। यही कारण था कि जब नौगाँव के पोलिटीकल एजेन्ट ने मिशनरियों को कन्दरपुर गाँव में मिशनरी-कार्यों को आगे बढ़ाने के लिये तथा औद्योगिक स्कूलों की स्थापना के लिये प्रेरित किया था उस समय इस मिशनरियों ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था।[2] सहायता धनराशि की कटौती की परिणाम स्वरूप बुन्देलखण्ड के मिशनरियों को अपने कार्यों में कटौती भी करना पड़ी।

नौगाँव मुख्यतः एक सैनिक छावनी था जिसमें लगभग 1000 भारतीय तथा 300 अंग्रेज सैनिक थे।[3] प्रथम विश्वयुद्ध के समय सैनिकों के युद्ध में चले जाने के कारण यह छावनी खाली हो गई।[4] और जैसे-जैसे युद्ध आगे बढ़ने लगा वैसे ही बुन्देलखण्ड के मिशनरियों को धन की कमी अनुभव होने लगी। युद्ध का लम्बे समय तक जारी रहना मिशनरियों

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 55.
2- वही.
3- वही.
4- वही.

के चिन्ता का विषय बन गया था । नौगाँव छावनी खाली हो जाने के कारण सेना की वर्दी आदि सिलने के जो आर्डर मिशन को प्राप्त हो जाते थे,वे भी अब बन्द हो गये थे । अतः मिशन की आमदनी का यह स्रोत भी समाप्त हो गया ।[1]

प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका के अलावा बुन्देलखण्ड मिशन को कुछ और समस्याओं का भी सामना करना पड़ा । उदाहरण के लिये नौगाँव में उसी समय चेचक का प्रकोप हुआ जिससे नौगाँव का बाजार-स्कूल बन्द करना पड़ा ।[2] जैसे ही यह बीमारी समाप्त हुई वैसे ही हैजे का प्रकोप प्रारम्भ हुआ । इसमें भी अनेकों लोगों की मृत्यु हो गई ।[3] इसके अतिरिक्त नौगाँव मिशन में धर्म प्रचारक के रूप में कार्य कर रहे कुछ स्थानीय लोग भी काफी बूढ़े हो चले थे तथा उनमें कुछ की मृत्यु हो गई थी । नोनीबाई की मृत्यु से मिशन के प्रचार-कार्य को धक्का लगा । 10 जुलाई 1915 को प्रेमदास जी की भी मृत्यु गद्दुदार्द अस्पताल नौगाँव में हुई ।[4] वह एक प्रभावशाली प्रचारक था जिसका पालन-पोषण भी नौगाँव मिशन अनाथालय में ही हुआ था ।[5] इन दुःखद घटनाओं से मिशनरी के कार्य को धक्का लगा ।

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग,पृष्ठ 56.

2- वही; पृष्ठ 57-58.

3- वही.

4- वही.

5- वही.

हरपालपुर के मिशन स्कूल में नाथूलाल की नियुक्ति हुई जो गोरेलाल की मृत्यु के बाद इस कार्य के लिये नियुक्त किया गया था ।[1] नाथूलाल को पंगा नाम से जाना जाता था, क्योंकि वह एक लंगड़ा था । उसका पालन-पोषण भी मिशन अनाथालय, नौगाँव में हुआ था । 1912 में उसने हाई स्कूल पास किया और बाद में वह हरपालपुर स्कूल में हेडमास्टर नियुक्त कर दिया गया ।[2]

अमरीकी सहायता की पुनःप्राप्ति :

1915 के अन्त तक अमरीकी मिशनरियों द्वारा बुन्देलखण्ड के मिशन को सहायता धनराशि पुनःभेजी जाने लगी । इससे मिशन की गतिविधियों में तेजी आने लगी और आर्थिक तंगी भी समाप्त होने लगी । इसके साथ ही साथ हरपालपुर स्कूल के विकास के लिये अलीपुर के राजा ने बड़ा सहयोग दिया । उन्होंने वहाँ के हेडमास्टर को आधे वेतन देने का निर्णय किया । स्कूल इमारत का निर्माण भी स्वयं राजा ने ही किया । फलतः एक जुलाई 1917 को हरपालपुर स्कूल की नई इमारत बनकर तैयार हो गई ।[3] आश्चर्य का विषय तो यह है कि हरपालपुर मिशन में पढ़ने वाले अधिकतर विद्यार्थी गैर ईसाई थे । अतःइस संस्था द्वारा मिशन अन्य लोगों को ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट नहीं कर पा रहा था ।

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 57-58.
2- वही.
3- वही.

फलतः मिशन ने यहाँ के स्कूल को 1944 में बन्द कर दिया,[1] किन्तु अलीपुर के राजा ने अपने खर्च से यहाँ नियुक्त ईसाई अध्यापकों के वेतन आदि का प्रबन्ध किया, किन्तु फिर भी मिशन ने हरपालपुर स्कूल को अपनी ओर से बन्द कर दिया ।[2] अलीपुर राजा की इस सहायता के बावजूद भी हरपालपुर स्कूल के बन्द करने का निश्चय आश्चर्यजनक था । वास्तव में मिशनों द्वारा स्कूल चलाने का उद्देश्य धर्म प्रचार व प्रसार पर आधारित था । जब यह उद्देश्य पूरा नहीं होता दिखाई पड़ा तब उस समय मिशन ने इन संस्थाओं को बन्द करने का निर्णय ले लिया । मिशन के इस कार्य को कल्याणकारी कदापि नहीं कहा जा सकता ।

हरपालपुर में मिशन की स्थापना के बाद अमरीकी मिशनरियों ने छतरपुर में अपना केन्द्र स्थापित करना चाहा । 31 मार्च 1919 को छतरपुर के महाराजा ने इन मिशनरियों को स्कूल तथा अस्पताल की स्थापना के लिये जमीन दान में दी ।[3] यहाँ शीघ्र ही निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुआ । अमरीका से आ रही धनराशि तथा बुन्देलखण्ड के राजाओं से मिली सहायता के आधार पर छतरपुर में शीघ्र ही इन मिशनरियों ने एक मिशन-इमारत का निर्माण कर लिया ।[4] इस प्रकार धीरे-धीरे ये मिशनरी नौगांव

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ, 62.
2- वही; पृष्ठ 169.
3- वही; पृष्ठ 67.
4- वही.

हरपालपुर, छतरपुर तथा आस-पास के क्षेत्रों में फैल गये । 5 फरवरी, 1921 को बुन्देलखण्ड मिशन की 25वीं वर्षगाँठ मनाई गई[1] जिसमें बाहर से भी कुछ मिशनरियों ने हिस्सा लिया । 25वीं वर्षगाँठ पर ईसाई समुदाय के लोगों को नौगाँव में जो भोज दिया गया उस समय दिये गये भाषणों से यह स्पष्ट हुआ कि 1896 में जब डेनिया पिशलर ने नौगाँव में मिशन का प्रारम्भ किया था उस समय बुन्देलखण्ड में शायद ही कोई ईसाई धर्म को मानने वाला रहा होगा[2] लेकिन समय बीतने के साथ-साथ मिशनरियों के प्रयास सफल होते गये और 1921 में 25वीं वर्षगाँठ समारोह के अवसर पर इन ईसाई लोगों की संख्या लगभग 200 हो गई ।[3] अब मिशन की भी संख्या बढ़ने लगी । इस प्रकार बुन्देलखण्ड में ईसाईमत का प्रसार तेजी से होने लगा ।

कनेडियन प्रेस बिटेरियन मिशनरियों द्वारा शिक्षण संस्थाओं का प्रारम्भ:

नौगाँव, हरपालपुर तथा छतरपुर में अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन द्वारा चलाये जा रहे स्कूल काफी सफल हो चुके थे । इसके साथ ही कैथोलिक मिशन द्वारा बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों में भी काफी शिक्षण संस्थायें सफलता पूर्वक कार्य कर रही थीं । शिक्षा प्रसार के साथ-साथ ईसाई धर्म के प्रचार में तेजी आ रही थी । इन प्रयासों की सफलता से प्रेरित होकर कनेडियन प्रेस बिटेरियन चर्च के डा० जान विल्की 1904 में इन्दौर से झाँसी आये । सम्भवतः धर्म प्रचार करने की दृष्टि से वे

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 67.
2- वही.
3- वही.

ग्वालियर जा रहे थे,किन्तु वहाँ के राजा से प्रोत्साहन न मिलने के कारण किकी ने झाँसी को ही अपने कार्य का क्षेत्र चुना । किकी ने झाँसी में कनाडा के मिशनरियों के सहयोग से सी०पी० मिशन में काफी जमीन खरीदी जिसमें शैलागढ़ का गाँव भी शामिल था । सबसे बड़ी आवश्यकता इस पिछड़े हुये क्षेत्र में लड़कियों की शिक्षा से सम्बन्धित थी,जो अत्यन्त ही उपेक्षित थी । अत:उस दिशा में कार्य किया जाना आवश्यक था । इसी उद्देश्य से 1926 में सी०पी०मिशन कम्पाउण्ड,झाँसी में कनेडियन प्रेस ब्रिटेरियन मिशन गर्ल्स स्कूल की स्थापना हुई ।[1] यह स्कूल इस क्षेत्र में ग्रामीण लड़कियों को शिक्षा देने के उद्देश्य से खोला गया था । प्रारम्भ में यह प्राईमरी स्कूल स्तर तक रहा,किन्तु बाद में यह हाईस्कूल तक बढ़ा दिया गया । सी०पी०मिशन में ही लड़कियों के लिये एक स्कूल का प्रारम्भ भी इसी मिशन द्वारा 1933 में हुआ । कनाडा की एक महिला द्वारा दिये गये दान के धन के आधार पर 1928 में मिशन कम्पाउण्ड में ही एक छात्रावास बनाया गया ।[2] यह उल्लेखनीय है कि 1928 में जब डा० किकी यहाँ से इंग्लैण्ड वापस जा रहे थे तो उस समय लाल सागर में ही यात्रा करने वाले जहाज में उनकी मृत्यु हो गई । इसके उपरान्त इस मिशन का कार्यभार कनेडियन पादरी मैके ने किया जो 1927 में हो किकी के जीवन के समय झाँसी आ गये थे ।[3] किकी की यादगार में 1930-31 में

1- देखिए कनेडियन प्रेस ब्रिटेरियन गर्ल्स स्कूल-रिकार्ड।
2- वही।
3- वही।

जान विल्को मैमोरियल इन्डस्ट्रियल स्कूल की स्थापना की गयी ।[1] इसमें लोगों को रोजगारपरक शिक्षा जैसे- बढ़ईगीरी,बुनाई,सिलाई आदि से सम्बन्धित ट्रेनिंग दी जाती थी । इस स्कूल के पीछे मुख्य उद्देश्य मिशन को आत्मनिर्भर बनाना था,ताकि यह अपनी ही संस्थाओं द्वारा प्राप्त आमदनी के बल पर मिशन के कार्यों को आगे बढ़ा सके ।[2]

इस प्रकार बुन्देलखण्ड में रोमन कैथोलिक अमेरिकन प्रेस्बिटेरियन मिशन तथा कैनेडियन प्रेस ब्रिटेरियन चर्च आदि मिशनरियों ने इस पिछड़े हुये इलाकों में स्कूलों की स्थापना कर बुन्देलखण्ड के लोगों को आर्थिक मदद देते हुये प्रशिक्षण के द्वारा उनको रोजगार दिलाने का प्रयास किया । ये रोजगार-परक स्कूल इसीलिये खोले गये थे । निःसन्देह इन शिक्षण संस्थाओं से इस आर्थिक पिछड़े हुये क्षेत्र में इसाई धर्म का विस्तार काफी तेजी से हो सका और मिशन के उद्देश्यों की पूर्ति होती रही ।

—— :0: ——

1- देखिए कैनेडियन प्रेस ब्रिटेरियन गर्ल्स स्कूल-रिकार्ड.

2- वही.

अध्याय – षष्ठम्

बुन्देलखण्ड में मिशनरियों द्वारा अस्पतालों की स्थापना तथा चिकित्सा-सेवा का प्रारम्भ

बुन्देलखण्ड अंग्रेजी शासनकाल में पूरे देश की ही भाँति आर्थिक शोषण तथा उत्पीड़न का शिकार रहा । यहाँ लघु उद्योग धन्धे जैसे – मऊरानीपुर का खरुआ वस्त्र उद्योग[1] झाँसी का कम्बल तथा कालीन उद्योग[2] एरच का चुनरी उद्योग[3] आदि सभी ब्रिटिश शासन में हतोत्साहित किये गये । फलतः इनका विनाश हुआ[4] ठीक इसी प्रकार बुन्देलखण्ड के काली मिट्टी वाले क्षेत्रों में अच्छी किस्म की कपास हुआ करती थी[5] किन्तु जैसे ही इस क्षेत्र के वस्त्र उद्योग

1- पाठक एस0पी0, झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल, पृष्ठ 60-61.
2- वही; पृष्ठ 64.
3- वही.
4- वही; पृष्ठ 66.
5- वही; पृष्ठ 55-56.

समाप्त हुये वैसे ही यहाँ पैदा हुये कमाल की कीमत भी घटने लगी । अतः उचित पारिश्रमिक न मिलने के कारण यहाँ के किसानों ने उसका उत्पादन बन्द कर दिया । कर्वी स्थित रूई मिल को भी इसी प्रकार बन्द कर देना पड़ा ।[1] कृषि की स्थिति दैवी आपदाओं के कारण अत्यन्त ही खराब हो चुकी थी । कठोर राजस्व की नीति ने तो यहाँ के किसानों की कमर ही तोड़ दी थी । इस प्रकार बुन्देलखण्ड भुखमरी, गरीबी और बेरोजगारी का शिकार हो गया । लोगों का जीवन-स्तर इतना गिर गया कि लोग मोटे किस्म का अनाज महुआ, बेरी आदि खाकर पेट भरने लगे । अभाव होने के कारण चेचक, हैजा, मलेरिया तथा अन्य बीमारियों में काफी संख्या में लोग मरने लगे । ऐसी परिस्थिति में बुन्देलखण्ड में इसाई मिशनरियों ने चिकित्सा सेवा का प्रारम्भ किया ।[2] इन मिशनरियों का यह उद्देश्य रहा कि चिकित्सा सेवा के साथ-साथ जनमानस की सेवा तो होगी ही, साथ ही साथ इससे इसाई धर्म के प्रचार-प्रसार में सहायता प्राप्त होगी । वास्तव में सर्वप्रथम स्कूलों तथा अस्पतालों के द्वारा ही मिशनरियों ने इसाईमत का प्रचार करना प्रारम्भ किया और यही नीति बुन्देलखण्ड में भी अपनाई गई । बुन्देलखण्ड में लड़कियों की शिक्षा के लिये प्रथम स्कूल इन मिशनरियों ने ही खोला था ।[3] ठीक इसी

1- कैडिल ए0, सेटिलमेन्ट रिपोर्ट आफ बाँदा 1881, पृष्ठ 102.
2- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग बाई अन्ना निक्सन (भूमिका पृ0 14).
3- वही.

प्रकार पहले अस्पताल की स्थापना भी मिशनरियों ने ही की थी ।[1]

1892 में अमरीकी महिला मिशनरियों का जो दल बुन्देलखण्ड आया उसमें डैलिया फिशलर,पैस्थर वार्ड,प्रमुख थीं ।[2] पैस्थर वार्ड एक नर्स थी जिसने नर्सिंग प्रशिक्षण करने के बाद 33 वर्ष की अवस्था में डैलिया फिशलर के साथ भारत आकर मिशनरी कार्य में सहयोग देने का निश्चय किया ।[3] नौगाँव में इन मिशनरियों ने अपना पहला केन्द्र खोला जो कि बुन्देलखण्ड मिशन का प्रमुख केन्द्र रहा । इस मिशन के अन्तर्गत् अनाथालय में पल रहे बच्चों की सेवा तथा चिकित्सा का दायित्व पैस्थर वार्ड पर था । चूँकि उन दिनों यातायात के साधनों का समुचित विकास नहीं था । सड़कें अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ थीं अतः पैस्थर वार्ड को प्रारम्भ में काफी कठिनाई उठानी पड़ी ।[4] शीघ्र ही इस मिशन में डॉ० गोदार्ड की नियुक्ति की गई जिसके साथ मिलकर पैस्थर वार्ड चिकित्सा का विस्तार करने लगी । बैलगाड़ी में बैठकर छत्रपालपुर तथा आस-पास के गाँवों में ये मिशनरी डाक्टर बीमार लोगों को दवा देने का कार्य करते थे ।[5] मिशनरियों के चिकित्सा-कार्य से प्रभावित होकर अलीपुर रियासत के राजा ने कुछ भूमि इन मिशनरियों को दान में प्रदान की जिसमें एक अस्पताल का निर्माण किया गया ।[6] यह उल्लेखनीय है कि बुन्देलखण्ड में सर्वप्रथम एक कोल,

---

1-ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग बाई अन्ना निकलन, [भूमिका-पृ० 14]·
2-ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 9-10·
3-वही·
4-वही, पृष्ठ 24·
5-वही·
6-वही·

1896 को अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन की स्थापना इन्हीं महिला मिशनरियों ने की जिनमें डेलिया, ऐस्थर तथा मर्था शामिल थीं। यहाँ समय-समय पर पड़ने वाले अकालों तथा इससे होने वाली भुखमरी के परिणामस्वरूप यहाँ की मृत्यु दर पहले से दुगनी हो चुकी थी।[1] 1891 से लेकर 1901 के बीच इन बीमारियों के कारण 98 लोगों की मृत्यु हो गई थी। चिकित्सा-सुविधाओं के अभाव के कारण मृत्यु की दर बढ़ती जा रही थी। इस स्थिति की विवेचना करते हुये डेलिया ने अमेरिकी बोर्ड को एक विस्तृत पत्र लिखा,[2] जिसके परिणाम स्वरूप इन मिशनरियों को अनुदान प्राप्त हुआ। साथ ही साथ बुन्देलखण्ड के स्थानीय लोगों ने चन्दा आदि के द्वारा जो धनराशि एकत्र की उससे नौगाँव मिशन में मिशन के अन्तर्गत चिकित्सा-सेवा का प्रारम्भ किया गया। नौगाँव में ही शीघ्र ही डा०गोदार्ड ने आकर डेलिया के साथ चिकित्सा कार्य की देख-रेख करना प्रारम्भ कर दिया।[3]

विलियम प्रसाद द्वारा हरपालपुर में अस्पताल का प्रबन्ध :

धीरे-धीरे नौगाँव के आस-पास के क्षेत्रों में जैसे- हरपाल पुर में भी मिशन के कार्यों में चिकित्सा-सेवा का प्रारम्भ हुआ।[4] नौगाँव मिशन में पले हुये बुन्देलखण्ड के ही ईसाई विलियम प्रसाद

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग बाई अन्ना निक्सन [भूमिका-पृ014]।
2- वही।
3- वही; पृष्ठ 17।
4- वही; पृष्ठ 37।

को आगरा भेजकर तीन वर्ष की फार्मेसी की ट्रेनिंग कराई गई ।[1] ट्रेनिंग प्राप्तकर विलियम प्रसाद ने छतरपुर अस्पताल की व्यवस्था करना प्रारम्भ कर दिया, किन्तु दुर्भाग्य से 1911 से लेकर लगभग 1919 तक के 8 वर्ष अमेरिकन फ्रेण्ड्स मिशन के लिये अत्यन्त ही दुखदायी साबित हुये । ऐस्थर बार्ड जो नौगांव मिशन में एक नर्स के रूप में आयी थी, वह बीमारी के कारण 13 फरवरी 1911 को अवकाश हेतु वापस चली गई ।[2] उसके वापस जाने के कारण बुन्देलखण्ड मिशन के अन्तर्गत चल रही चिकित्सा सेवा प्रभावित हुई । फलतः छतरपुर का दवाखाना बन्द हो गया ।[3] जिस समय यह महिला नर्स अपने घर वापस जा रही थी उस समय उसने यह आश्चर्य व्यक्त किया कि मिशन अस्पताल में आने वाले रोगियों के विभिन्न रोगों की पहचान डाक्टर के अभाव में कैसे हो सकेगी । यहाँ तक कि छतरपुर के राजा ने छतरपुर मिशन के लिए जो जमीन दान में दी थी, को भी यह जानकर दुःख हुआ कि छतरपुर का अस्पताल बन्द हो गया है, किन्तु 1912 में जब विलियम प्रसाद फार्मेसी की ट्रेनिंग लेकर छतरपुर पुनः वापस आया तो उसने अस्पताल के कार्य को पुनः प्रारम्भ किया ।[4]

1- बोर्ड की ईयरली मीटिंग मिनट्स 1909, पृष्ठ 42.
2- वही.
3- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग बाई अन्ना निक्सन {भूमिका-पृ038}.
4- वही.

जहाँतक नौगाँव की स्थिति थी वहाँ ऐमिया फिशर, केरीउड तथा बर्थ कॉक्स नामक महिला मिशनरी जो चिकित्सा का प्रशिक्षण भी नहीं प्राप्त किये हुये थी, वे किसी तरह अनुभव के आधार पर कुछ दवा इत्यादि बाँटती रही । नौगाँव में शेष चिकित्सा कार्य क्रमशः ठप्प हो गया था । इसके साथ ही 1914 से 1919 तक प्रथम विश्वयुद्ध चलते रहने के कारण बुन्देलखण्ड की अमरीकी मिशनरियों को अमेरिका से आने वाली सहायता धनराशि प्राप्त नहीं हुई । इस प्रकार ये वर्ष इन मिशनरियों के लिये बड़े कष्टप्रद रहे ।

बुन्देलखण्ड मिशन में पेस्थर वार्ड की सुपरिन्टेन्डेन्ट के रूप में नियुक्ति :

फारेन मिशन सोसाइटी ने 1916 में पेस्थर वार्ड को सुपरिन्टेन्डेन्ट के रूप में नियमित किया ।[1] यह उल्लेखनीय है कि पेस्थर वार्ड ऐमिया फिशर के साथ पहले नौगाँव आ चुकी थी तथा उसे वहाँ कार्य करने का अनुभव भी प्राप्त हो चुका था । मिशन के कार्यों की देख-रेख करने के साथ ही एक नर्स होने के कारण पेस्थर वार्ड चिकित्सा कार्यों की विशेष देखरेख करती थी। जिस समय वार्ड ने नौगाँव मिशन का कार्य हाथ में लिया, उस समय प्रथम विश्वयुद्ध चरम सीमा पर था । विदेशों से आने वाली

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग वार्ड जन्ना निकसन [भूमिका-पृ053]

सहायता काफी दिनों से प्राप्त नहीं हो रही थी । स्थानीय लोगों द्वारा चन्दे से ही मिशन का कार्य चल रहा था, किन्तु यह धनराशि मिशन की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पा रही थी । बढ़ती हुई बीमारी के कारण चिकित्सा-सेवा पर अधिक दबाव पड़ रहा था । नौगांव में मिशन के अन्तर्गत् रहने वाले लोगों पर तथा आस-पास के लोगों की चिकित्सा पर भी काफी खर्च आ रहा था ।[1] अकेले छतरपुर में फार्मेसिस्ट विलियम प्रसाद ने दो वर्षों के अन्तर्गत् ही 6624 नये रोगियों की चिकित्सा की । इसके अतिरिक्त 4741 पुराने रोगियों की भी देखरेख की गई ।[2] प्रतिदिन औसत के रूप में 60 रोगी छतरपुर अस्पताल में ही आया करते थे ।[3] इस प्रकार एक ओर अस्पताल दवाव-कार्य का बोझ पड़ रहा था, तो दूसरी ओर विदेशी सहायता बन्द हो जाने के कारण मिशन के स्टाफ में छटनी करनी पड़ी और छतरपुर का अस्पताल भी इस परिस्थिति का शिकार हुआ जहाँ स्टाफ काफी कम कर दिया गया ।[4]

प्रथम विश्वयुद्ध के प्रभाव से बुन्देलखण्ड मिशन की बाहर से आने वाली सहायता काफी दिनों के लिये रोक दी गई थी जिससे मिशन का कार्य प्रभावित हुआ, किन्तु सौभाग्य से 1915 के अन्त में अमेरिकी बोर्ड से सहायता की धनराशि बुन्देलखण्ड के मिशनरियों को

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग बाई अन्ना निक्सन [भूमिका-पृ0 53]•
2- वही; पृष्ठ 55•
3- वही•
4- वही•

प्राप्त होने लगी ।[1] इस सहायता के बल पर ऐस्थर वार्ड जब बुन्देलखण्ड मिशन की सुपरिन्टेन्डेन्ट थीं उस समय मिशन की कठिनाइयों में कमी आने लगी । इसी बीच अमरीका की महिला मिशनरियों ने ऐस्थर वार्ड सहायता कोष की स्थापना की ।[2] इसमें एकत्र हुई धनराशि को बुन्देलखण्ड की महिला मिशनरियों को भेजा जाता था । इसके अतिरिक्त 2500 डालर की अतिरिक्त सहायता भी बुन्देलखण्ड के मिशनरियों को प्राप्त हुई । 1916 के मध्य तक 8000 डालर की धनराशि के बराबर भेंट तथा अन्य वस्तुएं भी इन मिशनरियों को प्राप्त हुयीं । इसी बीच हरपालपुर में एक अस्पताल खोलने के लिये भी कुछ धनराशि प्राप्त हुई ।[3] इस धनराशि की सहायता से बुन्देलखण्ड की मिशनरियों ने हरपालपुर में रोगियों की देखरेख तथा रात्रि विश्राम के लिये 12 फीट लम्बे तथा 12 फीट चौड़े दो कमरों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया । यह उल्लेखनीय है कि इससे पहले हरपालपुर में रोगियों को चिकित्सा के रूप में उन्हें दवा देकर वापस घरों को लौटा दिया जाता था । क्योंकि वहां रोगियों को रखने के लिये कोई व्यवस्था नहीं थी । यहां यह भी उल्लेखनीय है कि अलीपुर के राजा ने भी हरपालपुर में मिशनरियों की व्यवस्था, स्कूल तथा अस्पताल आदि के प्रबन्ध के लिये धनराशि उदारता के रूप में प्रदान की थी ।

1- रैसिल पिम का पत्र ऐस्थर वार्ड के नाम सितम्बर 2, 1915.

2- मन्थली मीटिंग आफ क्रिश्चियन फ्रेन्ड्स इन बुन्देलखण्ड, पृ0 32.

3- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 61.

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद जब बुन्देलखण्ड के मिशनरियों को अमरीकी सहायता प्रदान होने लगी तब उनके बल पर अस्पताल तथा चिकित्सा-सेवा को विस्तार करने की ओर ध्यान दिया गया । अमरीका के ही एक मिशनरी किनफोर्ड की सम्पत्ति को बुन्देलखण्ड के इसाई धर्म-प्रचार के लिये प्रयोग में लाया गया ।[1] परिणाम स्वरूप ऐस्थर वार्ड जो बुन्देलखण्ड की प्रमुख थी, ने छतरपुर में मिशनरियों के चिकित्सा कार्य के विस्तार के लिये अमरीकी बोर्ड को एक पत्र लिखा और इसी क्रम में अमरीकी बोर्ड ने लिवो पैन्टिट की नियुक्ति कर दी ।[2]

इसी बीच ऐस्थर वार्ड को यह समाचार प्राप्त हुआ कि उसके गोद लिये हुये पुत्र फ्रैंकलिन वार्ड की युद्ध स्थल में 2 जून, 1916 को मृत्यु हो गई ।[3] इस दुःखद घटना की सूचना से ऐस्थर वार्ड स्तब्ध रह गई । फ्रैंकलिन वार्ड का जन्म 28 अक्टूबर 1893 को हुआ था । उसी समय से ऐस्थर वार्ड ने उसे गोद लेकर मथुरा में उसका पालन-पोषण किया था । 7 वर्ष की आयु में उस बच्चे को ऐस्थर वार्ड अमेरिका ले गई । जून 1911 में ऐस्थर वार्ड जब पुनः अमेरिका वापस गई तो उसने अपने पुत्र को स्कूल में देखकर अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त की थी ।[4] सितम्बर 17, 1913 को अपने

1- रैसिल पिम का पत्र ऐस्थर वार्ड के नाम 26 अक्टूबर, 1915.
2- ओहियो ईअरली मीटिंग मिनट्स 1917, पृष्ठ 27.
3- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 63.
4- वही.

पुत्र से विदा लेकर ऐस्थर वार्ड भारत आईं और दूसरे ही वर्ष प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया और एक सैनिक के रूप में फ्रैंकलिन वार्ड की मृत्यु 2 जून,1916 को हुई । इस घटना से बुन्देलखण्ड मिशन को भी काफी दुःख हुआ ।

बुन्देलखण्ड में नौगाँव जो कि सैनिक छावनी था । यहाँ प्रथम विश्वयुद्ध में घायल सैनिकों की सेवा तथा स्वस्थता करने के लिये भी एक कैम्प प्रारम्भ किया गया था जिसमें यहाँ के मिशनरी कार्यरत थे । इसके अलावा अनेकों युद्ध बन्दी जिन्हें युद्ध के समय गिरफ्तार कर लिया गया था,उन्हें रखने की व्यवस्था का एक केन्द्र नौगाँव में ही था । यहाँ बन्द हुये सैनिकों के मुँह से प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका की कहानी का अन्दाज लगाया जा सकता था ।[1] बुन्देलखण्ड मिशन में 7 अक्टूबर 1918 को खुशियाँ मनाई गयीं,क्योंकि उसी दिन प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हुआ था । इसके उपलक्ष्य में बुन्देलखण्ड के मिशन स्कूलों में एक दिन की छुट्टी की गई थी ।[2] नवम्बर 11, 1918 को जब शान्ति समझौते पर हस्ताक्षर हुआ उस समय बुन्देलखण्ड मिशन में और अधिक खुशियाँ मनाई गई होती,यदि उन्हीं दिनों इन्फ्लूएन्जा तथा बुखार का प्रकोप इस क्षेत्र में व्याप्त न हुआ होता ।[3] प्रथम महायुद्ध के समय इन्फ्लूएन्जा एक छूत की बीमारी की तरह फैला जिसके व्यापक प्रभाव हुये । निःसन्देह यह प्रकोप विश्व के अन्य देशों में भी था और ठीक उसी प्रकार बुन्देलखण्ड भी इससे वंचित नहीं रहा ।[4]

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 63.
2- ऐस्थर वार्ड की डायरी जनवरी 19,अप्रैल 19,अगस्त 4,सितम्बर 28 तथा अक्टूबर 7, 1918.
3- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 63.
4- वही.

परिणाम स्वरूप बुन्देलखण्ड के गांवों में हजारों लोग मर गये। मिशन भी इससे अधिकतर प्रभावित रहा। लगभग 70 सदस्य बुन्देलखण्ड मिशन के इस बीमारी के शिकार हुये। इस रोग के रोगियों को स्वास्थ्य के लिये बुन्देलखण्ड के महिला चिकित्सकों ने क्षेत्र का व्यापक दौरा किया तथा चिकित्सा-सेवा के द्वारा लोगों को ठीक किया, लेकिन इसके बावजूद भी मिशन के अन्तर्गत दो बच्चों की मृत्यु हो गई।[1]

उपरोक्त दुखद प्रकरण के बावजूद भी प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति का बुन्देलखण्ड मिशन ने खुले दिल से स्वागत किया, क्योंकि मिशन के पदाधिकारी यह आशा लगाये बैठे थे कि अमरीका तथा विदेशों से आने वाली धनराशि इस मिशन को तभी प्राप्त हो सकती है, जबकि विश्व में शान्ति हो। बिना सहायता धनराशि के मिशन का कार्य आगे बढ़ाना सम्भव नहीं था। अतः प्रथम विश्वयुद्ध के समय मिशन के समक्ष अनेकों कठिनाइयां आयीं, जो युद्ध की समाप्ति के बाद शीघ्र ही दूर होने लगीं।

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद बुन्देलखण्ड मिशनरियों द्वारा चिकित्सा-सेवा का प्रारम्भ -

विश्वयुद्ध की समाप्ति के साथ ही साथ फ्लू का प्रकोप तेजी से बढ़ा।[2] इस बीमारी से मिशन के सभी सदस्य प्रभावित

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 64.
2- वही, पृष्ठ 63-64.

हुये । ऐसी परिस्थिति में लोगों को स्वास्थ्य-सुविधाएं प्राप्त कराने के लिये मिशनरियों ने दूर-दूर के गांवों में जाने-आने के लिये एक गाड़ी खरीदने का विचार किया ।[1] यह उल्लेखनीय है कि बुन्देलखण्ड के बीहड़ तथा पिछड़े हुये क्षेत्रों में सड़कों का नितान्त अभाव था ।[2] अत:महिला चिकित्सक तथा मिशन के डॉक्टर गांवों में आसानी से नहीं पहुंच सकते थे । इतनी विषम परिस्थिति के बावजूद भी डेलिया मिशनर तथा पेस्थर बाई जैसी नर्सों ने निर्जन तथा जंगली इलाकों से होते हुये गाड़ियों में बैठकर ग्रामिणों को चिकित्सा-सेवा उपलब्ध करायी ।[3] इन महिलाओं ने चिकित्सा-सेवा के फैलाव के पीछे कर्तव्यनिष्ठा की वह भावना काम कर रही थी जिसके पीछे उद्देश्य इस पिछड़े हुये क्षेत्र में ईसाई धर्म का प्रचार एवं प्रसार करना था ।

बुन्देलखण्ड मिशन ने इसी प्रचार कार्य को तेज करने के लिये मिशन बोर्ड को एक पत्र लिखकर एक गाड़ी खरीदने के लिये धनराशि की मांग की ।[4] बोर्ड ने इसकी अनुमति भी प्रदान कर दी ।[5] फलत:एक सितम्बर 1919 को मिशनरियों ने हरपालपुर रेलवे स्टेशन से एक मोटर प्राप्त किया जो बोर्ड

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 63-64.
2- वही.
3- वही.
4- रैसिल मिम का पत्र ऐस्थर बाई के नाम सितम्बर 3, 1917.
5- वही.

द्वारा प्रदान किया गया था । पैस्थर वार्ड इस मोटर को स्वयं तीन महीने तक चलाती रहीं । उन्हें इस मोटर को चलाने की ट्रेनिंग बुन्देलखण्ड के एक पोलिटिकल एजेन्ट ने दी थी ।[1]

बुन्देलखण्ड मिशन को वाहन की प्राप्ति के बाद चिकित्सा सेवाओं को विस्तृत करने में तथा धर्म प्रचार के कार्य में एक नई आशा का संचार हुआ । धीरे-धीरे नौगांव के अनाथालय में पल रहे अनाथ बच्चे काफी बड़े हो गये थे । इनमें प्रेमदास का भाई मंगल वाडी जो अत्यन्त ही प्रभावशाली धर्म-प्रचारक था, मिशन के कार्य को आगे बढ़ाने में काफी सहायक सिद्ध हुआ । धर्म-प्रचार के कार्य की देख-रेख मारग्रेट स्मिथ नामक महिला[2] मिशनरी करती थी और यह कार्य पैस्थर वार्ड के नेतृत्व में ही चल रहा था ।

1918 में बुन्देलखण्ड में व्याप्त अकाल के समय मिशन द्वारा सेवा-कार्य का प्रारम्भ:-

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के बाद जहाँ यह क्षेत्र इन्फ्लुएन्जा से प्रभावित था, वहीं दूसरी ओर अकाल व्याप्त हो जाने के कारण भुखमरी तथा गरीबी से भी अनेकों लोग प्रभावित

1- ऐस्थर वार्ड डायरी सितम्बर 1, 1919.
2- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 65.

हुये । 1918 की गर्मियों में तेज धूप तथा भीषण गर्मी के बावजूद भी समय से वर्षा न होने के कारण खरीफ की फसल नष्ट हो गई थी ।[1] चूंकि इस क्षेत्र में सिंचाई सुविधाओं का नितान्त अभाव था और खेती वर्षा पर ही निर्भर करती थी, फलतः वर्षा न होने के कारण कृषि का कार्य ठप्प पड़ गया ।[2] अकाल से पीड़ित लोगों की सहायता के लिये बुन्देलखण्ड मिशन ने व्यापक प्रबन्ध किये । यह एक सुनहरा अवसर था, जबकि राहत-कार्यों द्वारा अकाल-पीड़ितों की मदद करके ये मिशनरी अधिकांश लोगों को अपने धर्म में दीक्षित कर सकते थे । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बुन्देलखण्ड के नौगाँव क्षेत्र में जहाँ सर्वप्रथम मिशन स्थापित हुआ था वहाँ 1892 में अमरीकी महिला मिशनरियों ने ही डेलिया फिशर के नेतृत्व में अकाल पीड़ितों की सहायता करके तथा अनाथालय की स्थापना करके अधिकांश लोगों को इसाई धर्म का समर्थक बना लिया था । निःसन्देह बुन्देलखण्ड के व्यापक अकाल जो इस क्षेत्र को सामाजिक आर्थिक रूप से कमजोर करते रहे, यहाँ की निर्धनता को बढ़ाते रहे और अप्रत्यक्ष रूप में मिशनरियों को इसाई धर्म के प्रचार का अच्छा अवसर देते रहे । इसमें सन्देह नहीं कि ये अकाल इसाई धर्म के प्रचार के लिये अच्छे अवसर साबित हुये ।

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 67.

2- वही.

1918 के अकाल के समय में भी ऐस्थर वार्ड ने मिशनरियों का एक दल संगठितकर भूख से मर रहे लोगों की खाने-पीने की सुविधाओं का प्रबन्ध किया ।[1] ऐसे लोगों से कार्य लेकर अस्पताल, स्कूल आदि का निर्माण कराया जाता था तथा इसके बदले में उन्हें पैसे देकर खाने-पीने की व्यवस्था की जाती थी ।

छतरपुर में मिशन बिल्डिंग तथा अस्पताल का निर्माण :-

1919 में मार्च के महीने में बुन्देलखण्ड मिशन ने छतरपुर में अपना एक केन्द्र स्थापित किया । इस कार्य में ऐस्थर वार्ड ने सबसे अधिक योगदान दिया । महिला मिशनरी को महारानी छतरपुर ने 31 मार्च 1919 को छतरपुर में एक एकड़ जमीन भेंट में दे दी थी[2] जिसका उपयोग शीघ्र ही मिशन बिल्डिंग के निर्माण के लिये किया गया । नौगांव से अपनी मोटर में बैठकर 14 मील की दूरी तय कर छतरपुर में हो रहे निर्माण कार्य की देख-रेख करती थी । अकाल पड़ने के कारण रोजगार हेतु तमाम मजदूर इमारत निर्माण के कार्य में लग गये अतः इससे श्रमिकों की प्राप्ति में कोई कठिनाई नहीं हुई । छतरपुर में सबसे पहले एक छोटे बंगले का निर्माण हुआ जिसमें

1- ऐ सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग (वही), पृष्ठ 67.

2- औक्सिवी ईअरली मीटिंग मिनट्स 1919, पृष्ठ 35.

पानी पीने के लिये कुँयें की भी व्यवस्था की गई । इसके पश्चात् वहाँ स्कूल तथा अस्पताल बिल्डिंग का निर्माण हुआ । सितम्बर 1920 में यह अस्पताल बनकर तैयार हो गया ।[1] जैसे ही छतरपुर में अस्पताल-सुविधाओं का प्रारम्भ हुआ, इसका प्रभाव हरपालपुर पर पड़ा । हरपालपुर के अस्पताल में चिकित्सा कार्य करने वाले विलियम प्रसाद ने नौगाँव जाकर अपना पद-त्याग कर दिया ।[2] परिणाम स्वरूप हरपालपुर में कोई डाक्टर नहीं रहा । इसी बीच विलियम प्रसाद को किसी तरह इसके लिये मना लिया गया कि जब तक हरपालपुर में डाक्टर की नियुक्ति नहीं होती, तब तक वह हरपालपुर अस्पताल में चिकित्सा कार्य करता रहेगा । किसी तरह 6 दिसम्बर 1920 तक विलियम प्रसाद हरपालपुर अस्पताल में डाक्टर का कार्य करता रहा । ऐस्थर वार्ड नौगाँव तथा आसपास के क्षेत्र में चिकित्सा कार्य करती थी तथा दवा वितरित करती थी । इस क्षेत्र में चूंकि बरसात के दिनों में मलेरिया का भी प्रकोप होता था और सड़कों के अभाव में दूर-दूर तक क्षेत्रों में जाना असम्भव हो जाता था । इसके बावजूद भी बग्घी में बैठकर महिला मिशनरी गाँव में जाकर मरीजों की देखरेख करती थी ।[3]

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 68.
2- ऐस्थर वार्ड डायरी, अप्रैल 24, 1920.
3- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 68 तथा 69.

छतरपुर में जिस अस्पताल की स्थापना की गई थी उसका नाम डाक्टर गोदार्ड मैमोरियल अस्पताल रखा गया ।[1] इस प्रकार बुन्देलखण्ड मिशन की प्रगति नौगांव, हरपालपुर तथा छतरपुर के इलाकों में चिकित्सा सेवाएं विस्तृत रूप से फैलने लगीं जिसके माध्यम से इसाई धर्म के प्रचार तथा प्रसार में वृद्धि हुई ।

बुन्देलखण्ड मिशन की 25वीं वर्ष गांठ :-

1 अप्रैल 1921 को बुन्देलखण्ड मिशन की 25वीं वर्ष गांठ मनाई गई । शीघ्र ही इसके लिये सम्पूर्ण तैयारियां पूरी करली गयीं । इस समारोह में सभी इसाईयों को रात्रि-भोज के लिये आमन्त्रित किया गया । उसमें कई लोगों के भाषण भी हुये । उसी समय वे अनाथ बच्चे जो कि अब काफी बड़े हो चुके थे, तथा जिनका पालन-पोषण डेलिया फिशर ने नौगांव के अनाथालय में किया था, उन्होंने अपने प्रारम्भिक दिनों को याद की, जबकि वे नौगांव में पल रहे थे ।[2] इस समय बुन्देलखण्ड मिशन के कार्यों की समीक्षा की गई जिससे यह ज्ञात हुआ कि 1896 में जब मिशन का नौगांव में प्रारम्भ हुआ था उस समय बुन्देलखण्ड में कोई भी इसाई नहीं था, लेकिन 1919 तक आते आते 200 से भी अधिक संख्या हो गई । 1896 में केवल तीन

1- ऐ सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 72.
2- ऐस्थर वार्ड, डायरी अप्रैल 1, 1921.

मिशनरी महिलाएं ही इस क्षेत्र में कार्यरत् थीं, जबकि 1921 में इनकी संख्या 5 हो गई तथा इसके अलावा 20 ऐसे कर्मचारी भी कार्यरत् थे जिनमें अध्यापक, कम्पाउण्डर तथा डाक्टर्स थे। निश्चित् ही इन चिकित्सा सेवाओं के माध्यम से बुन्देलखण्ड में इसाई धर्म का प्रचार तथा प्रसार काफी तेज हुआ।

डा0 ऐलिजाबिथ वार्ड का बुन्देलखण्ड आगमन :-

बुन्देलखण्ड मिशन की सुपरिन्टेन्डेन्ट ऐस्थर वार्ड जो कुछ समय के लिये अवकाश पर चली गई थीं, वे 1923 में पुन: अपने कार्य क्षेत्र में वापस लौट आयीं।[1] इस महिला सुपरिन्टेन्डेन्ट ने बुन्देलखण्ड की चिकित्सा-सेवा की कठिनाइयों को पहले से ही समझा था। उसे यह जानकारी थी कि इस क्षेत्र में गरीबी, भुखमरी और बेरोजगारी का बोलबाला है। परिणाम स्वरूप बीमारी भी कमजोर लोगों को जल्द ही अपनी पकड़ में ले लेती थी। अत: आवश्यकता इस बात की थी कि मिशन अस्पतालों में चिकित्सा सेवाओं के लिये अच्छे डाक्टरों की नियुक्ति की जाये।[2] इसी उद्देश्य से जब ऐस्थर वार्ड वापस आयीं तो उसके साथ 3 नई महिला मिशनरी, पहला मैरिल, दूसरा अन्ना काफिन और तीसरा ऐलिजाबिथ वार्ड ने भी मिशन में कार्य सहयोग देने के लिये इस क्षेत्र में पदार्पण किया।[3] छतरपुर के मिशन में एक बंगले का निर्माण हो

1- ऐ सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 78.
2- वही.
3- वही; पृष्ठ 79.

चुका था । एक अस्पताल की इमारत भी बन चुकी थी, किन्तु डाक्टर का अभाव था । डाक्टर वार्ड के आगमन से यह कमी पूरी हुई । मिशन बोर्ड ने डा० वार्ड की सेवाओं की तथा उनके सादे चरित्र की सर्वथा प्रशंसा की ।[1] डा० वार्ड का सर्वप्रथम आगमन नौगाँव में ही हुआ था । थोड़े ही दिन बाद उनकी नियुक्ति मिशन के लुधियाना अस्पताल में हो गई । नौगाँव में रहने के थोड़े दिन पश्चात् वह छतरपुर में भी कुछ समय के लिये रही, किन्तु लुधियाना में नियुक्ति हो जाने के पश्चात् उन्हें छतरपुर शीघ्र ही छोड़ना पड़ा ।[2]

डा० मेरी फ्लेमिंग का छतरपुर आगमन :-

1924 के प्रारम्भ में जब डा० वार्ड ने बुन्देलखण्ड मिशन की सेवाओं से अलग होकर लुधियाना के सेवा कार्य को हाथ में लिया उस समय छतरपुर अस्पताल में चिकित्सक का अभाव हो गया था । यह उल्लेखनीय है कि महाराजा छतरपुर ने मिशनरियों को जमीन दान में दी थी, उसके पीछे उद्देश्य यह था कि मिशन चिकित्सकों के द्वारा इस क्षेत्र की गरीब जनता का इलाज किया जा सकेगा, किन्तु जैसे ही डा० वार्ड यहाँ से वापस हुई, वैसे ही महाराजा ने मिशन के इस बंगले को खरीदना चाहा, किन्तु थोड़े ही दिन बाद जनवरी 28, 1925 को[3] डा० मेरी फ्लेमिंग की नियुक्ति करके बुन्देलखण्ड भेज दिया गया । इस नई महिला चिकित्सक ने डाक्टरी

1- पैमर कुड का पत्र पैस्थर वार्ड के नाम, अगस्त 2, 1923.
2- बौहिवो ईयरली मीटिंग मिनट्स, 1924, पृष्ठ 25-27.
3- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 83.

को ट्रेनिंग प्राप्त कर लेने के बाद ईरान में रहकर पाँच वर्ष तक कार्य करने का अनुभव भी प्राप्त किया था ।[1] इसके पश्चात् तीन वर्ष तक दक्षिण भारत में रहकर चिकित्सा कार्य भी उन्होंने किया था । अपने इस अनुभव के साथ यह नई महिला चिकित्सक छतरपुर के अस्पताल में सेवा-भावना के साथ आ डटी ।

डा० मेरी फ्लेमिंग ने चिकित्सा कार्य करने के साथ ही साथ छतरपुर में मिशन की अनेकों अपूर्ण इमारतों को पूरा कराया । इसी समय महाराजा छतरपुर द्वारा दी गई ज़मीन पर एक नया अस्पताल बनाया गया । इस दान से मिशन के लिये तथा मिशन अस्पताल के लिये एक अच्छी इमारत बनाई गई । इसमें मरीजों के लिये एक प्रार्थना-गृह की भी व्यवस्था की गई,जहाँ प्रतिदिन ईसाई धर्म की शिक्षा दी जाती थी । इस अस्पताल के सामने ही ओकन स्मृति चर्च स्थित था ।[2] अस्पताल की इमारत तथा चर्च के साथ ही कुछ पुरानी इमारतें जो कि खण्डहर हो रही थीं,उन्हें प्राप्त करने के लिये पेस्थर वार्ड ने महाराजा छतरपुर के दीवान को पत्र लिखकर यह आग्रह किया कि यदि इन इमारतों को मिशन को दे दिया जाये तो इस स्थान की सुन्दरता बढ़ाई जा सकती है ।[3] दीवान ने मिशनरियों की यह प्रार्थना स्वीकार करते हुये उन्हें ये इमारतें प्रदान कर दीं । जिस समय यहाँ पर निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुआ उस समय कुछ गुसाँईयों ने इन इमारतों को गिराने

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 83.
2- ओहियो ईयरली मीटिंग मिनट्स, पृष्ठ 44.
3- पेस्थर वार्ड डायरी,मार्च 27, 1925.

पर आपत्ति व्यक्त की, क्योंकि इनमें से अधिकांश गुसाईं साधुओं की समाधि थी । फलत: इन्हें छोड़ दिया गया । यहाँ जिस बंगले का निर्माण वार्ड ने कराया, उसका नाम भी वार्ड के नाम पर ही रखा गया । इस नये अस्पताल का प्रारम्भ 9 सितम्बर, 1925 को हुआ और 3 अक्टूबर को डा०फ्लेमिंग ने अपनी प्रथम शैल्य चिकित्सा से एक मरीज का सफल आपरेशन किया ।[1] डा०फ्लेमिंग बुन्देलखण्ड के बच्चों तथा औरतों की चिकित्सा सेवा के लिये कार्य करके लोगों का दिल इलाईफल की ओर जीतने का प्रयास किया ।

थोड़े ही दिन पश्चात् अस्पताल में डा०फ्लेमिंग के तथा वहाँ के मरीजों के बीच सम्बन्ध खराब होने लगे । मिशन की इमारतों का निर्माण कराने वाले ओवरसियर पंचमसिंह से भी इस महिला डाक्टर के सम्बन्धों में कटुता पैदा हुई[2]। पंचमसिंह ने मिशन बोर्ड कौंसिल को डा०फ्लेमिंग के गलत व्यवहार की रिपोर्ट की ।[3] अन्तत:यह फैसला किया गया कि उनकी अवधि पूरी होने के बाद उन्हें दूसरी बार इस क्षेत्र में नहीं भेजा जायेगा। सम्भवत:डा०फ्लेमिंग ने चिकित्सा सेवा में फण्डस के कमी के कारण बोर्ड को पत्र भी लिखे थे ।[4] फरवरी 16, 1929 को छतरपुर के

1- पेस्टर वार्ड डायरी, मार्च 27, 1925.
2- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 84.
3- वही.
4- वही.

महाराजा ने 6 एकड़ जमीन और प्रदान करने के लिये ऐस्थर वार्ड को पत्र लिखा ।[1] ऐस्थर वार्ड जो बुन्देलखण्ड मिशन की प्रबन्धक तथा निर्माता थी,ने 70 वर्ष की अवस्था में भी बुन्देलखण्ड मिशन के कार्य को आगे बढ़ाती रहीं । छतरपुर के महाराजा ने इस शर्त के साथ यह जमीन देने का वचन दिया कि इस जमीन में औरतों तथा बच्चों के लिये एक अस्पताल बनाया जाय ।[2] इसी बीच मिशन बोर्ड ने 2000 डालर की सहायता बुन्देलखण्ड के मिशनरियों को इस आशय से प्रेषित की,ताकि इस क्षेत्र में एक नया अस्पताल बनाया जा सके। इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिये कुछ नये मिशनरी भारत भेजे गये। इन नये मिशनरियों में वाल्टर, जिनेवा वालथों और डा0रघुवल को 1928 में बुन्देलखण्ड भेजा गया । इसके अतिरिक्त एक नर्स नेल लेकिस को 1929 में तथा जेम्स किण्डर को 1930 में बुन्देलखण्ड भेजा गया ।[3] यद्यपि नर्स फैलेना से यह आशा थी कि वह छतरपुर के अस्पताल में रहेगी,किन्तु बुन्देलखण्ड मिशन की प्रबन्धक ऐस्थर वार्ड ने उसके स्थान पर रूथ थर्सटन को छतरपुर में रहने के लिये दायित्व सौंपा । साथ ही साथ फैलेना को नौगांव में नियुक्त कर दिया ।[4] फैलेना को छतरपुर न

1- ऐस्थर वार्ड डायरी,अक्टूबर 21, 1927, मार्च 10,मई 7, अक्टूबर 6, नवम्बर 18, 1928 तथा औहियो ईस्टर्ली मीटिंग मिनट्स 1928, पृष्ठ 43.

2- वही.

3- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 86-87.

4- वही; पृष्ठ 88-89.

पहुँचने का दु:ख तो हुआ, किन्तु इसके बावजूद भी उसने नौगाँव में एक अस्पताल की व्यवस्था कर दी[1] और इस महिला मिशनरी ने छतरपुर के आसपास के गाँव की चिकित्सा-सेवा के सम्बन्ध में बड़ी ही सेवा की ।[2] बाद में चलकर उसकी नियुक्ति छतरपुर अस्पताल में हो गई ।[3]

डाक्टर रुथ हूल बैनिट :-

1926 ई0 में सर्वप्रथम मिशन बोर्ड ने डा0बैनिट को चीन जाने के लिये चुना था[4] लेकिन परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण डा0बैनिट को भारत भेजने का निश्चय किया गया । जिसके लिये उसने अपनी स्वीकृति भी दे दी । नवम्बर 1928 को इस महिला मिशनरी चिकित्सक का भारत आगमन हुआ । 1929 तक आते-आते इस महिला मिशनरी ने छतरपुर के अस्पताल में अपने सेवा कार्य का प्रारम्भ किया । उस अस्पताल में दो विदेशी नर्स फैलेना काकिन्स तथा नैल लैकिस, डाक्टर बैनिट की मदद करती थीं ।[5]

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 88-89.
2- वही.
3- वही.
4- वही, पृष्ठ 91.
5- ओहियो ईयरली मीटिंग मिनट्स 1930, पृष्ठ 56, तथा पेस्थर-वार्ड डायरी, 2 फरवरी, दिसम्बर 17, 1929.

नौगाँव में मिशन अस्पताल का निर्माण

यद्यपि नौगाँव में ही सबसे पहले मिशनरियों का केन्द्र स्थापित हुआ था, लेकिन यहाँ सुव्यवस्थित रूप से अस्पताल की बिल्डिंग का निर्माण 1930 ई० में हुआ![1] जबकि इससे पहले छतरपुर में मिशन अस्पताल प्रारम्भ किया जा चुका था । नौगाँव में अस्पताल निर्माण के कार्य में अधिकांश ऐसे मजदूरों को लगाया गया था जो अकाल के कारण रोजगार की तलाश में थे । इस नई इमारत की योजना ऐस्थर वार्ड, डा० ल्यकुल बेन्टि तथा मेजर लेजर ने तैयार की थी ।[2] बुन्देलखण्ड की गरम जलवायु को देखते हुये नौगाँव अस्पताल का निर्माण इस प्रकार किया गया, ताकि उसके बराण्डे की ऊँचाई कम से कम 19 फीट हो, ताकि मरीजों को गरमी के मौसम में अधिक गरमी का प्रभाव न पड़े ।[3] उन दिनों बुन्देलखण्ड मिशन बोर्ड का अध्यक्ष क्लाड रौने था जो 1927 ई० से अदम्य इच्छा शक्ति के द्वारा नौगाँव में अस्पताल की इमारत का निर्माण कराना चाहता था । जब उसे यह पता चला कि ऐस्थर वार्ड को इस नये कार्य को करने में आर्थिक कठिनाई उठानी पड़ रही है तो उस समय इसने धनराशि भेज कर ऐस्थर वार्ड को सहायता प्रदान की । नौगाँव, हरपालपुर, छतरपुर, बिजावर, बड़ामलहरा तथा पन्ना बुन्देलखण्ड के ऐसे केन्द्र थे जिनमें इस

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 92-93.
2- ऐस्थर वार्ड डायरी, जुलाई 19, 1929.
3- लुई पैन्टि का पत्र ऐस्थर वार्ड को , मई 6, 1930.

क्षेत्र की लगभग आधी जनसंख्या निवास करती थी । इन मिशनरियों को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि ये सभी केन्द्र लगभग मिशनरियों के कार्य क्षेत्र में आ चुके हैं । उसी समय मिशन बोर्ड से यह सूचना मिली कि अमरीका से 24 और मिशनरियाँ कादल इन क्षेत्रों में काम करने के लिये भेजा जा रहा है ।[1] काफी वर्षों तक बुन्देलखण्ड के मिशनरियों को यह जानकारी नहीं थी कि नौगाँव के अस्पताल के निर्माण के लिये धन कहाँ से प्राप्त हो रहा है । बाद में उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि यह नया अस्पताल जो एलिजाबेथ जेन की स्मृति में उनकी पुत्रियों कैथरीन तथा डा0 जोनी द्वारा दिये गये भेंट के बल पर बना है ।[2] एलिजाबेथ जेन अमेरिका की निवासी थी इसका जन्म जनवरी 29, 1841 को हुआ था । उनकी मृत्यु 24 अगस्त, 1893 में हुई । उन्हीं की स्मृति में बुन्देलखण्ड के गरीब क्षेत्र में उस अस्पताल का निर्माण कराया गया ।

जिस समय इस इमारत के निर्माण का कार्य चल रहा था, उस समय बुन्देलखण्ड मिशन की सुपरिन्टेन्डेन्ट पेस्थर वार्ड को दिन-रात परिश्रम करने के कारण मलेरिया, हृदय रोग, पेचिस, टान्सिल आदि जैसी बीमारियों का शिकार होना पड़ा । इसके कार्य की देखरेख करने वाले बुन्देलखण्ड के दो इसाई स्तुति प्रकाश तथा दयालचन्द्र सिंह को भी काफी कठिनाई उठानी पड़ी, लेकिन नवम्बर में उन्हें यह

1- ओहियो ईअरली मीटिंग मिनट्स 1927, पृष्ठ 81.
2- कैथरीन स्टाकर का पत्र पेस्थर वार्ड के नाम, जुलाई 24, 1929.

सूचना मिलकर प्रसन्नता हुई कि दिसम्बर 1930 में भारत के वायसराय द्वारा इस अस्पताल की इमारत का उद्घाटन किया जायेगा ।[1]

वायसराय का नौगाँव आगमन तथा ऐस्थर वार्ड को केशरी-हिन्द की उपाधि :-

ऐस्थर वार्ड की सेवाओं को देखते हुये एक जनवरी 1930 को उन्हें वायसराय द्वारा सेवा-कार्य हेतु केशरी हिन्द का चाँदी का मैडिल प्रदान किया गया ।[2] उसी समय एक सरकारी अधिसूचना में यह घोषणा की गई कि इस मैडिल को प्रदान करने के लिये वायसराय स्वयं नौगाँव आयेंगे तथा उसी समय नये अस्पताल की इमारत का उद्घाटन भी किया जायेगा ।[3] ऐस्थर वार्ड को शिक्षा तथा नैतिकता के क्षेत्र में की गई उल्लेखनीय सेवाओं के लिये यह मैडिल प्रदान किया गया था । 5 दिसम्बर 1930 को जिस समय ऐस्थर वार्ड को मैडल प्रदान हुआ उस समय बुन्देलखण्ड की तमाम मिशनरीज वायसराय तथा उनकी पत्नी के साथ उत्सव में शामिल हुये । इसी समय वायसराय ने नये अस्पताल के लिये महाराजा छतरपुर की ओर से दिये गये 2000 रुपये की एक थैली भी ऐस्थर वार्ड को भेंट की ।[4]

1- ऐस्थर वार्ड डायरी, जुलाई 4, 1930.
2- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 94.
3- वही, पृष्ठ 95.
4- वही.

दूसरे दिन वायसराय की पत्नी श्रीमती इरविन ने स्वयं जाकर अस्पताल का निरीक्षण किया । वायसराय की इस यात्रा के दौरान सुरक्षा की कड़ी व्यवस्था की गई थी, क्योंकि उसी समय उसके वध करने का भी प्रयास किया गया था । छतरपुर के महाराजा ने स्वयं अपने अधिकारियों के साथ वायसराय की सुरक्षा का प्रबन्ध किया था ।[1] नौगाँव के अस्पताल में नैल्सेविस, किण्डर, फ्लोरा काकिन्स, डा0बैन्टि आदि ने कठोर परिश्रम कर उक्त समारोह के आयोजन में मदद की थी । जिस समय यह समारोह समाप्त हुआ उसके तुरन्त बाद छतरपुर की महारानी ने भी अस्पताल की निरीक्षण किया ।[2]

दिसम्बर के अन्त में अस्पताल की इमारत के निर्माण का कार्य पूरा हुआ । दूसरे दिन ही सरकारी डाक्टर कर्नल टिरैल ने इसके प्रारम्भ किये जाने की घोषणा की । 23 दिसम्बर 1930 को क्रिश्चियन समुदाय का एक सम्मेलन हुआ जिसमें नये अस्पताल के निर्माण कार्य की सराहना की गई । 26 जनवरी 1931 को अधिकारिक रूप से चाँदी की चाभी से कर्नल टेरैल ने इस अस्पताल के गेट को खोला ।[3] इस समय जो समारोह हुआ उसमें ईसाई, हिन्दू, मुसलमान तथा छतरपुर के महाराजा भी उपस्थित थे । जाति प्रथा की संकीर्णता के कारण इस समारोह के बाद चाय का जो आयोजन

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 95.

2- वही.

3- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग पृष्ठ 95 तथा औडिट्स क्वेरली मीटिंग मिनट्स 1931, पृष्ठ 91.

हुआ, वह हिन्दुओं को भेंट नहीं की गई, क्योंकि हिन्दू इसाईयों के हाथ का खाना नहीं खाते थे। अतः उन्हें केले और सन्तरे बांटे गये। इस प्रकार ऐस्थर वार्ड ने अपने कार्यकाल 1800 से 1931 ई० तक बुन्देलखण्ड के तमाम भागों में अस्पताल, अनाथालय, प्रार्थना-गृह आदि का निर्माण कराकर इस क्षेत्र में इसाई सम्प्रदाय को अधिक मजबूती प्रदान की।[1]

ऐस्थर वार्ड की अनुपस्थिति में बुन्देलखण्ड मिशन के सम्मुख उत्पन्न समस्यायें :-

1931 ई० में बुन्देलखण्ड मिशन की सुपरिन्टेन्डेन्ट ऐस्थर वार्ड ने नौगांव, छतरपुर आदि क्षेत्रों में अस्पताल तथा अन्य मिशनरी प्रचार के साधनों का प्रबन्ध करके अवकाश पर चली गईं।[2] उनके स्थान पर कैरीकुक को मिशन कौंसिल का चेयरमैन तथा बुन्देलखण्ड मिशन का सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त किया गया।[3] ऐस्थर वार्ड के अधूरे कार्य को पूरा करने का दायित्व नये सुपरिन्टेन्डेन्ट के ऊपर था, किन्तु इसी बीच मिशन के सम्मुख नई समस्यायें उत्पन्न हुयीं।

(1)- मिशन कौंसिल में मत देने की समस्या :-

मिशन कौंसिल की बैठकों में परम्परागत नियम यह था कि जो मिशनरी दो वर्षों तक ग्रामीण क्षेत्रों में रहकर मिशन के कार्यों को आगे बढ़ाने में योगदान दिया हो उसे कौंसिल में बोलने का तो

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 96.
2- वही, पृष्ठ 97.
3- वही.

अधिकार होगा,लेकिन मत देने का अधिकार नहीं होगा ।
1930 में इस नियम में संशोधन हुआ जिसमें यह तय हुआ कि यदि उक्त मिशनरी ने दो वर्षों के भीतर भाषा नहीं सीख सका है तो उसे एक वर्ष तक रुककर यह कार्य करना होगा तभी उसे कौंसिल की बैठक में मत देने का अधिकार होगा ।[1] इस मामले को लेकर कौंसिल के सदस्यों के बीच विवाद पैदा हुआ जो नये सुपरिन्टेन्डेन्ट के लिये एक समस्या थी ।

§2§- महाराजा छतरपुर के साथ मिशन के बीच हुये समझौते से उत्पन्न समस्या :-

पैस्थर वार्ड के समय में ही छतरपुर के मिशनरियों ने महाराजा छतरपुर से यह समझौता किया था कि छतरपुर मिशन में गोमांस का खाने में प्रयोग नहीं किया जायगा । समस्या उस समय उत्पन्न हुई जब कि बाहर से एक पार्सल का डिब्बा जिसमें सूखा हुआ गोमांस था,वह मिशन के किसी सदस्य के पास आया । यह उस समझौते का उल्लंघन था जिसमें महाराजा छतरपुर ने मिशनरियों के साथ अनुबन्ध करते हुये यह कहा था कि कोई भी मिशनरी गोमांस का प्रयोग नहीं करेगा ।[2] छतरपुर मिशन के नये मिशनरियों ने राजा से स्पष्टीकरण माँगना चाहा बुन्देलखण्ड के हिन्दू संस्कृति वाले वातावरण में गोमांस का खाना एक समस्या मूलक प्रश्न था । लोगों की प्रतिक्रिया को देखते हुये मिशनरियों ने गोमांस खाना बन्द कर दिया ।[3]

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 97.
2- मिशन कान्फ्रेन्स मिनट्स, दिसम्बर 26, 1930.
3- वही.

उपरोक्त दोनों समस्याओं के अलावा कुछ अन्य समस्याएं भी मिशन के सम्मुख उत्पन्न हुयीं । जैसे- मिशन के कुछ सदस्यों ने जिनमें डा0विलियम प्रसाद मुख्य था । वह नशा का सेवन करने लगा था । विलियम प्रसाद ने डाक्टर के रूप में अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी, लेकिन नशे की इस लत के कारण मिशन में अनुशासन की समस्या पैदा हो गई । अन्त में विलियम प्रसाद की क्षमा-याचना के बाद यह समस्या शान्त हुई ।[1]

§3§- महात्मा गांधी के राष्ट्रीय आन्दोलनों से बुन्देलखण्ड के मिशन में उत्पन्न समस्याएं :-

मिशन पर अधिकतर अमेरिकी मिशनरियों का ही नियन्त्रण था ।[2] बुन्देलखण्ड के जो लोग इसके सदस्य बन चुके थे उनका वहाँ पर कोई भी महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं था । जब महात्मा गांधी के आन्दोलन प्रारम्भ हुये तो उससे मिशन भी प्रभावित हुआ । परिणामतः बुन्देलखण्ड के मिशनरियों ने यूरोपीय मिशनरियों के समकक्ष अधिकार मांगना प्रारम्भ कर दिया । इससे भी यूरोपीय मिशनरियों के प्रभुत्व को चेतावनी मिली ।[3]

1- ऐस्थर वार्ड डायरी, जनवरी 17, 1931.
2- ओहियो ईअरली मीटिंग मिनट्स, 1931, पृष्ठ 43.
3- वही.

मिशन द्वारा नये अस्पताल तथा चिकित्सा-सेवा का प्रारम्भ :-

इसी बीच कैरोक्स के निर्देशन में बुन्देलखण्ड मिशन ने नई चिकित्सा सेवा का विस्तार करना प्रारम्भ किया । छतरपुर एक अच्छा केन्द्र था जहाँ पर बुन्देलखण्ड के तमाम रोगियों की चिकित्सा होती थी । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि किसी व्यक्ति ने बुन्देलखण्ड के पौलिटिकल एजेन्ट पर गोली चलाकर मारने का प्रयास किया था जिसमें वह सुरक्षित बच गया था । फलत:ईश्वर को धन्यवाद देते हुये किसी व्यक्ति ने दान में मिशन को धनराशि प्रदान की । इस धनराशि का उपयोग मलहरा में अस्पताल खोलने के काम में किया गया ।[1]

मलहरा,छतरपुर से ग्यारह मील उत्तर-पूर्व की ओर स्थित है जहाँ आसपास पान के बगीचे थे । तथा एक झील भी थी । इस स्थान को क्रिश्चियन अस्पताल के निर्माण के लिये उपयुक्त पाया गया,जहाँ डा0 हुल की नियुक्ति हुई तथा एक मुस्लिम डाक्टर को भी दो फार्मेसिस्ट के साथ वहाँ नियुक्त कर दिया गया । डाक्टर की यह टीम मलहरा में प्रत्येक सोमवार को जाती थी तथा लगभग 217 मरीजों की देख-रेख करती थी ।[2] जो रोगी अधिक पीड़ित होते थे उन्हें छतरपुर अस्पताल भेज दिया जाता था ।[3]

डा0 हुल द्वारा प्रारम्भ की गई चिकित्सा सेवा के परिणाम स्वरूप वहाँ शीघ्र ही ईसाई समर्थकों की संख्या बढ़ने लगी । चिकित्सा

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 99.
2- वही.
3- वही.

सेवा से प्रेरित होकर लोग ईसाई मत स्वीकार करने लगे । धर्म प्रचार का कार्य करने वाले लोगों में प्रमुख,बुन्देलखण्ड के ही ईसाई धर्म में दीक्षित तथा मिशन कार्य में संलग्न मोतीलाल,पंचमसिंह,स्तुति प्रकाश, हीरा सिंह,दयाल चन्द्र सिंह आदि थे ।[1] मलहरा में जो धर्म प्रचार का तरीका अपनाया गया उसमें चिकित्सा सेवा प्रदान करके लोगों को ईसाई मत में दीक्षित कर लिया जाता था ।

छतरपुर में अस्पताल खोलने का मुख्य उद्देश्य चिकित्सा सेवा प्रदान करना तो था ही,साथ ही साथ मिशन के अनाथालयों में पोषित लड़कियों को नर्स की ट्रेनिंग देना भी था । इन्हें नर्स के रूप में प्रशिक्षित करके मिशन अस्पतालों में रोजगार दिलाया जा सकता था,ताकि वे आत्म निर्भर बन सकें । इसीलिये फेलेना कार्किन्स ने छतरपुर में लड़कियों के लिये एक ट्रेनिंग स्कूल खोल दिया ।[2] शीघ्र ही उस अस्पताल को बिजली और पानी की सुविधायें प्रदान कर दी गयीं ।[3]

इसी बीच डा० बुल 1931 के मध्य में डाक्टरी के प्रशिक्षण के लिये एक नये कोर्स के लिये कलकत्ता चली गई । उनकी अनुपस्थिति में अस्पताल का कार्य फेलेना और नैन देखती रहीं ।[4] इन महिला चिकित्सकों

1- द सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 99.

2- वही, पृष्ठ 101.

3- वही.

4- वही.

को आसपास के गाँवों में जाकर भी दवाएं इत्यादि देनी पड़ती थी । अत: थोड़े ही दिन पश्चात् पैस्थर वार्ड की कार इन दोनों महिलाओं को प्राप्त हो गई जिससे उन्हें आने-जाने की सुविधा हो गई ।[1]

1832 में डा0 कुल शल्य चिकित्सा की ट्रेनिंग के लिये अजमेर चली गई और 14 महीने बाद वह बुन्देलखण्ड पुन: वापस हुई ।[2] अब डा0कुल और पैलेना ने मिलकर चिकित्सा कार्य को तेजी से आगे बढ़ाया । उसी समय छतरपुर अस्पताल के वार्ड में दो ऊँची जाति की महिलाएं भर्ती थीं जिसमें एक मेहतर महिला को भी इलाज के लिये भर्ती कर लिया गया । उच्च कुल की महिलाओं ने इस पर आपत्ति की ।[3] अत: उसे अलग करना पड़ा ।

<u>अमेरिका में व्याप्त आर्थिक मन्दी के कारण बुन्देलखण्ड मिशन के सम्मुख उत्पन्न संकट</u> :-

हम यह जानते हैं कि बुन्देलखण्ड मिशन की सहायता का मुख्य आधार अमेरिका द्वारा प्राप्त आर्थिक मदद थी । इसी सहायता के बल पर बुन्देलखण्ड मिशन चिकित्सा सेवाओं का संचालन करते हुये इस क्षेत्र के गरीब लोगों को इसाई धर्म में परिवर्तित[4] कर

1- ओहियो ईयरली मीटिंग मिनट्स 1931, पृष्ठ 51.
2- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 101.
3- वही.
4- वही.

रहा था । इस समय अमेरिका में गम्भीर आर्थिक संकट पैदा हुआ । लुई पैन्टि ने इसका वर्णन करते हुये लिखा है[1] कि "मैंने अपने जीवन में निश्चित् रूप से कभी भी इतने बड़े आर्थिक संकट को नहीं देखा और मुझे आशा है कि मुझे जीवन पर्यन्त ऐसा संकट कभी भी देखने को न मिले ।" इस गम्भीर आर्थिक संकट के कारण चर्च द्वारा की जा रही धर्म प्रचार की सारी कार्यवाही लगभग ठप्प हो गई[2]। बैंक फेल हो रहे थे तथा आर्थिक मन्दी का दबाव निरन्तर बढ़ता जा रहा था अतः मिशनरी कार्य में संलग्न लोगों को भत्ते की जो धनराशि मिलती थी उसमें कटौती करते हुये केवल उसका 1/3 भाग ही इन मिशनरी प्रचारकों को दिया जाता था और उस धनराशि का भी किसी विशेष फण्ड से व्यवस्था की गई थी । आर्थिक दमनचक्र के इस काल में बुन्देलखण्ड मिशन के भारतीय धर्म-प्रचारकों तथा यूरोपीय इसाई प्रचारकों के वेतन में भी 10% कटौती करली गई । मिशन के ऊपर ऋण हो गया । मिशन की इस परिस्थिति की जाँच करते हुये वाल्टर विलियम ने लिखा है[3]- "कि हमारा मिशन ऋण लेने के मामले में ऋणी बन गया है ।"

उपरोक्त कठिन परिस्थिति का सामना बुन्देलखण्ड मिशन की अध्यक्ष कैरीकुड ने बड़े साहस के साथ किया, किन्तु अमेरिकन मिशन द्वारा जब उसे अमेरिका वापस जाने का पत्र मिला उस समय

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 102-103.
2- वही.
3- वाल्टर विलियम रिपोर्ट, मई 6, 1936.

इस महिला मिशनरी को महान् आश्चर्य हुआ ।[1] आर्थिक स्थिति के इस संकट के समय छतरपुर अस्पताल में मच्छरों का प्रकोप बढ़ने लगा जिससे पीड़ित होकर वहाँ की महिला मिशनरी अस्पताल की छत पर सोने लगी ।[2] मिशन के पास इतना भी धन नहीं रह गया था कि मच्छरों से बचने के लिये उनके लिये कम्बल और मच्छरदानी खरीदी जा सके,किन्तु थोड़े ही वर्षों के पश्चात् इन समस्याओं पर काबू पा लिया गया ।[3]

ऐस्थर वार्ड की बुन्देलखण्ड वापिसी

बुन्देलखण्ड मिशन की सुपरिन्टेन्डेन्ट ऐस्थर वार्ड जो छतरपुर अस्पताल के निर्माण के बाद कुछ महीनों के लिये अवकाश पर चली गई थी । वे नवम्बर 1932 में बुन्देलखण्ड वापस आ गई ।[4] उनके आगमन पर बुन्देलखण्ड के मिशनरियों ने उल्लास पूर्वक उनका स्वागत किया । ऐस्थर वार्ड के आगमन से लोगों को यह आशा हो गई कि मिशन के सम्मुख आर्थिक संकट और अन्य समस्याएं शीघ्र दूर हो जायेंगी । छतरपुर आते ही नई स्फूर्ति के साथ इस महिला सुपरिन्टेन्डेन्ट ने महाराजा छतरपुर से प्राप्त सहायता के आधार पर अस्पताल की इमारत का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया ।[5] शिशुओं को जन्म देने

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 103.

2- वही.

3- वही.

4- ऐस्थर वार्ड डायरी, नवम्बर 25, 1932.

5- ऐस्थर वार्ड डायरी, जनवरी 26, फरवरी 4, 1933.

व उनकी देख-रेख करने के लिये एक वार्ड का निर्माण महाराजा छतरपुर द्वारा प्राप्त सहायता धनराशि के बल पर किया गया । ज्ञातव्य है कि छतरपुर की रियासत से वहाँ मिशन द्वारा अस्पताल खोले जाने के लिये समय-समय पर आर्थिक सहायता दी जाती रही। छतरपुर के राजा अत्यन्त ही उदार थे । समय-समय पर मिशनरियों से वे धार्मिक चर्चाएं भी किया करते थे ।[1] उनकी मृत्यु के बाद उनकी ।। वर्ष उम्र का बच्चा गद्दी पर बैठा और वह जबतक व्यस्क नहीं हो जाता,छतरपुर का प्रबन्ध बुन्देलखण्ड के एक पोलिटिकल एजेन्ट के हाथ में दिया गया ।[2]

छतरपुर रियासत से प्राप्त आर्थिक मदद के बल पर मिशन के कर्मचारियों का वह वेतन जो कि आर्थिक मन्दी के समय से ही पड़ा हुआ था,उसका भुगतान ऐस्थर वार्ड ने किया,इसके अतिरिक्त इस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने अमेरिकी बोर्ड को पत्र लिखकर 800 डालर की राशि भेजने का आग्रह किया,ताकि मिशन के सम्मुख उत्पन्न आर्थिक समस्या हल की जा सके । जैसे ही अस्पताल की इमारत का विस्तार प्रारम्भ हुआ,छतरपुर के दीवान ने मिशन को यह आश्वासन दिया कि यदि महाराजा द्वारा दी गई धनराशि अस्पताल के विस्तार के लिये कम पड़ेगी तो शेष धनराशि का भुगतान भी छतरपुर रियासत द्वारा कर दिया जायेगा ।[3]

1- ऐस्थर वार्ड डायरी, जनवरी 26, फरवरी 4, 1933.
2- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 108.
3- वही.

10 दिसम्बर 1934 को अस्पताल के उन नये वार्डों का निर्माण कार्य पूरा हो गया जिसका विधिवत् उद्घाटन छतरपुर की महारानी द्वारा किया गया । इसके पश्चात् छतरपुर चिकित्सालय के बंगले के विस्तार की आवश्यकता महसूस होने लगी, ताकि नये डाक्टरों तथा अतिथियों को रहने की जगह बनाई जा सके । ऐस्थर वार्ड की देख-रेख में इस बंगले के नये कमरे का निर्माण भी शीघ्र पूरा कर लिया गया ।[1] इसी बीच नौगांव में निवास करने वाले एक अंग्रेज परिवार ने बुन्देलखण्ड मिशन को सहायता हेतु धनराशि की भेंट की जिसके आधार पर बिजावर की रियासत में गुलगंज नामक स्थान पर मिशनरियों ने एक डाक बंगला खरीद लिया । यह स्थान छतरपुर से 22 मील की दूरी पर मऊ जाने वाली सड़क पर स्थित था । 1934 की गर्मियों तक इस डाक बंगले को पूर्ण रूपेण साज-सज्जा[2] से युक्त कर दिया गया ।

ऐस्थर वार्ड ने बुन्देलखण्ड वापिसी के बाद इमारतों के विस्तार का जो काम प्रारम्भ किया था उसी के अन्तर्गत् छतरपुर में लड़कियों के छात्रावास की छत का पुर्नउद्धार किया गया । अस्पताल में पानी की व्यवस्था ठीक करने के लिये पांचवा कुंआ भी खोद दिया गया ।[3] थोड़े ही दिन पश्चात् ऐस्थर वार्ड ने वार्ड-बिल्डिंग के बराण्डे का निर्माण कराया ।

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग पृष्ठ 108.
2- वही.
3- ऐस्थर वार्ड डायरी, जनवरी 27, 1933 तथा जनवरी 10, 1934.

ऐस्थर वार्ड निर्माण-कार्य में काफी अनुभव प्राप्त कर चुकी थीं । यद्यपि यह महिला सुपरिन्टेन्डेन्ट काफी वृद्ध हो चुकी थी, किन्तु अपने धर्म के प्रचार व प्रसार हेतु वह दिन-रात परिश्रम करती रहती थी । अवकाश से वापस आने के पश्चात् बुन्देलखण्ड में अस्पताल तथा मिशन की अन्य इमारतों के निर्माण का जो सिलसिला उन्होंने प्रारम्भ किया था, उसी योजना के अन्तर्गत् ऐस्थर वार्ड ने नर्सों के निवास के लिये एक इमारत-निर्माण की योजना बनाई ।[1] उनकी इस योजना को मिशन ने इसलिये स्वीकृति प्रदान नहीं की, क्योंकि आर्थिक रूप से मिशन अभी सुदृढ़ नहीं हो पाया था ।[2] पंचमसिंह जो बुन्देलखण्ड का ही एक इसाई था और बुन्देलखण्ड मिशन के कार्य में संलग्न था, वह इमारत निर्माण-कार्य की देख-रेख भी करता था । पंचम सिंह ने इमारत निर्माण को प्रमुखता दी और बोर्ड की मनाही की अवहेलना करना प्रारम्भ कर दिया । ऐसी परिस्थिति में ऐस्थर वार्ड के समक्ष अनुशासन की समस्या पैदा हुई ।[3] अत: मिशन कौंसिल ने उसे निलम्बित कर दिया । पंचम सिंह यह भली भांति जानता था कि भले ही मिशन की नौकरी उसे न मिले, लेकिन इमारत के निर्माण का कार्य बिना पंचम सिंह की सहायता से नहीं हो सकेगा । मिशन के लिए ईंट तथा भवन-निर्माण की सामग्री को इकट्ठा करना व देख-रेख का सारा कार्य पंचम सिंह ही किया करता था । इस

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 109.
2- वही.
3- वही.

प्रकार 28 वर्ष सेवा के पश्चात् [1906 से 1933] उसे मिशन की नौकरी से निकाल दिया गया ।[1] ऐसी परिस्थिति में बुन्देलखण्ड के ऐसे लोग जो ईसाई धर्म में दीक्षित हो गये थे, उनके दिल में निराशा की भावना पैदा हुई । फलत: अमेरिकन मिशन बोर्ड ने तथा भारत में ऐस्थर वार्ड ने इस पर सहमति व्यक्त की कि मिशन के कार्य को तभी सुचारु रूप से बढ़ाया जा सकता है । यदि बुन्देलखण्ड मिशन के नये सदस्य मिशन के कार्यों की आलोचना करना बन्द कर दें ।[2] अमेरिकन मिशन बोर्ड ने इस बात पर भी बल दिया कि ऐस्थर वार्ड ने चूंकि 40 वर्षों से भी अधिक मिशन की सेवा के लिये बुन्देलखण्ड में बिताये हैं ।[3] अत: उसके नेतृत्व में ही बुन्देलखण्ड मिशन के कार्य का संचालन होना चाहिए । वास्तव में वे नये ईसाई जिन्होंने ईसाईमत स्वीकार करके मिशन में नौकरी कर ली थी, वे इस बात के लिये नाराज थे कि बुन्देलखण्ड मिशन को अमेरिका से जो सहायता आती है उससे वेतन देने के स्थान पर उस धनराशि का प्रयोग इमारत निर्माण में किया जाता है । बोर्ड के विशेष फण्ड के बारे में बुन्देलखण्ड के मिशन कौंसिल को कोई सूचना नहीं दी गई ।[4] फलत: इस मामले को लेकर बुन्देलखण्ड का मिशन दो वर्गों में बंट गया । ऐसी कठिन परिस्थिति में कैरीवुड, डा०रुथ-हूल आदि ऐस्थर वार्ड का समर्थन करने लगे ।[5]

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 109.
2- ऐस्थर वार्ड डायरी, जुलाई 18, 1934.
3- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 110.
4- ऐस्थर वार्ड डायरी, अप्रैल 11, 1935.
5- ऐस्थर वार्ड डायरी, सितम्बर 5, 1934 तथा नवम्बर 27, 1934.

ऐस्थर वार्ड के सम्मुख अन्य समस्याएं :-

इसके अलावा ऐस्थर वार्ड के सामने एक अन्य समस्या उठ खड़ी हुई जो ईसाई धर्म प्रचार से जुड़ी हुई थी । बुन्देलखण्ड मिशन ने अपने निर्णय के अनुसार पिछड़े हुये क्षेत्रों में जाकर वहाँ कैम्प लगा कर चिकित्सा आदि सुविधाओं के बल पर लोगों में ईसाई धर्म का प्रचार करना शुरू कर दिया ।[1] 1934 के प्रारम्भ में जेम्स किण्डर के अधीन एक दल ओरछा भेज दिया गया तथा दूसरे दल का नेतृत्व जोन कर्र को दिया गया जिसने पन्ना की ओर कैम्प लगाया ।[2] 10 दिन के कैम्प के बाद किण्डर की पार्टी को ओरछा रियासत से भगा दिया गया ।[3]

ठीक इसी प्रकार छतरपुर में भी ईसाई धर्म के जो तरीके अपनाये गये उसमें ईसाई स्कूलों में बाइबिल के पठन-पाठन को अनिवार्य बना दिया गया था और इसमें परीक्षा पास करना भी अनिवार्य था ।[4] यहाँ के स्कूल में फीस भी बढ़ा दी थी । अलीपुर के राजा ने छतरपुर मिशन को जमीन और ग्राण्ट की सुविधाएं पहले से इसीलिये दे रखी थीं,ताकि वहाँ के लोगों के लिये मिशन, स्कूल और अस्पताल की व्यवस्था करे । इसी लिये राजा ने नई नीति का विरोध किया । साथ ही साथ छतरपुर मिशन को इन्वाजे

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग,पृष्ठ 110.
2- वही.
3- वही.
4- वही, पृष्ठ 111-112.

किन्डर्स के तरीकों को भी उन्होंने पसन्द नहीं किया । अतः उसके स्थानान्तरण की माँग की जाने लगी ।[1] इसके अतिरिक्त छतरपुर मिशन में प्रभावशाली व्यक्ति डा० विलियम प्रसाद था जो तम्बाकू तथा शराब पीने का अभ्यस्त हो गया था । उसने भी किन्डर्स को सहयोग प्रदान नहीं किया । अन्ततः मिशन कौंसिल ने उसे निलम्बित कर दिया ।[2] बाद में फरवरी 12, 1935 को नौगाँव अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गई ।[3] चूंकि छतरपुर की जनता तथा अजयपुर के राजा किन्डर के तरीकों से सहमत नहीं थे अतः पेस्थर वार्ड को उसका स्थानान्तरण नौगाँव कर देना पड़ा ।[4] इस प्रश्न पर भी बुन्देलखण्ड के लोग आपस में मतभेद रखते थे । फलतः बुन्देलखण्ड मिशन के कुछ सदस्यों ने अमेरिकन मिशन बोर्ड को एक पत्र लिखकर पेस्थर वार्ड की शिकायत की ।[5] अन्त में मिशन बोर्ड ने यह स्वीकार किया कि बुन्देलखण्ड मिशन में नये मिशनरियों की बातों को पुराने मिशनरी न तो ठीक प्रकार से सुनते हैं और न ही मान्यता देते हैं ।[6]

1- मिशन कौन्सिल मिनट, अगस्त 3, 1934.
2- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 112.
3- पेस्थर वार्ड डायरी, फरवरी 12, 1934.
4- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 113.
5- वही, पृष्ठ 115.
6- मिशन कौन्सिल मिनट्स, फरवरी 4, 1935.

वाल्टर विलियम्स की भारत तथा चीन के मिशन सुपरिन्टेन्डेन्ट के रूप में नियुक्ति :-

कौंसिल मिशन बोर्ड ने बुन्देलखण्ड मिशन के सम्मुख उत्पन्न समस्याओं की छानबीन करने के लिये वाल्टर विलियम्स को मिशन का सुपरिन्टेन्डेन्ट बनाकर भारत भेजा । इसका उद्देश्य बुन्देलखण्ड मिशन के कार्यों को स्थायित्व देते हुये उसे और अधिक प्रभावशाली बनाना था ।[1] लुई पैलिट ने कौंसिल मिशन बोर्ड के इस निर्णय की जानकारी देते हुये भारत के दो मिशनरियों को पत्र लिखे ।[2] ऐस्थर तथा कैरीवुड,दोनों को जब इस निर्णय की जानकारी हुई तो उन्होंने इसका स्वागत किया । वाल्टर विलियम्स 2 दिसम्बर,1935 को बुन्देलखण्ड आया । उसने पूछताछ के दौरान ऐस्थर वार्ड से कहा कि बुन्देलखण्ड मिशनरियों के नये तथा पुराने सदस्यों के बीच मतभेद पैदा हुआ है,इसका मुख्य दोष पुराने मिशनरियों पर है ।[3] वाल्टर विलियम्स ने इसी समय छतरपुर रियासत के दीवान राय बहादुर, पण्डित चम्पा राम मिश्रा को एक पत्र लिख कर यह अनुरोध किया कि छतरपुर रियासत में ईसाईयों द्वारा धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया पर जो रोक लगाई गई है उसे हटा लिया जाय,लेकिन वाल्टर विलियम्स को इस दिशा में सफलता प्राप्त नहीं हुई ।[4] अत:बुन्देलखण्ड के अन्य

1- ऐस्थर वार्ड डायरी,सितम्बर 9, 1935 तथा ओहियो ईवसली-मीटिंग मिनट्स 1935, पृष्ठ 35.
2- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग,पृष्ठ 116.
3- ऐस्थर वार्ड डायरी, दिसम्बर 2, 1935.
4- वही.

स्थानों का दौरा करने के बाद ललितपुर, नौगांव और छतरपुर के मिशनरियों से बातचीत करके वह अमेरिका वापस हो गया ।[1]

अमेरिका जाने से पहले उसने बुन्देलखण्ड मिशन की मासिक बैठक में यह विचार रखा कि आप लोगों को मिशन की सेवा के अन्तर्गत् सबसे बड़ी सुविधा यह मिल रही है कि आप अपने बच्चों को वह अच्छी से अच्छी शिक्षा दे रहे हैं जो बहुत से धनीमानी व्यक्ति भी नहीं दे सकते । यह मिशन के द्वारा ही सम्भव हुआ है । इसके साथ ही आपको अमेरिकन मिशन बोर्ड की सहायता राशि के बल पर वेतन मिलता है उसका खर्च नशीली वस्तुओं के सेवन पर नहीं करना चाहिए । अगर किसी व्यक्ति ने ऐसा किया है तो उसे मिशन से निकाल देना चाहिए । डाक्टर विलियम्स ने यह भी कहा कि आप अमेरिकन मिशन बोर्ड को शिकायती पत्र न लिखें,बल्कि आप अपनी समस्याएं मिशन कौंसिल की बैठक में ही रखें । अन्त में डा० विलियम्स ने बुन्देलखण्ड के मिशनरियों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने के लिये भी प्रेरित किया और यह भी कहा कि भविष्य में आने वाले उत्तरदायित्वों को वहन करने के लिये तथा चर्च के कार्यों के लिये धन प्राप्त करने के लिये लोगों को स्वयं प्रयास करना चाहिए ।"[2] इस प्रकार डाक्टर विलियम्स ने 12 मार्च को नौगांव से प्रस्थान किया और मई में अमेरिका वापस पहुंचा ।

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 117.
2- वही. 118.

वाल्टर विलियम द्वारा अमेरीकी मिशन बोर्ड को बुन्देलखण्ड मिशन से सम्बन्धित रिपोर्ट :-

अमेरिका वापस पहुँचने पर वाल्टर विलियम ने बुन्देलखण्ड मिशन के कार्यों के बारे में सुझावों सहित एक विस्तृत रिपोर्ट प्रेषित की ।[1] 4,5 जून 1936 को अमेरिकन बोर्ड की बैठक में इस पर विचार किया गया । इसमें निम्नलिखित सुझाव दिये गये :-

﴾1﴿ बोर्ड को बुन्देलखण्ड मिशन में कार्यरत् कर्मचारियों को वेतन देने के मामले में भली भांति विचार करना चाहिए और उन्हें नियमित वेतन मिलना चाहिए । साथ ही साथ बुन्देलखण्ड मिशन को भविष्य के लिये आत्मनिर्भर बनाने की योजना बनानी चाहिए ।

﴾2﴿ विलियम्स ने अपनी रिपोर्ट में पैस्थर वार्ड के कार्यों की सराहना की । नौगांव मिशन,की विस्तृत भूमि,वहाँ का मिशनरी बंगला,अनाथालय,धसपालपुर का बंगला,स्कूल तथा अस्पताल,छतरपुर के दो बंगले तथा वहाँ की चिकित्सा - सुविधा, ये सभी पैस्थर वार्ड की सेवाओं का प्रतिफल है । वार्ड ने न केवल अमरीकी बोर्ड से ही सहायता प्राप्त की, बल्कि बुन्देलखण्ड के राजा-महाराजाओं से भेंट तथा अनुदान भी प्राप्त किया ।[2] इस प्रकार इस महिला ने बुन्देलखण्ड के अनाथ इसाईयों तथा उनके बच्चों को रहने की जगह, चिकित्सा तथा शिक्षा आदि महत्वपूर्ण चीजों की व्यवस्था करने का कार्य किया है ।

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 118-119.
2- वही.

(3) वाल्टर विलियम्स ने अपनी रिपोर्ट में पेस्थर वार्ड को 76 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने के बाद 1937 में अवकाश ग्रहण करने की सिफारिश की ।

(4) एक अन्य सिफारिश के अनुसार बुन्देलखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में जाने के लिये कम से कम 8 मिशनरियों की टोली गठित किये जाने पर जोर दिया गया ।

(5) एक अन्य सिफारिश यह भी की गयी कि बुन्देलखण्ड मिशन की आमदनी प्रतिवर्ष 12 या 15 हजार डालर तक होनी चाहिए । विलियम्स ने अपने उपरोक्त सुझावों के आधार पर बुन्देलखण्ड के पिछड़े हुए क्षेत्रों में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिये ग्रामीण क्षेत्रों में विवाहयुक्त एक-एक मिशनरी को अपनी पत्नी के साथ भेजने पर भी बल दिया ।

कैटिल का भारत आगमन :-

वाल्टर विलियम्स की सिफारिश के आधार पर एवरेट तथा कैथरीन कैटेल को भारत इस उद्देश्य से भेजा गया,ताकि वे बुन्देलखण्ड पहुँचकर मिशन के कार्यों को तेजी से आगे बढ़ा सकें ।[1] 2 सितम्बर 1936 को कैटिल अपने पुत्र डेविड तथा पुत्री बर्बरा एन के साथ भारत यात्रा पर प्रस्थान किया ।[2] कैथरीन कैटेल के पिता

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 141.
2- वही.

भी मिशनरी कार्यों में पहले से ही संलग्न थे। अमरीकी मिशन बोर्ड भी इन दोनों से पहले से ही पूर्णत:परिचित था। फलत: ऐवरेट कैटेल को इण्डियन मिशन कौंसिल का अध्यक्ष बनाया गया।[1] थोड़े ही दिन पश्चात् ये दोनों महिला मिशनरी बुन्देलखण्ड के कार्यों में जुट गईं।[2] इन दोनों मिशनरियों ने इसाई धर्म के प्रचार व प्रसार के लिये बुन्देलखण्ड की नीची जाति के लोगों में घुसपैठ प्रारम्भ कर दिया।

12 अक्टूबर 1936 को ऐस्थर वार्ड ने इन दोनों नव-आगन्तुकों का छतरपुर में स्वागत किया और उन्हें शिक्षित करना प्रारम्भ किया।[3] सर्वप्रथम आसपास के चमार बस्ती वाले इलाकों में यह कार्य प्रारम्भ किया गया। इस जाति के लोग छुआछूत के शिकार थे। अत:इसाईयों को उन्हें इसाई धर्म में दीक्षित करने में अधिक सफलता प्राप्त हुई।[4]

झाँसी में बाकर मैन स्मृति अस्पताल का प्रारम्भ :-

बुन्देलखण्ड में अमेरिका से आने वाला मिशनरियों का दल मुख्यत:महिलाओं का दल था। सर्वप्रथम 1896 में डेलिया फिशर के साथ नौगांव में जो महिलाएं आयीं थीं,वे अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन के निर्देशन में ही देश के इस पिछड़े हुये इलाके में सेवा-भाव द्वारा

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 141.
2- वही.
3- वही; पृष्ठ 143.
4- वही.

चिकित्सा सुविधाओं को उपलब्ध कराकर अनाथालय और स्कूलों की स्थापना करके इस क्षेत्र में ईसाई धर्म प्रचार का प्रसार किया। अमेरिकी फ्रेन्ड्स मिशन की महिलाओं का यह दल चर्च से सम्बद्ध था और उसी के अन्तर्गत् यह सारा कार्य कर रहा था। इन मिशनरियों को अमेरिकी फ्रेन्ड्स मिशन से आर्थिक सहायता उपलब्ध करायी जाती थी और इसी मिशन ने नौगांव, छतरपुर, हरपालपुर आदि स्थानों पर अपनी शाखाओं का प्रचार करके इसाईयत के प्रसार का कार्य किया।

झाँसी में बीकन बाग में महिलाओं तथा बच्चों की चिकित्सा के लिये मेरी बाकर मैन होस्पिटल अस्पताल की स्थापना करने का श्रेय भी अमरीका की महिला मिशनरियों को है![1] लेकिन यहाँ पर उल्लेखनीय है कि नौगांव, छतरपुर, हरपालपुर आदि स्थानों पर जो अमरीकी महिला मिशनरियां कार्यरत् थीं उनसे पृथक बीकन बाग में अस्पताल की स्थापना करने का कार्य डा० ऐलिस आर्नेल्ट नामक अमरीकी महिला मिशनरी ने किया। डा०ऐलिस का यह प्रयास किसी चर्च से सम्बद्ध नहीं था।[2] वास्तव में अमरीका में वीमेन यूनियन मिशनरी सोसाइटी की स्थापना 1860 में हो चुकी थी। यह सोसाइटी चीन तथा भारत के क्षेत्रों में जाकर स्त्रियों तथा बच्चों की चिकित्सा सुविधाओं को उपलब्ध कराना चाहती थी, क्योंकि भारत में स्त्री तथा बच्चों के चिकित्सा का उचित प्रबन्ध नहीं था। इस कार्य को करने के लिये

1- आफिस रिकार्ड, मिशन अस्पताल बीकनबाग, झाँसी।
2- वही।

डा0 पेलिस बार्नेट नामक महिला चिकित्सक ने बुन्देलखण्ड के पिछड़े हुये इलाके पर अपनी निगाह जमाई । 1897 में झाँसी शहर में[1] उन्होंने दवाई देने का कार्य प्रारम्भ किया । चिकित्सा सेवा यहाँ इसलिये आरम्भ की गई थी,ताकि स्त्रियों और बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा की जा सके । प्रारम्भ में बुन्देलखण्ड विशेषत: झाँसी के लोग इस महिला चिकित्सक के पास आना पसन्द नहीं करते थे[2] क्योंकि यहाँ के रूढ़िवादी तथा धार्मिक विश्वासों से ग्रस्त हिन्दू धर्म के लोग उन दिनों ईसाईयों से घृणा करते थे, किन्तु रोग के निदान के लिये लोगों को धीरे-धीरे इस महिला चिकित्सक की सेवायें लेनी पड़ीं ।

वीमैन यूनियन मिशनरी सोसाइटी ने जहाँ एक ओर झाँसी के ओकनबाग में अस्पताल की स्थापना की थी वहाँ इस संस्था ने कलकत्ता,इलाहाबाद और फतेहपुर में बच्चों के शिक्षा के लिये स्कूलों की स्थापना भी की थी ।[3] कानपुर में लड़कियों की शिक्षा के लिये इसी सोसाइटी ने एक गर्ल्स स्कूल खोला था । झाँसी में यह सेवा-कार्य अस्पताल तथा नर्सों की ट्रेनिंग स्कूल के रूप में आया ।

1898 ई0 में डा0पेलिस ने 20 सितम्बर को ओकनबाग में पर्याप्त जमीन अस्पताल खोलने के उद्देश्य से खरीद ली ।[4] इस जमीन की खरीद के लिये तथा अस्पताल के निर्माण के लिये

1- वार्षिक रिकार्ड ,मिशन अस्पताल ओकनबाग, झाँसी·
2- वही·
3- वही·
4- देखिये सेल डीड ऑफ लैण्ड (मिशन अस्पताल झाँसी का वार्षिक-रिकार्ड) ·

अमरीका के एक डाक्टर होप्स ने आर्थिक सहायता दी थी । इसलिये इस अस्पताल का नाम डा0 होप्स की स्मृति में रखा गया । ऐसा कहा जाता है कि डा0पैलिस झाँसी से छुट्टी पर न्यूयार्क गयी हुयी थीं । वहीं पर उनकी मुलाकात डा0होप्स नामक एक दन्त चिकित्सक से हुई जिन्हें डा0पैलिस अपना दाँत दिखाने के लिये गयी थीं । बात-चीत के समय डा0होप्स ने उनके बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि मैं मध्य भारत के झाँसी नामक स्थान पर मिशनरी कार्य कर रही हूँ और वहाँ एक अस्पताल की स्थापना करना चाहती हूँ । डा0होप्स को कोई सन्तान न थी,अतः उन्होंने लगभग 18000 डालर की सहायता धनराशि[1] डा0पैलिस को झाँसी में महिलाओं और बच्चों की चिकित्सा सुविधा के लिये अस्पताल खोलने के उद्देश्य से दिया ।[2] इसी धनराशि के बल पर 20 सितम्बर 1898 को डा0पैलिस ने झाँसी के सेठ रामलाल और रघुवर दयाल पुत्रगण मानिकचन्द्र अग्रवाल से काफी जमीन ओकन बाग में खरीद ली[3] और यहीं पर 1898 ई0 में अस्पताल की इमारत के निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ ।[4] 1900 ई0 में इस अस्पताल के मुख्य भाग का निर्माण हुआ ।[5] 1909 ई0 में इस अस्पताल के दूसरे ब्लाक का निर्माण हुआ ।[6] 1905 ई0 में ओकनबाग में ही इसी अस्पताल से संलग्न नर्सों को प्रशिक्षण देने के लिये एक स्कूल प्रारम्भ किया गया ।[7]

1- मिशन अस्पताल ओकनबाग,झाँसी का आफिस रिकार्ड।
2- वही।
3- सेल डीड आफ लैण्ड [मिशन अस्पताल झाँसी का आफिस रिकार्ड]।
4- आफिस रिकार्ड ओकनबाग अस्पताल,झाँसी।
5- वही; तथा संलग्न चित्र।
6- संलग्न चित्र नम्बर-2।
7- आफिस रिकार्ड ओकनबाग अस्पताल,झाँसी।

बोल्नबाग का यह अस्पताल स्त्रियों तथा बच्चों की चिकित्सा के लिये शीघ्र ही एक विख्यात संस्था के रूप में उभर कर सामने आयी। इस मिशन में काम करने वाले लोगों ने चिरगाँव,बबीना,दतिया, गढ़िया फाटक तथा छावनी पैंरिया में भी सप्ताह में लगभग 2-2 दिन जाकर दवाएं देते थे तथा लोगों की चिकित्सा किया करते थे।[1] उन दिनों बुन्देलखण्ड के हिन्दू समाज में पूरे देश की ही भांति बाल-विधवाओं की स्थिति बड़ी ही सोचनीय थी। अवैध रूप से गर्भ-धारण कर लेना बाल-विधवाओं के लिये और भी शर्मनाक स्थिति हो जाती थी। लोक-लज्जा के भय के कारण अपनी सन्तानों को ऐसे लोग छोड़ जाते थे। इन अनाथ बच्चों को लेकर उनकी सेवा व पालन-पोषण करके उन्हें इसाई धर्म में परिवर्तित करने का कार्य इन मिशनरियों ने शुरू किया। अत:स्त्रियों तथा बच्चों की उपचार तथा मानवीय सेवाएं उपलब्ध कराने का कार्य बोल्नबाग के इस अस्पताल ने किया।

:- सारांश -:

इस प्रकार अंग्रेजी शासनकाल में 1804 से 1947 तक बुन्देल-खण्ड जो सामाजिक,आर्थिक रूप से काफी पिछड़ा हुआ था तथा जनता भुखमरी,बेरोजगारी आदि कठिनाइयों का सामना कर रही थी। ऐसे समय में 1892 से बुन्देलखण्ड के छावनी केन्द्र नौगाँव में अमरीकी महिला मिशनरियों ने अकालों के समय अनाथालय की स्थापना

1- आफिस रिकार्ड बोल्नबाग अस्पताल, झाँसी।

करके अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन के नेतृत्व में अपने मिशनरी कार्य का प्रारम्भ किया । डेलिया फिशर जो इस कार्य की जनक थी, उनके अधूरे कार्यों को पूरा करने का काम किया बुन्देलखण्ड मिशन की महिला सुपरिन्टेन्डेन्ट ऐस्थर वार्ड ने । उनके कार्य-काल की समाप्ति तक नौगांव, छतरपुर, हमीरपुर आदि स्थानों पर अस्पतालों की स्थापना हो चुकी थी जहां मिशन द्वारा नियुक्त चिकित्सक, चिकित्सा सेवायें किया करते थे । इसी के साथ ही साथ अमरीका की अन्य महिला मिशनरियों ने भी मध्य भारत के इस पिछड़े हुये क्षेत्र में आकर स्त्रियों तथा बच्चों के चिकित्सा कार्य को अपने हाथ में लिया । झांसी में डोकनबाग स्थित अस्पताल एक पृथक मिशन द्वारा प्रारम्भ किया गया था जिसका प्रबन्ध किसी वर्ग द्वारा नहीं होता था । ठीक इसी प्रकार ललितपुर में भी अमरीकी महिला मिशनरियों ने चिकित्सा सेवा को आगे बढ़ाने का काम किया था । ज्ञातव्य है कि ये सभी अस्पताल अमरीका महिला मिशनरियों द्वारा ही चलाये जाते रहे थे ।

इन मानवीय कार्यों के पीछे मुख्य उद्देश्य अजाय ही लोगों का दिल जीतकर उन्हें ईसाई धर्म में परिवर्तित करना था । जो कार्य 1892 में नौगांव से प्रारम्भ हुआ था वह 1947 तक आते-आते सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में फैल गया । धीरे-धीरे नौगांव अस्पताल में पलने वाले बच्चे बड़े हो गये थे । उनकी शादियां कराकर तथा रोजगार दिलाकर बुन्देलखण्ड जैसे रूढ़िवादी पिछड़े क्षेत्र में ईसाई धर्म के विकास में तेजी से सफलता मिलने लगी । इन महिला मिशनरियों को बुन्देलखण्ड में राजाओं, महाराजाओं ने आर्थिक सहायता तथा जमीन इत्यादि मुफ्त

प्रदान की थी । महाराजा छतरपुर ने अपनी रियासत में अमरीका महिला मिशनरियों को अस्पताल खोलने के लिये न केवल मुफ्त भूमि ही प्रदान की थी, बल्कि उन्हें इमारत निर्माण के लिये आर्थिक मदद भी दी थी । अलीपुर रियासत के राजा ने भी हरपालपुर के मिशनरियों को इसी प्रकार की सहायता प्रदान की । ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट जो नौगाँव में ही रहा करता था, उसे प्रसन्न करने के लिये इन राजा-महाराजाओं ने इसाईयत के प्रचार व प्रसार के लिये सहयोग प्रदान किया । इस प्रकार बुन्देलखण्ड में चिकित्सा सेवाओं के माध्यम से इसाई धर्म के प्रसार में तेजी से सफलता मिली ।

——— :0: ———

अध्याय - सप्तम्

मिशनरियों द्वारा जन-सेवा हेतु किये गये अन्य कार्य

बुन्देलखण्ड में अमरीकी महिला मिशनरियों का जो दल 1 अप्रैल 1896[1] को डेलिया फिस्लर, ऐस्थर तथा मर्था नामक महिलाओं के साथ नौगांव की सैनिक छावनी में फ्रेन्ड्स मिशन की स्थापना के लिये आया, उसका प्रमुख उद्देश्य इस पिछड़े हुये क्षेत्र में जन-सेवाओं द्वारा लोगों का दिल जीतकर उन्हें ईसाई धर्म में दीक्षित करना था । हम सब भली भांति जानते हैं कि 1803 की बेसिन की सन्धि से बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी प्रभुसत्ता का विकास हुआ था, किन्तु प्रारम्भिक वर्षों तक इस क्षेत्र में ईसाई धर्म के प्रचार तथा प्रसार का कार्य विशेष रूप से नहीं हो सका था । यद्यपि बांदा में कलक्टर मेन ने प्रोटेस्टेन्ट

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 16.

मिशन की स्थापना 1858 में करा दी थी और ठीक इसी प्रकार अंग्रेजी छावनियों में कुछ ईसाई मिशनरी धर्म कार्यों में संलग्न थे, लेकिन इस दिशा में विशेष प्रगति बुन्देलखण्ड में अमरीकी मिशनरियों के आगमन से प्रारम्भ हुई । अमरीकी फ्रेण्ड्स मिशन ने इस क्षेत्र में आकर धर्म प्रसार के जो रास्ते अपनाये वह जन सेवा का ही रास्ता था । ऐसे क्षेत्र में जहाँ पर कि आये दिन अकाल पड़ रहे हों, लोग बेरोजगारी और भुखमरी के शिकार हों, वहाँ इन्हीं मानवीय तरीकों द्वारा लोगों का दिल जीता जा सकता था और यही नीति अमरीकी महिला मिशनरियों ने बुन्देलखण्ड में अपनायी ।[1] इस कार्य शैली के अन्तर्गत् स्कूलों की स्थापना, चिकित्सा सेवाओं का प्रसार तथा अनाथालयों की स्थापना आदि ऐसे तरीके थे, जिनका सहारा मिशनरियों ने धर्म प्रचार के कार्य में लिया ।[2]

अनाथालयों की स्थापना :

भूख से मर रहे गरीबी के शिकार तथा बेरोजगारों द्वारा छोड़ी हुई सन्तानों को पाल-पोष कर तथा उन्हें शिक्षित करके और रोजगार प्रदान करके मिशनरियों ने ईसाई धर्म प्रचार तथा प्रसार का कार्य किया है । नौगाँव आगमन के पश्चात् डेलिया फिशर ने 1896 में यह महसूस किया कि बुन्देलखण्ड में चारों ओर

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 16.
2- वही.

अकाल व्याप्त है । वर्षा न होने के कारण खेती नष्ट हो चुकी थी तथा लोग भुखमरी के शिकार हो चुके थे ।[1] इससे पहले के भी दो वर्षों में इसी तरह का भीषण अकाल पड़ चुका था ।[2] ऐसे समय में आस-पास के गाँव के लोग, वृद्ध, बच्चे, औरतें, जवान सभी नौगाँव में[3] इन महिला मिशनरियों के समक्ष उपस्थित हुये । इस उपस्थिति का कारण यह नहीं था कि लोग स्वतः अपनी इच्छा से नये धर्म को स्वीकार करना चाहते थे बल्कि वास्तविकता यह थी कि ये भूखे तथा नंगे लोग रोटी मांगने के लिये यहाँ इकट्ठे हुये थे ।[4] इनमें से अधिकांश ऐसे थे जो पिछले कई दिनों से भूखे थे । घास-फूस, बेरी तथा अन्य जंगली फलों को खाकर लोग किसी तरह जीवन व्यतीत कर रहे थे । ऐसी परिस्थिति में वहाँ उपस्थित एक अंग्रेज ने भूख से मर रहे लोगों को 15 डालर दान-स्वरूप भेंट किया ।[5] किन्तु यह अल्प धनराशि लोगों की आवश्यकताओं से बहुत कम थी ।

इस विषम परिस्थिति में इन महिला मिशनरियों ने भूख से मर रहे बच्चों के पालन-पोषण के लिये एक अनाथालय की स्थापना की । यहीं से बुन्देलखण्ड में ईसाइयत की नींव पड़ी ।

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 17.
2- वही.
3- वही.
4- वही.
5- वही.

यह कहना नितान्त उचित होगा कि कालों से प्रभावित भूखे
तथा गरीबों को संरक्षण देने के लिये मिशनरियों द्वारा जिन
अनाथालयों की स्थापना की गई, वे अनाथालय बुन्देलखण्ड में
ईसाई धर्म के प्रचार के केन्द्र बन गये ।

अकाल से पीड़ित लोगों ने अपने नवजात शिशुओं को
चुपके से इन अनाथालयों में छोड़ना प्रारम्भ कर दिया । इनमें
पल रहे अनाथ बच्चे प्रायः ऐसे थे जिनके माँ-बाप अकाल में मर
चुके थे ।[1] ऐसी परिस्थिति में डेलिया ने ईश्वर से प्रार्थना
करते हुये कहा था कि "ईश्वर इन सबकी रक्षा करने के लिये हमें
कुछ न कुछ रास्ता अवश्य दिखायेगा ।"[2] थोड़े ही दिन पश्चात्
नौगाँव की सैनिक छावनी की एक घुड़साल को खाली कराकर
उसका उपयोग अनाथालय की इमारत के रूप में किया जाने लगा ।[3]
यह अनाथ बच्चों की शरण-स्थली बन गई और जिसकी प्रथम इंचार्ज
महिला मिशनरी मर्था को बनाया गया ।[4] इस अनाथालय में पल
रहे बच्चों की चिकित्सा व स्वास्थ्य परीक्षण का कार्य पेस्टर
नामक महिला मिशनरी जो स्वयं एक नर्स थी, किया करती थी ।
डेलिया फिशर जो फ्रेण्ड्स मिशन की सुपरिन्टेन्डेन्ट थी वह प्रति
रविवार को दोपहर में धार्मिक गतिविधियाँ किया करती थी ।[5]
तथा यहाँ पल रहे बच्चों को ईसा मसीह की शिक्षा से अवगत कराती

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 17.
2- वही.
3- वही.
4- वही.
5- वही.

थी। रविवार के इस धार्मिक उत्सव में प्रारम्भ में उपस्थित होने वाले लोगों की संख्या लगभग 50 थी जिसमें नौगांव कस्बे के कुछ महत्वपूर्ण लोग भी शामिल हुआ करते थे। ऊैलिया और मर्था नामक महिलाएं नौगांव की ब्रिटिश छावनी में निवास कर रहे अंग्रेज सैनिकों के लिये भी धार्मिक सेवाएं उपलब्ध कराया करती थीं।[2]

1896 का अकाल इतना व्यापक था कि जिससे लगभग 2 लाख 25 हजार वर्ग मील क्षेत्रफल प्रभावित था तथा इस अकाल ने लगभग 63 लाख लोगों को प्रभावित कर रखा था। यद्यपि कुछ वर्षा अवश्य हुई, लेकिन इससे असन्तोष में कमी नहीं आई।[3] दूसरी ओर इस अकाल के परिणाम स्वरूप बीमारी का तीव्रता से प्रसार हुआ जिसमें मृत्यु दर में दो गुना वृद्धि हो गई।[4] 1891 और 1901 के बीच बुन्देलखण्ड की जन संख्या में 9 प्रतिशत की कमी हुई।[5]

अकाल पीड़ितों में विशेषत: अनाथालयों की देख-रेख तथा वहां पल रहे बच्चों के पालन-पोषण के लिये धन की आवश्यकता थी। अत: इन महिला मिशनरियों ने अमरीका स्थित अपने मिशन के कार्यालय को अनुदान-राशि में वृद्धि करने के लिये लगातार पत्र

1-द सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 17.
2-ओहियो क्वेरली मीटिंग मिनट्स, 1896, पृष्ठ 45.
3-द सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 17.
4-मरलीक ग्रीफिथ्स, द ब्रिटिश इम्पैक्ट आन इण्डिया पृष्ठ 188,
तथा इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, 1908, पृष्ठ 72.
5-वही.

लिये,किन्तु अमरीकी मिशन द्वारा इस कार्यवाही में काफी समय लग गया ।[1] इस बीच नौगाँव मिशन की मदद सामग्री लगभग समाप्त हो चुकी थी । इस आशा के साथ कि मदद की धनराशि शीघ्र प्राप्त होगी अत:नौगाँव के मिशनरियों ने सरकारी नियन्त्रण में चल रहे डेरी तथा डबल रोटी उत्पादन केन्द्र से उधार सामान लेना प्रारम्भ किया ।[2] यह इसलिये आवश्यक हो गया था,क्योंकि अनाथालय में पल रहे बच्चों को डबल रोटी तथा दूध की आवश्यकता थी,लेकिन काफी अन्तराल के बाद भी अमरीकी मिशन बोर्ड ने सहायता-धनराशि भेजने में देर की । अत:क्रोध में आकर मिशन की सुपरिन्टेन्डेन्ट डेलिया फिशर ने अमरीकी बोर्ड को लिखा कि- "आपने इस आशीर्वाद के साथ अपना प्रतिनिधि बनाकर भारत में भेजा है,ताकि हम इस देश में इस कार्य को आगे बढ़ा सकें,लेकिन हमारे ऊपर पड़ रहे आर्थिक दबावों के बावजूद भी अमेरिका द्वारा आने वाली धनराशि की ओर आपका ध्यान आकृष्ट नहीं हो रहा है ।"[3]

डेलिया फिशर के इस पत्र का अमरीका स्थित इस मिशन-बोर्ड के सदस्यों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और शीघ्र ही उन्होंने 7 पृष्ठ का एक पत्र लिखकर 1600 डालर की सहायता धनराशि के साथ डेलिया के नाम भेजा ।[4] थोड़े ही समय पश्चात् अनाथालय वाले बच्चों के पालन-पोषण के लिये सहायता हेतु कुछ धनराशि

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग,पृष्ठ 17•
2- वही•
3- वही•
4- वही•

स्थानीय वर्षों द्वारा तथा कुछ अन्य लोगों द्वारा प्रदान की गई । इसी प्रकार 421056 डालर का दान अमरीका के अन्य मिशनरियों द्वारा प्रदान किया गया ।[1] आगामी 2 वर्षों में मिशनरियों ने अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिये कम्बल,कपड़े तथा अनाज इत्यादि बांटे ।[2]

नौगांव का अनाथालय :

1896 के अकाल से ही नौगांव में अनाथालय की स्थापना की जा चुकी थी । जैसे-जैसे अनाथ बच्चे रैक्सर व डैलिया को प्राप्त होते थे वैसे ही ये दोनो मिशनरी नौगांव अनाथालय के इन्चार्ज मर्था को उन बच्चों को सौंप देती थीं । बहुत से ऐसे माता-पिता अपने छोटे शिशुओं को इस आशा के साथ छोड़ जाते थे कि जैसे ही अकाल का प्रभाव कम होगा वैसे ही वे अपने बच्चों को वापस ले जायेंगे,किन्तु आर्थिक संकट से ग्रस्त लोग दिन-प्रतिदिन और अधिक परेशान होते गये । उनकी आशाओं पर पानी फिर गया । गरीबी तथा भूख के कारण ऐसे माताओं तथा पिताओं ने अपने शिशुओं को स्वयं से हमेशा के लिये अलग कर दिया और वे अनाथालय में पलने लगे ।[3]

अमरीका के इस मिशनरी दल ने अनाथालय की तो स्थापना कर दी,किन्तु इसके बाद इन्होंने ऐसा महसूस किया कि जैसे सारा

1- ओहियो वैसली मीटिंग मिनट्स,1897, पृष्ठ 33.
2- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 18.
3- वही.

समय अनाथालय की देख-रेख और प्रबन्ध में बीत जाता है । चूंकि इन मिशनरियों ने गांव-गांव में जाकर धर्म प्रचार के लिये स्वयं को समर्पित कर रखा था ।[1] ऐसी स्थिति में अनाथालय में पल रहे बच्चों की देख-रेख मिशनरियों के मार्ग में बाधा स्तम्भ बन गई । धीरे-धीरे भारत में उनकी निवास की अवधि भी समाप्त हो रही थी[2] और उन्हें अवकाश हेतु वापस अमेरिका जाने के दिन नजदीक आ रहे थे । इन मिशनरियों को अभीतक बुन्देलखण्ड के गांवों में ईसाई धर्म में दीक्षित करने के लिये सफलता नहीं मिल सकी थी । अत:इन्हें इस बात की चिन्ता थी कि अमरीका वापस जाने के बाद नये धर्म में दीक्षित बुन्देलखण्ड के लोगों की कौन-सी सूची अमेरिकन मिशन बोर्ड के सामने पेश की जा सकेगी ।[3] समय बीतने के साथ-साथ नौगांव अनाथालय में पल रहे बच्चों की संख्या 500 से भी अधिक हो गई ।[4] इतनी बड़ी संख्या के पालन-पोषण के लिये इन मिशनरियों के पास साधन तथा देख-रेख करने वाले लोगों की नितान्त कमी थी ।

पण्डिता रमाबाई का नौगांव आगमन :

ईसाई धर्म में दीक्षित होने के पश्चात् पण्डिता रमाबाई ने अपना सम्पूर्ण जीवन गरीब बच्चों,विधवाओं तथा निम्न जाति की सेवा में समर्पित कर दिया था ।[5] वह पूना के निकट केडगांव के

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 18.
2- वही.
3- वही.
4- वही.
5- वही.

अनाथालय की देख-रेख किया करती थीं इससे पूर्व भी पंडिता रमा-बाई तीन बार केडगांव से नौगांव आ चुकी थीं ।[1] वास्तव में समय-समय पर बुन्देलखण्ड के इसाई अनाथालयों में पलने वाले बच्चों की निरन्तर बढ़ती हुई संख्या को कम करने के लिये उन्हें यहां से अन्य अनाथालयों में भेज दिया जाता था । पंडिता रमाबाई नौगांव के अनाथालय से इन बच्चों को केडगांव ले जाया करती थीं,[2] ताकि नौगांव के अनाथालय पर अधिक दबाव न बढ़ सके ।

पंडिता रमाबाई के प्रारम्भिक जीवन की अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती,लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उसका पालन-पोषण भी नौगांव मिशन द्वारा एक असहाय बच्चे के रूप में हुआ था । बड़ी होने के पश्चात् रमाबाई को अनाथालय की देख-रेख व्यवस्था का कार्य सौंपा गया तथा पूना के निकट केडगांव के मिशन में भेज दिया गया ।[3] रमाबाई को बुन्देलखण्ड के आसपास के क्षेत्रों की पर्याप्त जानकारी थी और इसीलिये उसे समय-समय पर बुन्देलखण्डके अनाथ बच्चों को महाराष्ट्र के मिशन अनाथालयों में लाने का कार्य सौंपा गया ।[4] इस बार जबकि नौगांव से जो बच्चे पूना ले जाये गये उनमें कुछ विधवायें तथा हरिजन और निम्न जाति की बाल-विधवायें भी शामिल थीं ।[5] कुछ बच्चे तो ऐसे थे जिनकी अवस्था 12 साल से भी अधिक नहीं थी ।[6] नौगांव के इस अनाथालय में

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 18.
2- वही.
3- औहियो ईअरली मीटिंग मिनट्स,1897,पृष्ठ 34 तथा 36.
4- वही.
5- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 18.
6- वही.

फ्रेन्ड्स मिशन ने 21 लड़कों तथा 3 लड़कियों को इसी अनाथालय में रख लिया जो इन बच्चों का स्थायी घर हो गया ।[1] शेष बच्चों को पंडिता रमाबाई के साथ भेज दिया गया ।

जैसे ही पंडिता रमाबाई नौगांव से पूना वापस हुईं, उस समय नौगांव अनाथालय की व्यवस्था और देख-रेख करने के लिये कुछ अन्य कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता महसूस की गई ।[2] यह उल्लेखनीय है कि अभीतक मर्था बारबर नौगांव अनाथालय की व्यवस्था और देख-रेख किया करती थीं,किन्तु उन्हें अवकाश बिताने के लिये अमेरिका जाना था ।[3] इसलिए आवश्यकता इस बात की थी कि अमेरिका जाने से पूर्व ही मर्था बारबर के स्थान पर किसी अन्य योग्य व्यक्ति की नियुक्ति कर दी जाए ।[4] ताकि अनाथालय के प्रबन्ध का कार्य सुचारूरूप से चलता रहे ।

चारलोटे बाई का नौगांव आगमन :

मर्था बारबर के स्थान पर चारलोटे बाई को नौगांव अनाथालय की व्यवस्था का कार्य सौंप दिया गया । यह एक अन्धी महिला थी जिसका जन्म लखनऊ में हुआ था ।[5] निःसन्देह वह शारीरिक दृष्टि से अपंग थी,किन्तु इसके बावजूद भी अपनी योग्यता प्यार और क्षमता के बल पर इस अन्धी महिला ने शीघ्र ही फ्रेन्ड्स

1-ओहियो ईयरली मीटिंग मिनट्स,1898,पृष्ठ 37.
2- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 18.
3- वही.
4- वही.
5- वही.

मिशन के सदस्यों को प्रभावित कर दिया ।[1] चारलोटे वार्ड एक गम्भीर धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी और नौगाँव के इस नये अनाथालय में पल रहे बच्चों को प्रेरणा का श्रोत बनने में वह अतिशीघ्र ही सफल हो गई ।[2]

धीरे-धीरे नौगाँव अनाथालय में पलने वाले बच्चे स्कूल जाने योग्य हो गये थे । अतः उनकी शिक्षा की व्यवस्था करने की आवश्यकता महसूस हुई ।[3] इसी समय फैलोजा फ्रेन्क लेण्ड नामक इंग्लिश फ्रेन्ड्स मिशनरी का नौगाँव आगमन हुआ ।[4] इस मिशनरी ने नौगाँव अनाथालय के बच्चों की शिक्षा के लिये एक स्कूल खोला तथा नौगाँव के बाजार में लड़कियों के स्कूल की व्यवस्था की गई।[5] लड़कियों की शिक्षा के लिये बुन्देलखण्ड में यह पहला स्कूल था । फैलोजा के आगमन से स्टाफ की कमी लगभग समाप्त हुई और अब क्रमशः डेलिया, मर्था और पेस्थर अवकाश व्यतीत करने के लिये अमरीका जा सकती थीं ।

नौगाँव अनाथालय के स्थायी इमारत का निर्माण :

1896 में नौगाँव में अनाथालय के रूप में प्रयोग किये जाने के लिये किराये का एक भवन जो पहले घुड़साल थी, उसे प्राप्त कर लिया गया था । धीरे-धीरे फ्रेन्ड्स मिशन को इस अनाथालय हेतु स्थायी निवास की आवश्यकता महसूस हुई । डेलिया फिशर ने

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 18.
2- वही.
3- बीहिवी वेयरली मीटिंग मिनट्स, पृष्ठ 35.
4- वही.
5- वही.

इस निर्माण कार्य के लिये अमेरिकन बोर्ड से 5 हजार डालर की सहायता की माँग की ।[1] अपने पत्र में बोर्ड को डेलिया ने यह लिखा कि "इस धनराशि के बल पर अनाथालय की इमारत का निर्माण हो सकेगा,साथ ही साथ इस इमारत में कार्य करने के लिये सैकड़ों परिवारों को रोजगार भी उपलब्ध होगा जिससे अकाल पीड़ितों की सहायता भी हो सकेगी ।"[2] लेकिन प्रारम्भ में अमेरिकन बोर्ड ने डेलिया के इन प्रस्तावों के प्रति असहमति व्यक्त कर दी ।[3] 1897 के नवम्बर के प्रारम्भ में डेलिया फिशलर नौगाँव से अपना अवकाश व्यतीत करने हेतु अमेरिका आयी ।[4] उसे इस बात की जानकारी थी कि अमेरिका बोर्ड ने चीन में कार्यरत् अमेरिकन मिशनरियों को अस्पताल के निर्माण के लिये आर्थिक सहायता दे दी है ।[5] इसी आधार पर डेलिया ने भी नौगाँव स्थित अमरीकन मिशनरियों को वहाँ अनाथालय की इमारत का निर्माण करने के लिये सहायता हेतु धनराशि की माँग की ।

डेलिया ने बोर्ड की बैठक में अपने तर्क प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जिसके परिणाम स्वरूप सहायता की यह धनराशि कई किश्तों में प्राप्त हो सकी । निःसन्देह यदि डेलिया अमेरिका न गई होती तो नौगाँव स्थित अनाथालय के लिये अमरीकी सहायता न प्राप्त हुई होती । इस सहायता के साथ डेलिया 1899 के प्रारम्भ में भारत वापस लौटी ।[6]

1- ओहियो ईयरली मीटिंग मिनट्स ,1897, पृष्ठ 36.
2- वही.
3- वही.
4- देखिए मेरीब्रुक का पत्र पेस्थर वार्ड के नाम,नवम्बर 8,1897.
5- वही.
6- ओहियो ईयरली मीटिंग मिनट्स,1897, पृष्ठ 27.

नौगाँव वापस आने के पश्चात् इस महिला मिशनरी को यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि यहाँ नौ नये लोगों को ईसाई बना लिया गया था इसके अलावा अनाथालय के 10 कर्मचारियों को भी ईसाई बना लिया गया था । नौगाँव में शाम की चाय के समय फैनीजा फ्रैन्क लैण्ड और ऐस्थर वार्ड ईसाईमत के प्रचार और प्रसार की नई सम्भावनाओं के बारे में बातचीत किया करती थीं । धीरे-धीरे अनाथालय का स्कूल तथा नौगाँव बाजार स्थित लड़कियों का स्कूल भी अच्छी तरह विकसित हो रहा था।[1] चारलोटे बाई के परिश्रम से अनाथालय में अनुशासन अच्छी प्रकार बना हुआ था ।[2] जब डेलिया ने उन्हें अनाथालय के निर्माण के लिये प्राप्त आर्थिक सहायता की जानकारी दी उस समय इन मिशनरियों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा ।[3]

नौगाँव में अनाथालय इमारत के निर्माण तथा उसके लिये जमीन आदि प्राप्त करने के लिये डेलिया को अथक परिश्रम करना पड़ा । वहाँ के पोलीटिकल एजेन्ट ने भी सैनिक छावनी के निकट अनाथालय भवन के निर्माण की योजना के प्रति सहमति व्यक्त नहीं की ।[4] सम्भवतः कारण यह था कि इस अनाथालय के समीप ही सैनिक छावनी थी जिससे सैनिकों की गोपनीय सूचनाएं बाहर जा सकती थीं । इसीलिए पोलीटिकल एजेन्ट ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया था, लेकिन इसके स्थान पर थोड़ी दूरी पर

1- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 20.
2- वही.
3- वही.
4- वही.

ही 15 एकड़ भूमि इस भवन के निर्माण के लिये 13 एकड़ जमीन पट्टे पर इन मिशनरियों को प्रदान कर दी गई जिसका वास्तविक किराया 18 डालर प्रति वर्ष था ।[1] यह पट्टा 28 जून 1900 ई० में प्राप्त हुआ ।[2] ऐस्थर वार्ड और डेलिया ने मिलकर अनाथालय भवन के निर्माण का कार्य जून 1901 ई० तक पूरा कर लिया ।[3] अनाथालय के भवन में ही चारलोटे वार्ड के निवास के लिये एक कमरा भी बना दिया गया ।[4] इमारत निर्माण के इस कार्य के साथ ही अमरीका से प्राप्त सहायता धनराशि भी लगभग समाप्त हो चुकी थी । किन्तु फरवरी 1902 ई० में जैसे ही एक बंगले की आधारशिला रखी गयी वैसे ही अमरीकी मिशन से सहायता की धनराशि भी प्राप्त हो गई और शीघ्र ही जनवरी 1903 तक मिशन के कर्मचारी इस बंगले में आ गये ।[5]

नौगांव के बाजार में लड़कियों के स्कूल का प्रबन्ध करने वाली महिला एलिजा फ्रेन्क लेण्ड यहां नौ वर्ष तक निवास करने के पश्चात् इंगलैण्ड वापस चली गईं । इनकी अनुपस्थिति में अन्ना पैर्जटन ने स्कूल की देख-रेख का कार्य जारी रखा । इन प्रयासों के द्वारा ये मिशनरी लोगों को इसाई धर्म में दीक्षित कर रहे थे । शीघ्र ही दो अन्य लोगों को इसाई धर्म में पहला कोलिया तथा दूसरा भगवन नामक युवाओं को दीक्षित कर लिया गया । इनकी सहायता से डेलिया ने

1- ओहियो ईयरली मीटिंग मिनट्स, 1899, पृष्ठ 41.
2- वही; 1901, पृष्ठ 48.
3- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 21.
4- ओहियो ईयरली मीटिंग मिनट्स, 1901, पृष्ठ 48.
5- वही; 1903, पृष्ठ 44.

प्रचार-प्रसार का कार्य गाँवों में बढ़ाना शुरू कर दिया ।[1]
1901 में दो अमरीकी महिला मिशनरियों के दल को बुन्देलखण्ड में चर्च के निर्माण की आज्ञा भी प्राप्त हो गई ।

बुन्देलखण्ड में प्रेस्बिटेरियन चर्च की स्थापना (1902) :

इस क्षेत्र में ईसाई मत के बढ़ते हुये प्रचार को देखकर अमरीका स्थित मिशन बोर्ड अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था और बुन्देलखण्ड के मिशनरियों को धनराशि भेजकर निरन्तर मदद कर रहा था, ताकि ईसाईयत और तेजी से फैल सके । 11 अप्रैल 1902 में बुन्देलखण्ड में प्रेस्बिटेरियन चर्च नामक संस्था का गठन कर दिया गया जो अमरीकी मिशन की ही एक संस्था थी । प्रारम्भ में 49 लोग इसके सदस्य बन गये थे । 31 लोग इसके पूर्ण स्थायी सदस्य थे, जबकि शेष लोगों को इसकी अस्थायी सदस्यता दी गई थी ।[2] इस संस्था ने प्रारम्भ में 5 गाँवों में जाकर किराये के भवन प्राप्त किये तथा मिशन के जवान व्यक्तियों को धर्म प्रचार के लिये इन गाँवों में भेज दिया गया ।[3] दूसरे ही वर्ष 3 अन्य गाँवों में भी प्रेस्बिटेरियन चर्च की ओर से किराये पर भवन प्राप्त किये गये । इन गाँवों में धर्म प्रचार हेतु जाने के लिये अमरीकी मिशन की सहायता से नौगाँव के मिशनरियों ने एक बग्घी खरीद ली थी ।[4] थोड़े ही दिन पश्चात् मिशन की कार्यों में और तेजी आयी और लखनऊ से मैरी बाई नामक महिला

1- ओहियो ईयरली मीटिंग मिनट्स, 1903, पृष्ठ 60.
2- वही; पृष्ठ 60 तथा 63.
3- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 23.
4- वही.

के नौगाँव आगमन से महिलाओं में भी धर्म प्रचार तथा प्रसार का कार्य प्रारम्भ हुआ ।[1] मेरीबाई को चारलोटे बाई की सहायता एवं परामर्श के लिये नियुक्त कर दिया गया ।

नौगाँव अनाथालय में पोषित बच्चों तथा युवाओं के विवाह का प्रबन्ध :

नौगाँव में अनाथालय की स्थापना हो जाने के पश्चात् तथा प्रेस्बिटेरियन चर्च की स्थापना के साथ ही इस क्षेत्र में सुनियोजित ढंग से इसाई धर्म के प्रचार का कार्य आगे बढ़ाया गया ।[2] नौगाँव के बाजार में स्थित लड़कियों का स्कूल अन्ना फर्टन के नेतृत्व में अच्छी तरह विकसित हो रहा था । यद्यपि उन दिनों पढ़े-लिखे लोगों का अनुपात इस क्षेत्र में केवल 2% ही था ।[3] किन्तु इसके बावजूद भी नौगाँव के लड़कियों के स्कूल में एक पुस्तकालय का प्रारम्भ किया गया जिसके प्रारम्भ में 100 पुस्तके रखी गयीं ।[4] इस स्कूल में अध्यापन कार्य हेतु किसी इसाई शिक्षक का अभाव था । अतःएक हिन्दू महिला को यहाँ एक शिक्षिका के रूप में नियुक्त कर दिया,लेकिन शीघ्र ही उस हिन्दू महिला को इस स्कूल से हटा दिया गया,क्योंकि वह हिन्दू रीति के अनुसार स्वयं मूर्ति-पूजा करती थी और तभी से यह तय कर लिया गया कि अब इस स्कूल में केवल इसाई

1- ओहियो ईयरली मीटिंग मिनट्स, 1903, पृष्ठ 63.
2- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 23.
3- ओहियो ईयरली मीटिंग मिनट्स, 1930, पृष्ठ 56.
4- वही.

अध्यापिका की ही नियुक्ति की जायेगी । अन्ना फेर्डन के इंग्लैण्ड वापस चले जाने पर ईवा पैलिन नामक इंग्लैण्ड की महिला मिशनरी को इस स्कूल के प्रबन्ध का काम सौंपा गया ।[1]

अनाथालय में पोषित बच्चे अब बड़े हो चुके थे । आगे उनमें से अधिकांश ने पढ़ना-लिखना भी छोड़ दिया था अतः उन्हें विभिन्न प्रकार की हस्त शिल्प एवं कारीगरी की ट्रेनिंग देकर रोजगार हेतु तैयार कर दिया गया । 1904 में नौगांव में ही औद्योगिक प्रशिक्षण के लिये मिशन ने एक स्कूल की स्थापना कर दी थी जिसमें कढ़ाई, सिलाई, बढ़ईगीरी, बागवानी, कपड़ों की बुनाई, मकान-निर्माण आदि का प्रशिक्षण दिया जाता था । इसके साथ ही इन मिशनरियों ने इस अनाथालय में जवान हुये लोगों की विवाह का भी प्रबन्ध इस अनाथालय में पल रही लड़कियों के साथ कर दिया । सितम्बर 1904 में इस अनाथालय में पले हुये दो लोगों की पहली शादी हुई जिसमें दौलिया का विवाह सुन्दरिया के साथ कर दिया गया । यही नीति उन लोगों के प्रति भी जारी रखी गई जो इस अनाथालय में पल कर बड़े हुये थे । इन लोगों को अपनी जाति तथा वर्ण की कोई जानकारी नहीं थी, क्योंकि काल के कारण जब ये अपने मां-बाप द्वारा छोड़ दिये गये थे तभी से इनकी जांच-पड़ताल करने वाला कोई नहीं था । इस अनाथालय में इसी प्रकार अन्य शादियां भी हुयीं । इस प्रकार ये ईसाई परिवार निरन्तर बढ़ते गये ।[2]

1- बोहिमो ईयरली मीटिंग मिनट्स, 1904, पृष्ठ 38.

2- ए सेन्चुरी आफ प्लान्टिंग, पृष्ठ 24.

बुन्देलखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों में अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन की शाखाओं का प्रारम्भ :

नौगांव में सर्वप्रथम अमरीकी फ्रेन्ड्स मिशन का जो दल आया था उसका मुख्यालय अमेरिका स्थित ओहियो था । डेलिया फिशर ने सबसे पहले नौगांव में ही अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन की स्थापना की थी ।[1] धीरे-धीरे अनाथालयों की स्थापना तथा चिकित्सा सेवाओं का प्रसार होता गया और नौगांव केन्द्र की स्थापना के 10 वर्ष बाद ही छतरपुर के राजा के सहयोग से इन मिशनरियों ने छतरपुर में ही अपनी एक शाखा का प्रारम्भ किया ।[2] छतरपुर के बाद ही धर्म-प्रचार का यह कार्य बुन्देलखण्ड के ग्रामीण अंचलों में तेजी से फैलने लगा और शीघ्र ही बिजावर, गंज, घौरा, मलहरा, राजनगर तथा गुलगंज जैसे पिछड़े हुये ग्रामीण क्षेत्रों में भी अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन की शाखायें खोल दी गयीं ।[3] छतरपुर में इस मिशन ने स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों के लिये छात्रावास का भी निर्माण कर दिया । धार्मिक सभायें तथा मिशन की वार्षिक बैठकें जो नौगांव में होती रहती थीं, उनमें से अब ये बैठकें छतरपुर में भी की जाने लगीं ।[4]

इस मिशन ने बुन्देली भाषा में बुन्देलखण्ड हैण्डबुक नामक पुस्तक का प्रकाशन भी कराया जिसमें ईसाई धर्म की शिक्षायें लिखी हुई थीं । इस कार्य में छतरपुर की मिशनरियों के अलावा कानपुर के

1- ए क्रिटिकल इनक्वायरी इन टू द बुन्देलखण्ड क्रिश्चियन मित्र समाज वर्क इन द बुन्देलखण्ड एरिया (ए रिसर्च पेपर सब्मिटेड बाई रत्नाकर एम०राव 10-1-1985।)

2- वही।

3- वही।

4- वही।

डॉक्टर अक्बर हक ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया । इस पुस्तक के माध्यम से लोगों को ईसाई धर्म की शिक्षा तथा अन्य पहलुओं को समझने में सुविधा हो सकी ।

बुन्देलखण्ड मसीह मित्र समाज का गठन :

देश स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् धीरे-धीरे यह भावना भी जोर पकड़ने लगी कि जो विदेशी मिशनरी विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत् हैं उन्हें अपना कार्य स्थानीय ईसाईयों को ही सौंप देना चाहिए । विदेशी मिशनरियों के प्रति जो भावना प्रबल हो रही थी उसके अन्तर्गत् ही बुन्देलखण्ड में अमरीकी मिशनरियों ने यह अनुभव कर लिया था कि शीघ्र ही उन्हें अपना कार्य बुन्देलखण्ड के ईसाई संगठन को सौंप देना चाहिए । फलत:बुन्देलखण्ड मसीह मित्र समाज नामक संगठन का गठन हुआ जिसके सदस्य अधिकांश वही लोग थे जिनका पालन-पोषण अमरीकी मिशनरियों द्वारा चलाये गये अनाथालयों में हुआ था ।[1] बुन्देलखण्ड मसीह मित्र समाज का कार्य लगभग वही था जो अमरीकन फ्रेन्ड्स मिशन का था । इस प्रकार गरीबों की शिक्षा, स्वास्थ्यके अतिरिक्त धर्म-प्रचार का दायित्व भी इन्हीं पर था । बुन्देलखण्ड के चर्चों की व्यवस्था शिक्षण संस्थाओं का प्रबन्ध भी इसी संस्था के कार्य क्षेत्र में था । इस बात पर अधिक जोर दिया गया कि ईसाईयों की देख-रेख तथा धर्म प्रचार को प्रमुखता दी जाय । चूंकि देश आजाद हो जाने के बाद अमरीका से आने वाली सहायता की राशि कम

1- देखिये भारतीय मिशन की 83वीं वार्षिक रिपोर्ट (अमेरिकन-फ्रेन्ड्स मिशन, छतरपुर 1956, पृष्ठ 43-44).

होने लगी थी अतः ईसाई धर्म के प्रचार व प्रसार में भी धीरे-धीरे कमी आने लगी । धीरे-धीरे बुन्देलखण्ड मसीह मित्र समाज ने अन्य संस्थाओं की भी स्थापना कर दी जिसका उद्देश्य निरन्तर ईसा मसीह के सिद्धान्तों का धर्म प्रचार करना था । इनमें प्रमुख रूप से किसान सेवा समिति आपरेशन एण्ड मोबिलाइजेशन,फ्रेण्ड्स मिशनरी प्रेयर आदि उल्लेखनीय थी ।[1]

डाक्टर कैटिल द्वारा दिये गये सुझाव :

बुन्देलखण्ड मसीह मित्र समाज को आत्मनिर्भर संस्था बनाने के उद्देश्य से डा0 कैटिल ने महत्वपूर्ण सुझाव दिये थे । डा0 कैटिल अमरीकन फ्रेण्ड्स मिशन के जनरल सुपरिन्टेन्डेन्ट होकर बुन्देलखण्ड भेजे गये थे । उन्होंने अमरीकी मिशन की ओहियो में होने वाली वार्षिक बैठक में जो महत्वपूर्ण सुझाव दिये उसमें यह कहा कि आगामी 5 वर्षों के अन्तर्गत् अमरीकी मिशन को बुन्देलखण्ड में अपने कार्यों को स्थानीय ईसाईयों के ऊपर सौंप कर वहाँ से अपना हाथ वापस कर लेना चाहिये ।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात् भारत सरकार ने विदेशी मिशनरियों को यह निर्देश दे दिया था कि वे धर्म प्रचार सम्बन्धी कार्यों को स्थानीय ईसाईयों को सौंप दें और मिशन का समस्त प्रबन्ध भी इन्हीं स्थानीय लोगों को सौंप दिया जाये । इस बदले हुये वातावरण में बुन्देलखण्ड स्थित अमरीकी

1- देखिये भारतीय मिशन की छठीं वार्षिक रिपोर्ट [वही]·
2- देखिये डी0एल0कैटिल का पत्र 20 अक्टूबर,1953·

मिशनरियों को निराशा हुई । जबकि बुन्देलखण्ड मसीह मित्र समाज का प्रश्न था, यह संस्था पूर्णरूपेण अमरीकी मिशन के दायित्व को वहन करने के लिये सक्षम नहीं थी । डा०कैटिल ने जो सुझाव प्रस्तुत किये थे उनमें मिशन बोर्ड की कुछ सम्पत्ति को बेचने का भी प्रस्ताव रखा गया ।[1] ऐसा करने से मिशन की इन इमारतों की देख-रेख करने का कार्य कम हो जायेगा । इस नीति के अनुसार इन संस्थाओं में कार्यरत् मिशन के कर्मचारी रोजगार से वंचित हो जायेंगे और इससे धर्म के कार्य में परेशानी आयेगी ।[2] किन्तु धीरे-धीरे बुन्देलखण्ड मसीह मित्र समाज ने अमेरिकन मिशन के बुन्देलखण्ड के कार्य को सम्भाल लिया ।

अन्य ईसाई मिशनों द्वारा अनाथालयों की स्थापना :

अमेरिकन मिशन बोर्ड ने ही सर्वप्रथम बुन्देलखण्ड में पहले अनाथालय की स्थापना नौगाँव में की थी । इसके पश्चात् अलीपुर, छिबावर, हरपालपुर, कुलपहाड़ तथा अन्य क्षेत्रों में भी अनाथालय तथा मानवीय सेवाओं की स्थापना कर दी गयी । इसके अतिरिक्त कुछ अन्य मिशनरियों ने भी इसी प्रकार की स्थापना कर, इस क्षेत्र में ईसाई धर्म के प्रचार को आगे बढ़ाने का कार्य किया है ।[3] बुन्देलखण्ड में कैथोलिक मिशन द्वारा भी रमपुरा, सागर, एवं झाँसी स्थित खुशीपुरा तथा अन्य गरीब बस्तियों में कैथोलिक सम्प्रदाय की

1- देखिए डी०एफ०कैटिल का पत्र 20 अक्टूबर, 1953.
2- वही.
3- देखिए अध्याय पाँचवा ।

ओर से अनाथालयों की स्थापना की गई थी । यह ऐसा माध्यम था जिसके द्वारा समाज के असहाय वर्ग की आर्थिक मदद करके उन्हें इसाई धर्म में दीक्षित कर लिया जाता था । कैथोलिक मिशन में अधिकांश माल्टा के मिशनरियों ने ही बुन्देलखण्ड में इस कार्य को आगे बढ़ाने का कार्य किया था ।[1] इन्हीं मिशनरियों ने मानिकपुर, बाँदा के पिछड़े हुये जंगली इलाकों में मिशन की शाखाएं खोल कर लोगों में इसाई धर्म का सन्देश फैलाने का कार्य किया था ।[2]

बुन्देलखण्ड में धर्म प्रचार का कार्य करने वालों में कनेडियन प्रिस ब्रिटेरियन चर्च का भी अग्रणी स्थान रहा है ।[3] इस संस्था ने ही झाँसी स्थित ग्वालियर रोड पर सी०पी०मिशन कम्पाउण्ड का निर्माण कराया था जहाँ पर चर्च के साथ ही साथ बालिकाओं के लिये स्कूल और लोगों को विभिन्न प्रकार के उद्योगों का प्रशिक्षण देने के लिये एक प्राविधिक स्कूल भी खोल दिया गया था ।[4] कनेडियन प्रिस ब्रिटेरियन चर्च ने ही झाँसी के ही समीप इसागढ़ नामक गाँव की स्थापना की तथा वहाँ जमीन खरीदकर इस संस्था ने अपने अनुयायियों को दे दिया था । इन आर्थिक तरीकों से बुन्देलखण्ड के लोगों को सहायता देकर इसाई बनाने में सहायता प्राप्त हुई । इस प्रकार विभिन्न हस्त उद्योगों तथा क्राफ्ट की ट्रेनिंग देने के कार्य का प्रारम्भ जो अमेरिकन मिशन बोर्ड ने नौगाँव में शुरू किया था ।[5] उसे अब अन्य मिशनरियों ने भी इस क्षेत्र में अपना लिया।

1- देखिए अध्याय पाँचवाँ ।
2- वही•
3- वही•
4- वही•
5- वही•

नर्सेस ट्रेनिंग स्कूल की स्थापना :

अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन ने चिकित्सा सेवा द्वारा लोगों को सुविधाएं उपलब्ध कराकर उन्हें ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट करने का जो प्रयास किया था उसके अन्तर्गत् छतरपुर में डा०गोदार्ड स्मृति अस्पताल की स्थापना तो हुई ही थी! साथ ही साथ हरपालपुर में भी विलियम प्रसाद,लोगों की चिकित्सा का प्रबन्ध कर रहा था ।[2] धीरे-धीरे जहां-जहां भी इस मिशन को शाखाओं का प्रारम्भ होने लगा वहां स्कूल ,अस्पताल तथा अनाथालय की भी व्यवस्था की जाने लगी । छतरपुर में अस्पताल की स्थापना हो जाने के बाद नर्सों की आवश्यकता महसूस हुई अत:नर्सों को प्रशिक्षण देने के लिये एक स्कूल भी खोल दिया गया ।[3] इन स्कूलों में ईसाई नर्सों को ही प्रवेश देकर प्रशिक्षण दिया जाने लगा,ताकि उन्हें आत्म-निर्भर बनाया जा सके, ऐसा करने से धर्म प्रचार की सम्भावनाएं काफी बढ़ जायेंगी ।

झांसी में 1900 ई० में अमेरिकन डा० होप्स द्वारा छोड़े गये फण्ड का उपयोग ओकन बाग में महिलाओं तथा बच्चों की चिकित्सा के लिये किया गया । प्रारम्भ में यह अस्पताल काफी छोटा था, किन्तु धीरे-धीरे इसका विस्तार हो गया । यह उल्लेखनीय है कि ओकन बाग का अस्पताल अमरीकी फ्रेन्ड्स मिशन से पृथक संस्था द्वारा

1- देखिए अध्याय छठवां ।
2- वही।
3- वही।
4- वही।

खोला गया था ।[1] यह किसी वर्ग से भी सम्बद्ध नहीं था ।[2] इस अस्पताल में नर्सों की आवश्यकता को पूरा करने के लिये यहाँ नर्सों का एक प्रशिक्षण स्कूल इसी अस्पताल के अन्तर्गत् खोला गया इसमें भी प्रशिक्षण उन्हीं नर्सों को दिया जाता था जो इसाई होती थीं । नि:सन्देह यह भी इसाईयों को अधिक आर्थिक रूप से आत्म निर्भर बनाने का एक प्रयास था ।

ठीक इसी प्रकार कैथोलिक मिशन के अन्तर्गत् भी जो अस्पताल अथवा स्कूल खोले गये वहाँ भी नियुक्त किये जाने वाला स्टाफ इसाई ही होता था । इस प्रकार इन मिशनरियों ने नर्सों के प्रशिक्षण देने की जिस योजना का प्रारम्भ किया वह बुन्देलखण्ड में इसाई धर्म के प्रचार का एक सशक्त माध्यम था ।

स्त्री शिक्षा का प्रसार :

बुन्देलखण्ड में स्त्रियों की स्थिति अंग्रेजी शासन काल में अत्यन्त पिछड़ी हुई थी । नि:सन्देह अंग्रेज अधिकारियों की मुख्य रुचि यहाँ का अधिक से अधिक आर्थिक शोषण करने की थी ।[3] अधिक से अधिक राजस्व वसूल करना, विदेशी वस्तुओं के उपभोग को बढ़ावा देना, स्थानीय उत्पादनों को हतोत्साहित कर नष्ट करना, खनिज सम्पदा का उपयोग न करना, यही नीति इस क्षेत्र में ब्रिटिश शासकों की रही ।[4] आर्थिक शोषण की इस नीति ने

1- देखिये अध्याय छठवाँ ।
2- वही।
3- वही। द्वितीय ।
4- वही।

लोगों को भुखमरी और गरीबी की रेखा के निकट ला दिया । असहाय और बेरोजगार लोग किसी प्रकार जीवन व्यतीत कर रहे थे, ऐसे वातावरण में शिक्षा का प्रचार व प्रसार की कोई सम्भावना ही नहीं थी । स्त्री शिक्षा की स्थिति तो और ही खराब थी । विशेषत: यह देखते हुये यह क्षेत्र रूढ़िवादिता से ग्रस्त था । अत: स्त्रियों की शिक्षा की स्थिति अत्यन्त ही शोचनीय थी ।

जब मिशनरियों ने धर्म प्रचार की योजना का प्रारम्भ किया उस समय स्कूलों की स्थापना कर स्त्री शिक्षा का प्रारम्भ किया गया । मिशनरियों की यह नीति थी कि इस पिछड़े हुये समाज में अंग्रेजी के पठन-पाठन का प्रारम्भ कर बाइबिल तथा ईसामसीह के उपदेश लोगों तक आसानी से पहुंचाए जा सकेंगे । इसके साथ ही विशेषत: अधिकारियों के बच्चों तथा बुन्देलखण्ड के ईसाईयों के बच्चों को तो अंग्रेजी ढंग से पाश्चात्य शिक्षा देने की तो आवश्यकता तो महसूस की ही जा रही थी । अत: लड़कियों के स्कूलों की स्थापना की जाने लगी । बुन्देलखण्ड में सबसे पहला लड़कियों का स्कूल खोलने का श्रेय अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन को ही है ।[1] इस स्कूल का प्रारम्भ नौगांव में ही किया गया था ।[2] धीरे-धीरे स्त्री शिक्षा का और विस्तार किया जाने लगा । झांसी में कैनेडियन प्रिसबिटेरियन मिशन की ओर से लड़कियों का स्कूल खोला गया जिसमें छात्रावास की भी व्यवस्था

1- देखिए अध्याय पांचवां ।
2- वही।

थी । इसके अतिरिक्त कैथोलिक मिशनरी भी इस दिशा में प्रयत्न शील रहे और इन कैथोलिकों ने झाँसी में लड़कियों के लिये एक कान्वेन्ट स्कूल प्रारम्भ किया जिसे सेन्ट फ्रांसिस कान्वेन्ट स्कूल के नाम से पुकारा जाता है ।[1] इन स्कूलों में अध्यापन कार्य तथा स्टाफ में नियुक्तिइसाईयों की ही की जाती रही । निःसन्देह स्त्री शिक्षा के प्रसार से मिशनरियों को धर्म प्रचार के क्षेत्र में सुविधा प्राप्त हुई ।

मिशन द्वारा चलाये जा रहे स्कूलों तथा अस्पतालों में गरीबों तथा अनाथों की निःशुल्क चिकित्सा भी की जाती थी तथा उनकी शिक्षा का भी निःशुल्क प्रबन्ध किया जाता था । ऐसा करके इन मिशनरियों ने गरीब तथा निराश्रित लोगों को काफी संख्या में इसाई बना लिया था । ठीक इसी तरह कोढ़ियों तथा विभिन्न असाध्य रोगों में ग्रस्त लोगों की देख-रेख कर तथा उनकी चिकित्सा व्यवस्था करके भी इसाई धर्म के अनुयायियों में वृद्धि की गयी ।

मिशन कार्यों के प्रबन्ध हेतु स्थानीय इसाईयों की नियुक्ति :

अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन ने बुन्देलखण्ड में 1896 के अकाल के समय नौगाँव में अनाथालय का प्रारम्भ कर इस क्षेत्र में इसाई धर्म के प्रचार का जो रास्ता अपनाया उसके अन्तर्गत मिशन की स्थिति मजबूत हो जाने के बाद प्रचार व प्रसार माध्यमों के लिये

1- देखिए अध्याय पाँचवाँ ।

स्थानीय लोगों की नियुक्ति की जाने लगी । नौगांव अनाथालयों में जिन लोगों का पालन-पोषण हुआ था उन्हों को बाद में शिक्षित करके विभिन्न व्यवसायों में ट्रेण्ड कर दिया गया था । विलियम प्रसाद,मोतीलाल आदि इनमें से प्रमुख थे । ये ही लोग इस क्षेत्र में ईसाई धर्म के प्रचार के सशक्त स्तम्भ साबित हुये । निम्न जातियों में जाकर तथा उनमें विभिन्न प्रकार का लालच देकर उन्हें समाज में सम्मानजनीय स्थान दिलाने का आश्वासन देकर इन स्थानीय प्रचारकों ने ईसाई धर्म को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

इस प्रकार अनाथालयों की स्थापना विभिन्न हस्त उद्योगों तथा कलाओं की ट्रेनिंग,नर्सिंग ट्रेनिंग,स्त्री शिक्षा का प्रसार,गरीबों और असहायों की निःशुल्क चिकित्सा और शिक्षा का प्रबन्ध करके और स्थानीय ईसाईयों को भी आगे करके अमरीकी फ्रेन्ड्स मिशन ने बुन्देलखण्ड के आर्थिक रूप से पिछड़े हुये इस क्षेत्र में ईसाई धर्म के प्रचार व प्रसार का कार्य किया । इस नीति के द्वारा 1947 तक बुन्देलखण्ड में चारों ओर मिशन केन्द्रों की स्थापना की गई तथा गांव-गांव में उनकी शाखायें खोल दी गईं । निःसन्देह मिशनरियों द्वारा की गई इन सेवा यहां ईसाई धर्म के प्रसिद्धि का कारण बनी।

—— :0: ——

अध्याय - अष्टम्

सारांश

बुन्देलखण्ड में अँग्रेजी प्रभुसत्ता का उदय 1803 की बेसीन की सन्धि से हुआ । उसी वर्ष कैप्टन जान बेली ने बाँदा में पदार्पण किया । बेली का पदार्पण इस क्षेत्र में अँग्रेजी शासन का प्रारम्भ था । धीरे-धीरे यहाँ के राजाओं, महाराजाओं में व्याप्त फूट का लाभ लेते हुये एवं अपनी सैनिक शक्ति के सहारे अँग्रेजों ने पूरे क्षेत्र को अपने नियन्त्रण में ले लिया ।

अँग्रेजी शासन में बुन्देलखण्ड में शान्ति व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद यहाँ के राजाओं को न तो युद्ध लड़ने पड़े और न ही उन्हें शासन व्यवस्था के लिये कोई प्रयास ही करना पड़ा । फलतः ये राजे-महाराजे आराम तथा शान-शौकत की जिन्दगी व्यतीत करने लगे, इसका परिणाम यह निकला कि इस क्षेत्र के राजाओं में साहस, धैर्य तथा अद्भुत शौर्य आदि गुणों का ह्रास हो गया । अधिकाँश राजा तथा महाराजा दुर्व्यसन के शिकार हुये ।

इस प्रकार 19वीं शताब्दी के अन्त तक बुन्देला तथा मराठा सभी जागीरदार एवं महाराजे पतन की कगार पर आ गये। अंग्रेजी शासन का इस क्षेत्र में एक बुरा परिणाम यह भी निकला कि यहाँ के जमींदार वर्ग ने अपने पुराने शान-शौकत को बनाये रखने के लिये फिजूल खर्ची प्रारम्भ किया। फलत:ये जमींदार मारवाड़ियों और जैनियों के ऋणों के बोझ से दब गये। ललितपुर के बुन्देला जमींदार इस बुराई से सबसे अधिक प्रभावित हुये। अत:जीविका निर्वाह के लिये उन्होंने डकैती बुरी प्रवृत्ति को भी अपना लिया। इन जमींदारों का आर्थिक पतन अंग्रेजी शासन की दुखद कहानी है जिस बुराई ने आगामी शताब्दी में जन-जीवन को आक्रान्त बना दिया।

अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड का आर्थिक शोषण

यह एक मान्य सत्य है कि हमारे देश में अंग्रेजी शासन शोषण का प्रतीक था। इसी क्रम में बुन्देलखण्ड का आर्थिक शोषण भी एक पूर्व निर्धारित नीति के आधार पर किया गया। इस क्षेत्र में जितने भी राजस्व अधिकारी आये उन्होंने राजस्व की दरों का इतनी कठोरता से निर्धारण किया जिसके भुगतान करने में किसान तथा जमींदार अत्यन्त कठिन परिस्थिति में आ गये। बाँदा जिले में जितने भी राजस्व प्रबन्ध किये गये,वे सभी अत्यन्त ही कठोर थे। झाँसी,हमीरपुर,जालौन तथा ललितपुर के राजस्व बन्दोवस्त की भी यही स्थिति रही। ऐसा कोई भी बन्दोवस्त

नहीं रहा होगा जिसकी दरों को सौशोधित न करना पड़ा हो । किसी भी बन्दोबस्त ने अपनी अवधि पूर्ण ही नहीं की । राजस्व की दरों की कठोरता ने जिस असन्तोष को जन्म दिया उसका रूप 1857 के विद्रोह में प्रकट हुआ ।

1858 में शान्ति स्थापित हो जाने के बाद भी अँग्रेजों ने कठोर राजस्व की नीति का परित्याग नहीं किया । इस प्रकार इस क्षेत्र का उटकर आर्थिक शोषण किया गया ।

उद्योग धन्धों का विनाश

अँग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड स्थित उद्योग तथा धन्धों का विनाश हो गया । मऊरानीपुर का कच्चा वस्त्र उद्योग अँग्रेजी शासन के प्रारम्भिक वर्षों में इस क्षेत्र का एक विकसित उद्योग था जिसमें विभिन्न प्रकार के वस्त्रों की बुनाई तथा उनके रंगाई का कार्य होता था । मऊ तथा आस-पास के क्षेत्रों में रहने वाले बुनकर इस उद्योग से जुड़े हुये थे । इन वस्त्रों को रंगने के लिये आल पौधे की जड़ को पकाकर अनेकों प्रकार के रंग तैयार किये जाते थे । उन दिनों इस पौधे की खेती बुन्देलखण्ड में विशाल पैमाने पर की जाती थी । इस वस्त्र में प्रयुक्त होने वाली कपास का उत्पादन भी इस क्षेत्र के किसान बड़े पैमाने पर किया करते थे,किन्तु यह उद्योग अँग्रेजी शासन में नष्ट हो गया । सरकार ने इस उद्योग को किसी भी प्रकार की सुविधा नहीं प्रदान की । सरकार की

निषेधात्मक-कर-नीति के कारण मऊरानीपुर का वस्त्र उद्योग नष्ट हो गया । इसी नीति के फलस्वरूप बुन्देलखण्ड में पैदा होने वाली कपास की खेती भी प्राय:समाप्त हो गई । झाँसी स्थित कालीन उद्योग जिसकी प्रशंसा 1825 में जेम्स फ्रैन्कलिन ने अपनी आत्म-कथा में भी की थी, का भी पतन अंग्रेजी शासन की देन था । ठीक इसी प्रकार ऐरच का चुनरी उद्योग,कालपी का वस्त्र उद्योग,जालौन तथा बांदा स्थित अन्य कुटीर उद्योग भी इसी निषेधात्मक कर-नीति के शिकार हो गये जिससे इस क्षेत्र में व्याप्त गरीबी,भुखमरी और बेरोजगारी सर्वत्र दिखाई पड़ने लगी ।

कृषि की सोचनीय दशा

जहाँ एक ओर उद्योग तथा व्यापार की स्थिति निराशाजनक थी,वहीं दूसरी ओर कृषि की दशा भी अत्यन्त सोचनीय थी । फलत:इस क्षेत्र की 90% से अधिक जनता जिसकी जीविका का सहारा मात्र कृषि ही था, वह सामाजिक,आर्थिक उत्पीड़न का शिकार हो गई । मऊरानीपुर के वस्त्र उद्योग की समाप्ति के साथ ही साथ आल पौधे की खेती भी समाप्त हो गई । लगातार पड़ने वाले अकालों के कारण कृषि उत्पादन प्रभावित हुआ । पान, तिलहन,अलसी,सरसों,तिल आदि की खेती का भी धीरे-धीरे पतन होने लगा । साथ ही साथ सरकार की कठोर राजस्व-नीति भी किसानों को कृषि से विमुख करने में सहायक सिद्ध हुई । इस प्रकार प्राकृतिक आपदाओं ने इस क्षेत्र की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था बुरी तरह क्षतिग्रस्त हुयी ।

ऋण-दाताओं का प्रभाव व भूमि का हस्तान्तरण

व्याप्त गरीबी तथा महंगाई के वातावरण में किसान राजस्व की कठोर दरों का भुगतान करने में असमर्थ साबित हुये। लगातार अकालों के कारण बुन्देलखण्ड के किसानों की कमर और अधिक टूट चुकी थी। अत:उन्हें मोटे अनाज तथा जंगली फलों जैसे - बेरी,महुआ आदि खाकर उदर-पूर्ति करनी पड़ती थी। राजस्व अधिकारियों के दबाव के कारण विपरीत परिस्थितियों में भी लोगों को सरकारी कर का भुगतान करना पड़ा अत:बाध्य होकर इन किसानों तथा जमींदारों को अपनी जमीन बनियों तथा मारवाड़ियों को गिरवी रख देनी पड़ी। ललितपुर का जिला इस बीमारी से सबसे अधिक प्रभावित हुआ। वहां तो ऋण देना एक प्रकार का व्यवसाय बन चुका था। बुन्देला जमींदार इससे सबसे अधिक प्रभावित हुये। बाध्य होकर उन्हें अपनी जमीनें ऋण-दाताओं को बेच देनी पड़ी।

आपराधिक जातियों का उदय

आर्थिक उत्पीड़न और प्राकृतिक आपदाओं के दूरगामी परिणाम निकले। भूख से परेशान लोगों ने विभिन्न प्रकार के अपराधों को अपना लिया। बुन्देलखण्ड में डकैती का उदय इस क्षेत्र के आर्थिक उत्पीड़न का ही परिणाम था। इसके अतिरिक्त लोगों ने ठगी का व्यवसाय भी अपना लिया था। ललितपुर जिला इस अपराध से बुरी तरह ग्रस्त था। ये ठग भारत के विभिन्न भागों में जाकर लोगों को ठगते थे। इसके अतिरिक्त कन्जर तथा कुछ अन्य जातियों ने भी चोरी तथा डकैती जैसे

व्यवसायों को अपना लिया । नौगांव छावनी के समीप कन्जरों का एक गांव था जिसे कन्जरपुर के नाम से पुकारा जाता था । इस गांव के लोग अनेकों प्रकार के अपराध किया करते थे जिनको आर्थिक मदद देकर तथा उन्हें शिक्षित करके नौगांव स्थित अमरीकी महिला मिशनरियों ने ईसाई धर्म में परिवर्तित कर लिया ।

बुन्देलखण्ड में व्याप्त जातीय संकीर्णता तथा हिन्दू समाज में निम्न वर्गों की हीन दशा :

सामाजिक,आर्थिक रूप में पिछड़े हुये बुन्देलखण्ड के हिन्दू लोग वर्णाश्रम व्यवस्था की संकीर्णता से ग्रस्त थे । रूढ़िवादिता से जुड़े हुये होने के कारण हिन्दू समाज में जातीय बन्धन अत्यन्त ही कठोर था,ऐसे समाज में शूद्रों की स्थिति अत्यन्त ही सोचनीय थी । छुआछूत की बीमारी से ग्रस्त यह वर्ग अत्यन्त ही उपेक्षित था । हिन्दू धर्म में इसके लिये स्थान नहीं था । यह समाज का सबसे पिछड़ा हुआ वर्ग था,लेकिन संख्या की दृष्टि से यह वर्ग काफी अधिक था । ईसाई मिशनरियों ने इस उपेक्षित वर्ग में ही घुसने का प्रयास किया और उन्हें आर्थिक रूप से मदद देकर तथा शिक्षित करके ईसाई धर्म में परिवर्तित कर लिया । इस क्षेत्र में अन्य जातियों से ईसाई धर्म में धर्मान्तरण सर्वाधिक इसी वर्ग का ही हुआ ।

हिन्दू समाज में अनेकों बुराइयां प्रचलित थीं । बाल-विवाह के कारण बाल - विधवाओं की भी संख्या कम नहीं थी । इन बाल-विधवाओं की भी अवैधानिक सन्तानों को हिन्दू समाज में कोई स्थान नहीं था और हिन्दू समाज में विधवा तो सबसे

ज्यादा उपेक्षित जीव होता ही है । प्राय:बाल-विधवाओं की अवैधानिक सन्तानों को या तो मार दिया जाता था या फिर उन्हें निर्जन स्थानों पर फेंक दिया जाता था । बुन्देलखण्ड के मिशनरियों ने इन्हीं अनाथ बच्चों को अनाथालयों में संरक्षण देकर उनका पालन-पोषण किया । बड़े होने के बाद ये ये ही लोग इस क्षेत्र के ईसाई धर्म के मुख्य स्तम्भ हो गये ।

अमरीकी मिशनरियों का आगमन

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासन सत्ता की स्थापना हो जाने के बाद प्रोटेस्टेन्ट चर्च की कुछ शाखाएं स्थापित करदी गई थीं जिन्हें इंग्लैण्ड की सरकार से मदद मिला करती थी । प्रोटेस्टेन्ट धर्म के लोग धार्मिक दृष्टि से अंग्रेजों के अधिक निकट थे, क्योंकि इंग्लैण्ड का राजकीय धर्म प्रोटेस्टेन्ट चर्च ही था इसीलिये बुन्देलखण्ड के जिलों में प्रारम्भ में प्रोटेस्टेन्ट समर्थकों की संख्या अधिक रही ।

1896 में बुन्देलखण्ड में व्यापक अकाल पड़ा जिससे गरीबी तथा मंहगाई व्याप्त हो गई । आर्थिक रूप से त्रस्त इस क्षेत्र में अमरीकी मिशनरियों ने ध्यान केन्द्रित करना प्रारम्भ कर दिया । उसी समय अमरीकी महिला मिशनरियों का एक दल भारत आया जिसका नेतृत्व डेलिया फिशर ने किया । यह दल अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन की ओर से गरीबों तथा अनाथों की सेवा करने के लिये तथा उन्हें ईसाई धर्म में परिवर्तित करने के लिये भारत भेजा गया था । डेलिया फिशर के अलावा ऐस्थर वार्ड तथा अन्ना निक्सन नामक महिला मिशनरी भी उसी दल के साथ भारत आयीं तथा बुन्देलखण्ड की नौगांव छावनी में इन मिशनरियों ने अपना केन्द्र स्थापित

किया । 1896 के अकाल से ही अमरीकी महिला मिशनरियों की गतिविधियां इस क्षेत्र में प्रारम्भ हो गईं । इस मिशन ने शिक्षा तथा चिकित्सा सेवाओं के माध्यम से लोगों का दिल जीतकर उन्हें ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट करना प्रारम्भ कर दिया । अकाल के समय अनाथ बच्चों की देख-रेख और पालन-पोषण के लिये इन महिला मिशनरियों ने सर्वप्रथम अनाथालय नौगांव में स्थापित किया जिसमें दिन-प्रतिदिन अनाथ बच्चों की संख्या बढ़ने लगी । धीरे-धीरे जब ये बच्चे बड़े हुये तो उन्हें विभिन्न रोजगारों की ट्रेनिंग प्रदान कर दी गई तथा उन्हें आर्थिक मदद देकर आत्म निर्भर बना दिया गया । अनाथालय में पल रहे लड़कियों की शादियां भी अनाथालय के लड़कों से कर दी गयीं । इस नीति के माध्यम से बुन्देलखण्ड में ईसाई धर्म का सुनियोजित ढंग से प्रचार किया जाने लगा ।

नौगांव अनाथालय की स्थापना के बाद हरपालपुर में भी इस मिशन की एक शाखा खोल दी गई । इसी तरह कुलपहाड़, छतरपुर, बिजावर तथा अन्य क्षेत्रों में भी मिशन की शाखायें प्रारम्भ कर दी गयीं । अमरीकी मिशनरियों की बढ़ती हुई गतिविधियों से प्रेरित होकर कनाडा की मिशनरियों ने भी बुन्देलखण्ड में धर्म प्रचार के लिये पदार्पण किया । कनाडा के मिशनरियों ने झांसी स्थित सी०पी०मिशन में भूमि खरीद कर चर्च का निर्माण किया तथा लोगों को विभिन्न उद्योगों की ट्रेनिंग देने के लिये एक स्कूल भी प्रारम्भ कर दी । झांसी के समीप ही जो भूमि खरीदी गई उसका नामकरण ईसागढ़ नाम से कर दिया गया और वहां भी एक चर्च का निर्माण कर दिया गया । धर्मान्तरण करने वाले ईसाईयों को यहां भूमि दे दी गई तथा उन्हें बसा दिया गया ।

इसी तरह का प्रयास अमरीका के कुछ अन्य मिशनों ने भी किया । झाँसी स्थित लोकन बाग में इस क्षेत्र की महिलाओं तथा बच्चों के स्वास्थ्य की देखरेख करने के लिये अमरीकन डॉक्टर होपक द्वारा जोड़े गये धन से एक अस्पताल का निर्माण कर दिया गया । रोमन कैथोलिक भी धर्म प्रचार में किसी से भी पीछे नहीं रहे । इन कैथोलिक मिशनरियों ने भी बुन्देलखण्ड में चारों ओर स्कूल-अस्पताल तथा अनाथालयों द्वारा धर्म-प्रचार किया । इस प्रकार 1947 तक बुन्देलखण्ड में ईसाईयों की संख्या काफी बढ़ गई ।

अंग्रेजी शासकों द्वारा मिशनरियों की सहायता

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत आगमन के पश्चात् भारत में ईसाई मिशनरियों का आगमन प्रारम्भ हो गया था । ये मिशनरी धर्म प्रचार के उद्देश्य से यहाँ आते रहते थे । उनके आने-जाने के लिये कम्पनी के जहाजों में किसी भी प्रकार का किराया नहीं लिया जाता था । साथ ही साथ इन मिशनरियों को कई स्रोतों से आर्थिक सहायता भी प्राप्त होती थी । बुन्देलखण्ड स्थित अंग्रेजी छावनियों में अंग्रेज अधिकारियों तथा सैनिकों की पूजा-पाठ के लिये ईसाई धर्म प्रचारक रखे जाते थे जो नियमित रूप से धार्मिक कार्य किया करते थे । इसके अलावा योरोप से आने वाले मिशनरियों को बुन्देलखण्ड के अंग्रेजी अधिकारी संरक्षण ही नहीं देते थे,बल्कि उन्हें अनेकों प्रकार की सहायता भी देते थे । इस नीति के अपनाने का कारण यह था कि धर्म प्रचार के द्वारा ये अंग्रेज अधिकारी भारत के मध्य में स्थित इस क्षेत्र में एक ऐसी प्रजा का निर्माण करना चाहते थे

जो धार्मिक रूप से अंग्रेजों से जुड़ी हुयी हो,ऐसा करके इस क्षेत्र में एक वफादार प्रजा का निर्माण किया जा सकता था । वास्तव में 1857 की विद्रोह के समय रानी लक्ष्मी बाई नवाब अली बहादुर तथा बुन्देलखण्ड की बहादुर जनता के प्रतिरोध को अंग्रेज भूल नहीं पाये थे । वे यह समझते थे कि यहाँ के लोग स्वतंत्रता प्रिय हैं और इसे प्राप्त करने के लिये अपना सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार हैं । अतः ईसाई मिशनरियों को मदद देकर अंग्रेज बुन्देलखण्ड में एक ऐसी जाति का निर्माण करना चाहते थे जो उनके प्रति वफादार हो । यही कारण था कि बुन्देलखण्ड के सैनिक तथा सिविल अधिकारियों ने मिशनरियों को भरसक सहायता प्रदान की ।

बुन्देलखण्ड की रियासतों द्वारा मिशनरियों को सहायता :

बुन्देलखण्ड में अनेकों देशी रियासतें थीं जहाँ राजाओं तथा महाराजाओं का शासन था । अंग्रेजी शासनकाल में इन रियासतों के अनेकों राजे तथा महाराजे अंग्रेज अधिकारियों को प्रसन्न करने के प्रयास करने लगे । इस नीति के अन्तर्गत् इन राजाओं ने अपनी रियासतों में ईसाई मिशनरियों को मुफ्त में जमीन दे दी तथा उन्हें अनेकों प्रकार की और भी सुविधायें प्रदान कर दी गयीं । अलीपुर रियासत के राजा ने मिशनरियों को न केवल मुफ्त जमीन ही दी,बल्कि उन्हें आर्थिक सहायता भी प्रदान की । छतरपुर के रियासत के राजा ने तो और अधिक सहायता प्रदान की । ऐसा करके ये राजा अंग्रेज अधिकारियों की सहानुभूति प्राप्त करना चाहते थे । इसके अतिरिक्त अपनी रियासतों में अस्पताल तथा अंग्रेजी

शिक्षा हेतु स्कूलों की स्थापना के लिये भी इन राजाओं ने मिशनरियों को सहायता प्रदान की थी । इस नीति के परिणाम-स्वरूप बुन्देलखण्ड में ईसाई धर्म का तेजी से विस्तार हुआ ।

बुन्देलखण्ड में मिशनरियों द्वारा अपनाई गई नीति

इंग्लैण्ड में क्वेकर आन्दोलन का प्रारम्भ 1648 में हो चुका था । 1661 ई० में लगभग 9 क्वेकर नेताओं ने भारत की यात्रा भी की थी ।[1] अमेरिका में भी क्वेकर आन्दोलन का सूत्रपात 1660 ई० में हो चुका था ।[2] 1813 ई० में अमेरिका में ओहियो वार्षिक बैठकों का आयोजन होने लगा । इसी वार्षिक बैठक के परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में ईसाई धर्म के प्रचार के लिये मिशनरियों को भेजे जाने का निश्चय किया गया । 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिस समय बुन्देलखण्ड अकाल की आग में झुलस रहा था उस समय अमरीकी महिला मिशनरियों ने नौगाँव में आकर एक अनाथालय खोला । यहीं से इस क्षेत्र में अमरीकी मिशनरियों के कार्य का प्रारम्भ हुआ था । धीरे-धीरे अनाथालय बढ़ने लगे तथा बुन्देल-खण्डीय मसीह मित्र समाज का गठन कर दिया गया जिसकी पहली बैठक 11 मार्च 1902 को नौगाँव के अनाथालय में हुयी थी ।[3] प्रारम्भ में अमरीकी मिशनरियों ने जो नीति अपनाई उसके अन्तर्गत मिशन का नेतृत्व अमरीकी मिशनरियों के हाथ में ही रहा । लेकिन जैसे ही

1- क्वेकर्स इन इण्डिया, मार्जोरी साइक (लन्दन, जार्ज एलिन एण्ड अनविन, 1980), पृष्ठ 60.

2- वही.

3- फ्रेन्ड्स इन बुन्देलखण्ड इण्डिया, कैथरीन डीफ्रैकिन (ओहियो, फारेन मिशन बोर्ड, 1926), पृष्ठ 87-88.

स्थानीय धर्म प्रचारकों की संख्या बढ़ने लगी तथा भारत में विदेशी मिशनरियों के विरुद्ध भावना प्रबल होने लगी उस समय मिशन ने अपनी नीति में परिवर्तन कर दिया। इस नई नीति के अनुसार धर्मान्तरण के लिये लोगों को प्रेरित करने का कार्य बुन्देलखण्ड के ही ईसाई नेताओं को सौंप दिया गया। मोतीलाल इनमें से प्रमुख धर्म-प्रचारक था जो बुन्देलखण्ड मसीह मित्र समाज का मुख्य था। अमरीकी मिशनरियों ने पृष्ठ भूमि में रहकर प्रचार कार्य को मदद देना प्रारम्भ किया। 1927 से 1947 के बीच अमरीकी मिशन के 9 केन्द्र बुन्देलखण्ड में खोले जा चुके थे। 1947 के पश्चात् स्थानीय ईसाईयों ने मिशन का नेतृत्व स्वीकार कर लिया, क्योंकि भारत आजाद हो जाने के पश्चात् विदेशी मिशनरियों को सभी धार्मिक कार्य स्थानीय लोगों को ही दे देने का आदेश दे दिया गया था। अतः इस बदले हुये वातावरण में बुन्देलखण्ड मिशन अमेरिकन फ्रेन्ड्स मिशन से स्वतन्त्र हो गया।

इस प्रकार 1804 से 1947 के बीच विभिन्न मिशनरियों ने बुन्देलखण्ड के इस पिछड़े हुये क्षेत्र में धर्म प्रचार के जो कार्य किये उससे यहाँ ईसाई धर्म के प्रसार तथा प्रचार में काफी सफलता प्राप्त हुयी।

——:0:——

BIBLIOGRAPHY

A. DIARIES:

Esther Baird	1911-1937	Anna Nixon (letters)	1946-1980
Alena Calkins (letters)	1927-1951	Alison and Inez Rogers	1920-1927
Catherine Cattell	1942-1946	Carrie B. Wood	1911-1948
E.L. Cattell	1942-1947		

B. LETTERS AND CORRESPONDENCE:

From Mission Board to the Field

Sherman Brantingham	1961-1975
Emelyn J. Cattell (Emma Lupton)	1894-1901
Carrie L. Chambers	1914
Church World Service	1949
Anna Cobbs	1960-1984
Louise Ellett	1920-1948
W.R. Hess	1976-1984
Elizabeth Jenkins	1895-1949
Sarah Jenkins, first president Mission Board	1892-1894
George Kent	1914
Leona Kinsey	1928-1929
Russell Myers	1971-1983
Rachel Pim	1913-1920
Claude Roane	1927-1936
Catherine Stalker	1929-1930
Chester Stanley	1946-1960
Walter Williams	1936-1946
Elmer Wood	1923
Mary B. Wood	1897

From Field to the Mission Board

Esther Baird	1892-1937
Max Banker	1949-1956
Ruth Ellen H. Banker	1949-1956
Dr. E. Ruth Hull Bennett	1934-1940
Walter Bolitho	1932
Bram	1932-1935
Catherine D. Cattell	1936-1957
Everett L. Cattell	1936-1957
Merrill M. Coffin	1929
Milton Coleman	1945-1968
Rabecca H. Coleman	1945-1968
Frances H. DeVol	1949-1974
Dr. W. Ezra DeVol	1949-1974
Elizabeth S. Earle	1939-1946
Robert Earle	1939-1946
Delia Fistler	1892-1916
"Five Missionaries" (James Kinder, Judith Kinder, John Earle, Ruth Earle, Nell Lewis)	1934
Norma A. Freer	1945-1984
Dr. A.E. Goddard	1908
Esther G. Hess	1952-1968
W. Robert "Bob" Hess	1952-1968
James Kinder	1932
Ruth F. Mangalwadi	1976-1984
Victor Mangalwadi	1950-1981
Vishal K. Mangalwadi	1976-1984
George Masih	1973-1979
Gabriel Massey	1980-1984
Dr. D. W. Mategaonker	1974-1984
Anna Nixon	1941-1980
Stuti Prakash	1946-1984
Vijay S. Prakash	1973-1984
Clifton J. Robinson	1949-1965
Elizabeth O. Robinson (Betty)	1949-1965
Alison Rogers	1921-1927
Inez C. Rogers	1921-1927

Gore Lal Singh	1932-1935
Pancham Singh	1932-1935
Carrie Wood	1908-1948

C. MINUTES:

American Friends Mission Superintendent's Annual Reports	1896-1974
Bundelkhand Friends Church Monthly Meeting Minutes	1902-1936
Bundelkhand Masihi Mitra Samaj Executive Committee Minutes	1957-1973
CEEFI Executive Committee Minutes	1962-1971
Evangelical Fellowship of India Executive Committee Minutes	1951-1971
Evangelical Friends Church-Eastern Region Minutes	1976-1983
Friends Foreign Missionary Society Minutes	1945-1984
India Mission Council Minutes	1903-1983
Joint Council Minutes	1954-1961
Ohio Yearly Meeting Minutes Personal Reports of All Missionaries	1884-1975
Union Biblical Seminary Association Board of Governors Minutes	1953-1983
Union Biblical Seminary Executive Board (Governing Body)	1953-1983

D. SECONDARY SOURCES (BOOKS).

Anna Nixon, E. A Century of Planting : Missionary to India, 1940-1984.

Baird, Esther. Adventuring with God. Mt. Pleasant, Ohio; Firends Foreign Missionary Society, 1924.

Cattell, Catherine D. Till Break of Day. Grand Rapids, Mich.; Wm B. Eerdmans Pub. Co., 1962.

________ From Bamboo to Mango. Newberg, Oreg. : The Barclay Press. 1976.

Cattell, Everett L. Christian Mission: A Matter of Life. Richmond, Ind.: Friends United Press, 1981.

Coffin, Merrill M. Friends in Bundelkhand. Mysore, India: The Wesley Press, 1926.

Collins, Larry and Dominique Lapierre. Freedom at Midnight. New Delhi, India: Vikas Pub. Hse. Pvt. Ltd., 1976.

Fletcher, Grace Nies. The Fabulous Flemings of Kathmandu. New York: E.P. Dutton & Co., Inc., 1964.

Ford, Helen and Esther. The Steps of a Good Man. Pearl River, N.Y.: Africa Inland Mission, 1976.

Griffiths, Percival. The British Impact on India. New York: Archon Books, 1965.

Lindell, Jonathan. Nepal and the Gospel of God. New Delhi, India: Masihi Sahitya Sanstha, 1979.

McMahon, Robert. To God Be the Glory. New Delhi, India: Masihi Sahitya Sanstha, 1971.

Niyogi Report. Christian Missionary Activities Enquiry Committee, Madhya Pradesh, 1956, Vol. I Nagpur: Government Printing. M.P. , India, 1965.

Pickett, J. Waskom. Christ's Way to India's Heart. Lucknow: Lucknow Publishing House, India, 3rd edition, 1960.

Spear, Percival. India. Ann Arbor: The University of Michigan Press, 1961.

Williams, Walter R. The Rich Heritage of Quakerism. Grand Rapids, Mich.: William B. Eerdmans Publ. Co., 1962.

Wolpert, Stanley A. A New History of India. New York: Oxford University Press, 1977.

E. REPORTS, MEMOIRS AND TREATIES:

Aitchinson, C.U. : A Collection of Treaties, Engagement and Sanads, Volume III & V. Calcutta. 1909.

Cadell, A. : Settlement Report on the District of Banda (Exclusive of Karwi, Sub-division) Allahabad, 1881. N.W. Provinces and Oudh Government.

Cunnigham, A. : Archeological Survey Reports, Volume XVIII and XXI, Indological Book House, Varanasi, 1969.

Davidson, J. : Report on the Settlement of Lullutpore, North Western Provinces, Allahabad, 1869.

Franklin, J. : Memoirs on Bundelkhand, 1825.

Hoare, H.S. : Final Report on the Revision of Settlement in the Lalitpur, Allahabad, 1896.

Humphries, E.de. M. : Final Report of the Ribision of the Settlement of the Banda District. Allahabad, 1909.

Hutchenson and Chick, N.A. : Annals of Indian Rebellion 1857+58.

Impey, W.H.L. and Meston, J.S. : Report on the Second Settlement of the Jhansi District(Excluding the Lalitpur Sub-divison), North Western Provinces, Allahabad, 1892.

Jenkinson, E.G. : Report of the Settlement of Jhansi District, Allahabad, 1871.

Mukherji, P.C. : Report on the Antiquities in the District of Lalitpur, Reorkee, 1899, Reprinted by Indological Book House, New Delhi.

Petterson, A.B. : Final Settlement Report on Karwi.

Pim, A.W. : Final Settlement Report on the Revision of the Jhansi District, including Lalitpur Sub-division, Allahabad, 1907.

Pinkney, F.W. : Official Narrative of 1858. Indian Historical Records Commission Proceedings, Volume XXVII, Part II, Nagpur, 1950.

F. <u>DISTRICT GAZETTEERS</u>:

Atkinson, E.T. : Statistical Descfiptive and Historical Account of the N.W. Provinces of India, Volume I (Bundelkhand), Allahabad, 1874.

Drake Brockman, D.L. : Banda Gazetteer, Allahabad, 1909.

Drake Brockman, D.L. : Banda Gazetteer, Volume XXI of the District Gazetteers of the United Provinces of Agra and Oudh, Allahabad, 1929.

Drake Brockman, D.L. : Jhansi: A Gazetteer, Allahabad, 1909.

Hunter, W.W. : Imperial Gazetteer of India, Vol. IV, LONDON, 1881.

Joshi, E.B. : Uttar Pradesh District Gazetteer Jhansi, Lucknow, 1965.

Luard, C.E. : Datia State Gazettser, Lucknow, 1907.

Luard, C.E. : The District Gazetteer, of the United

Provinces of Agra and Oudh (Supplementary Statistics), Volume XXI, Allahabad, 1924.

Eastern States(Bundelkhand) Gazetteer, Lucknow, 1907.

Imperial Gazetteer of India, Volumes I and II, Calcutta, 1908.

G. OTHER HISTORICAL WORKS:

Bhatia, B.M. : Famines in India, Asia Publishing House N. Delhi.

Burgess, J.A.S. : Indian Antiquary, Volume IV, Indological Book House, Reprint Corporation, 7 Malka Ganj, Delhi.

Beames, John. : Memoirs on the History, Folklore and Distribution of the Races of the North-Western, Provinces of India, (amplified edition of H.M. Elliot's Supplemental glassary of Indian Terms) Volume I, LONDON, 1869.

Bose, N.S. : History of the Chandellas of Jejakabhukti Calcutta, 1956.

Crooke, W. : The Tribes and Castes of the North-Western Provinces and Oudh, Volumes I to IV, Calcullta, 1896.

Crooke, W. : Races of Northern India Cosmo Publications, Delhi, 1973.

Dharma Bhanu, : History and Administration of the Provinces of Agra (named subsequently the N.W. Provinces) 1834, 1858 (A Thesis submitted for Ph.D. in the agra University in 1954.

Dey, N.L. : The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India, Calcutta, 1899.

Godsey, Visnu Bhatt. : Majha Pravas, Edition II, 1948 (Chitrasala Prakashan, Pune 2).

Gupta, B.D. : Maharaja Chhatrasal Bundella, Agra, September, 1958.

Ghurye, G.S. : Caste and class in India, Bombay, 1957.

Hira Lal. : Madhya Pradesh Ka Itihas(Kashi Nagari

Pracharini Sabha, Varanasi).

Kaye, J.W. and Malleson, G.B. : The History of Seapoy war in India, Volume I to IV, LONDON, 1864-1888.

Keene, H.G. : Eighteen Fifty Seven.

Mishra, Keshav Chandra. : Chandel Aur Unka Rajatva Kal.(Kashi Nagari Pracharini Sabha, Varanasi) Samvat 2011.

Misra, A.S. : Nana Sahib Peshwa, Lucknow, 1961.

Munshi, Shiam Lal : Tawarikh-i-Bundelkhand, Newgong, 1880.

Maher, B.D. : Laxmi Bai Raso of Madnesh, Edition I, Jhansi, 1969.

Mitra, Ramcharan Hayaran. : Bundelkhand Ki Sanskriti Aur Sahitya, Rajkamal Publication, Delhi.

Pannikar, K.M. : A survey of Indian History, Reprinted by Asia Publishing House, Bombay, 1965.

Parasnis, D.V. : Jhansi Ki Rani Laxmi Bai(Hindi Translation) Edition V, Samvat 1995, Sahitya Bhavan Ltd., Prayag.

Pogson, W.R. : A History of the Bundelas, 1828, (Reprinted by B.R. Publishing Corporation Delhi, 1974).

Rizvi, S.A.A. (Ed). : Freedom Struggle in Uttar Pradesh, Volume I & III, Lucknow, 1957 and 1959.

Rogers, A. and Beveridge, H. (Ed and Tr). : The Tuzuk-i-Jahangiri, Volume I, LONDON, 1909.

Russel, R.U. : Tribes and Castes of the Central Provinces of India, Volume IV, LONDON, 1916.

Saksena, B.P. : History of Shahjhan of Delhi, Allahabad, 1948.

Sarkar, J.N. : History of Aurangzeb, Volumes I and II, Edition II, Calcutta, 1925.

Sarkar, J.N. : Fall of the Mughal Empire, Volume III, Edition II (M.C. Sarkar & Sons, Calcutta, 1952).

Sardesai, G.S. : New History of the Maratha, Volume II.

Srinivasan, C.K. : Baji Rao the First, the Great Peshwa Bombay, 1962.

Srivastava, A.L.	: The First two Nawabs of Avadh, Ed II, Agra, 1951.
Sen, Surendra Nath.	: Eighteen Fifty Seven, Indian Press, Calcutta, 1951.
Pathak, S.P.	: Jhansi During the British Rule, I Ed. 1987, New Delhi. Ramanand Vidya Bhawan.
Sharma, S.R.	: Mughal Empire in Indian. (Reprint Ed Agra, 1971).
Sunder Lal.	: Bharat Men Angreji Raj, Volume I, (Lucknow, 1960).
Singh, Pratipal	: Bundelkhand Ka Sankshipt Itihas, Volume I, Hitchintak Press, Varanasi, Samvat 1985.
Srivastava, Hari Shankar.	: Famines and Famine Policy of the Government of India(1858-1918). (A thesis for Ph.D. Degree submitted in Agra University, in 1956).
Tiwari, G.L.	: Bundelkhand Ka Sankshipt Itihas, Ed. I. Samvat 1990, Kashi Nagari Pracharini Sabha, Varanasi.

H. **PAMPHLETS:**

"A Brief Historical Statement- The FECI", Nov. 3, 1974.

Bundelkhand Friends Church Membership Record (1902-1927).

CEEFI Triennial Report, 1965.

CEEFI Triennial Report, 1968.

CEEFI Triennial Report, 1971.

"Greetings from Nepal" Hari Printing House, Darjeeling, 32 p.

India Mission Manual.

India Missionary Directory, 1948.

Esther Baird and Delia Fistler. The first missionaries appointed to India by Friends of Ohio Yearly Meeting.

3

Nowgong, Bundelkhand, India – the first home of the American Friends Mission
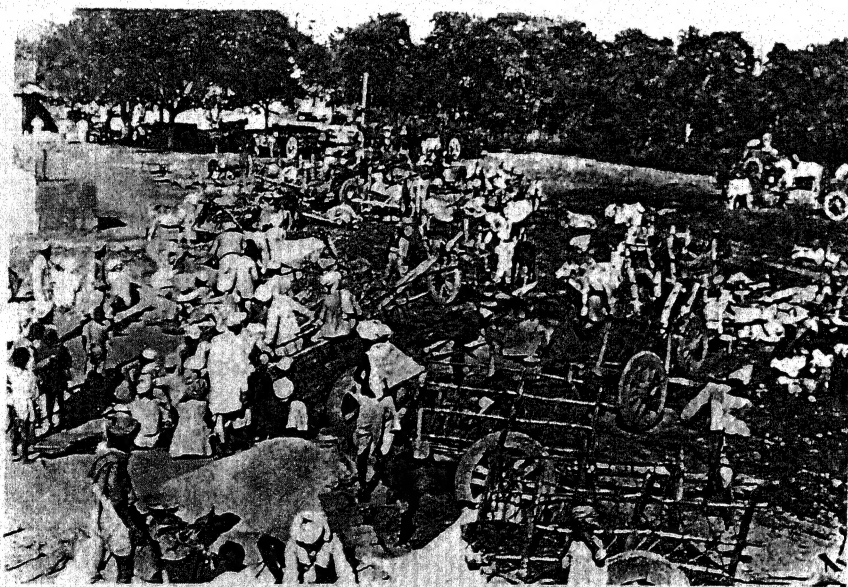
Bazaar day in Nowgong

MAP SHOWS BMMS AREA
N
JHANSI (U.P.)
LALITPUR (U.P.)
TIKAMGARH
MAU
HARPAL PUR
ALIPUR
BANDA (U.P.)
NOWGONG
ISA NAGAR
SAGAR (M.P.)
BARAMALAHRA
GARIMALAHRA
BANDA (U.P.)
AMARMAU
GULGANG
CHATARPUR
GARI
RAJ NAGAR
BIZANAR
KHAJURAHO
KISUNGARH
SITANA
MISSON STATIONS
BMMS CENTRES
BMMS AREA LIMIT